मानववाद तथा मानवतावाद

डॉ० ब्रज भूषण शर्मा
एम० ए०, पी-एच० डी०
हिन्दी-विभाग,
हंसराज कॉलिज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

श्रीकला प्रकाशन
1660, मोहनगंज, सब्जीमंडी
दिल्ली-110007

पूज्य पिता जी एव माता जी को,
जिनका उत्साह और साहस मुझे
सदैव आत्म-बल देता रहा है।

विषय-सूची

भूमिका

पिछली दो शताब्दी विश्व मे अनेक परिवर्तन लाने वाली रही हैं, जिनमे मानव की विचार पद्धति और जीवन-पद्धति पूरी तरह बदल गई। ससार के विभिन्न देशो मे मानव-सभ्यता, सस्कृति, ज्ञान विज्ञान के साथ-साथ बहुत सारी नई विचारधाराएँ उत्पन्न हो गई हैं। खासतौर से इन्सान ने अपने जीवन स्तर तथा अनिवार्य आवश्यकताओ को पहचाना और उनकी प्राप्ति तथा सुलभता का प्रयत्न किया। इसके लिए इस युग मे नवीन मानव मूल्यों की स्थापना करने का प्रयत्न किया गया और मानववाद की विचारधारा का प्रचार बहुत तेजी से हुआ तथा उसी तीव्रता से उसका विकास भी हुआ। इसके द्वारा कम से कम एक ऐसे आचार-विचार और जीवन-पद्धति को स्वीकार किया गया जो हर इन्सान के लिए बिना किसी भेदभाव के जरूरी है।

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे भी इस विचारधारा का प्रभाव पडा; किन्तु इस विषय पर एक दार्शनिक और आलोचनात्मक पद्धति से बहुत कम लिखा गया है। इस विषय से सम्बन्धित दो सुन्दर रचनाओ पर मेरी नजर पडी—डॉ० धर्मवीर भारती की 'मानव मूल्य और साहित्य' तथा डॉ० नवल किशोर की 'मानववाद और साहित्य'—जो इस विचारधारा को पाश्चात्य साहित्य और विचार दर्शन की दृष्टि से स्पष्ट करने के गौरवमय सफल प्रयास हैं।

प्रस्तुत कृति को मैंने अपने शोध-प्रबन्ध के काल मे लिखा था। अनेक कारणो से उसे प्रकाशित नही कराया। अब उसे कतिपय सशोधनो के साथ प्रस्तुत कर रहा हूँ। मध्यकालीन सत-साहित्य पर शोध-कार्य करते हुए मेरा ध्यान इस विचारधारा की ओर गया और उसे एक दूसरी दृष्टि से प्रस्तुत करने का विचार किया जिसमें उस विषय का परिचयात्मक विश्लेषण हो। मानववाद मे जिस मानव के बारे मे विचार किया गया है, उसके विषय मे स्पष्ट तौर से नही के बराबर लिखा गया है। इसलिए थोडे परिवर्तन के साथ इस विषय पर यहाँ विचार करने की भी दृष्टि रही है।

आज के युग मे औद्योगिक प्रगति के साथ पूँजीवादी और साम्यवादी दोनो प्रकार की विचारधाराएँ आईं और दोनो ने ही मानव की स्थिति और उसकी समस्याओ के बारे मे अपने-अपने तौर से सोचा। मानववाद तो गाँधी जी भी तभी मानते थे, जब पेट भरा हो, इन्सान अपना अस्तित्व बनाए रखने लायक हो, अन्यथा इस प्रकार की बात करना व्यर्थ है। भूखे इन्सान को उपदेश या

परहित नहीं भाता, उसे तो पहले अपना हित चाहिए। भारतीय कर्मवादी दर्शन और पाश्चात्य भौतिकतावादी दर्शन भी यही स्वीकार करते हैं। इस जमाने में मार्क्स, ऐन्जिल्स, नेहरू और रसैल ने भी यही कहा है। इससे स्पष्ट होता है कि पहले से चला आ रहा धार्मिक दृष्टि का मानववाद 20वीं शताब्दी में आकर अनुपयोगी हो गया है। मानववाद के विषय में समस्त संसार में अनेक सम्मेलन हुए और अनेक संस्थाओं की स्थापना हुई है। किन्तु वहाँ तो 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना' की ही बात आई। फिर भी मैं यह प्रयास कर रहा हूँ क्योंकि 'वादे वादे जायेते तत्वबोधा'।

इस कृति के एक भाग में मानव के स्वरूप तथा उसके जीवन के अन्त बाह्य पक्षों पर विचार किया गया है और दूसरे भाग में मानव के उद्भव और विकास एवं पाश्चात्य और भारतीय परम्परा तथा मानववाद के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक को लिखने में आरम्भ से ही मेरा एक अपना दृष्टिकोण रहा है, इसके अतिरिक्त अधिकारी विद्वानों के विचारों को भी प्रस्तुत किया गया है, लेकिन इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि समकालीन चिन्तन को उचित स्थान मिले और वह इस युग तक ही सीमित होकर न रह जाए।

8 सितम्बर, '78 — ब्रज भूषण शर्मा

हंसराज कॉलिज,
दिल्ली विश्वविद्यालय,

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवर्तन

मानव-अस्तित्व की सार्थकता सापेक्ष है, सृष्टि के आरम्भ से ही वह इसके सधान मे प्रवृत्त है। वह ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न आयामो और दिशाओ मे जगत्, जीवन एव व्यक्ति और समाज के प्रति समग्र चितन करता रहा है। उसके विचारो के विकास मे दार्शनिक चिन्तन का विशेष योगदान रहा है। प्लेटो दार्शनिक को सम्पूर्णकाल और सम्पूर्ण सत्ता का द्रष्टा और अरस्तू उसे सत्य का अन्वेषक स्वीकार करता है। दार्शनिक का लक्ष्य था मानव-जीवन का सर्वोच्च विकास करना। विश्व के विद्वान वैदिक-काल से गांधीवादी युग तक और हैराक्लिट्स से मार्क्स तक सर्वोच्च जीवन-पद्धति की खोज करते रहे है।

मानव ने अपने विकास के कालक्रम मे अनेक अनुभव और प्रयोग करते हुए स्व-कल्याण एव पर-कल्याण के लिए अपनी क्षमता और विवेक का उपयोग सर्वश्रेष्ठ मानव-मूल्यो को खोजने के लिए किया है। उसमे जन्मजात रूप से भावात्मक और रागात्मक वृत्तियां हैं जो उसे कही पर जोडती हैं और कही पर तोडती हैं। वह निरन्तर अपना विस्तार और अपने अस्तित्व की रक्षा करता रहा है। मानव अपने वर्तमान और भविष्य के प्रति बडा ही सचेत रहा है। स्वभावत. वह अपने युग से आगे बढ जाना चाहता है। वर्तमान युग मे ऐसा अनुभव होता है कि पहले की अपेक्षा आज का युग उसके अस्तित्व के लिए सर्वथा सकटपूर्ण बन गया है। इस युग मे मध्ययुगीन निरंकुशता, धार्मिक कट्टरता और हठवादिता, दासत्व को बढाने वाली प्रवृत्तियां—औद्योगीकरण, राष्ट्रवाद, साम्राज्यवादी उपनिवेशवाद का मुखौटा लगाकर फैल गई जिनसे मानव की मुक्ति का प्रयास किया जाने लगा। मनुष्य चिरकाल से बधनो से मुक्ति का प्रयत्न करता चला आ रहा है। इस प्रयास मे मानववादी विचारधारा उसकी मार्गदर्शक रही है।

मानववाद कोई ऐसी विचारधारा नही है जो एकदम किसी एक युग-विशेष मे प्रकट हो गई हो। इसकी एक सुदीर्घ परम्परा पाश्चात्य चिन्तन मे ही नही, भारतीय चिन्तन मे भी मिलती है। वर्तमान युग का मानववाद वैज्ञानिक युग से जुड गया है। आधुनिक मानववाद के आविर्भाव और विकास का

एक विराट फलक और विस्तृत इतिहास है। "जब यह अनुभव किया जाने लगा कि यदि मनुष्य को पूर्णता और स्वतन्त्रता से जीवन व्यतीत करना है तो उन्हे राजा अथवा समाज दोनो के ही भय से मुक्त होना चाहिये। रूसो के विद्रोह को, जिसने अट्ठारहवी शताब्दी के फ्रास मे फैले हुए बन्धनो का विरोध किया, फ्रास और जर्मनी ही नही, अपितु इगलैंड और अमेरिका के उन्मुक्त मानव के विचारो से सम्बद्ध किया जा सकता है।"[1] इस विचारधारा को 19वी और 20वी शताब्दी मे सयुक्त राष्ट्र अमेरिका के मानव अधिकारो के उदार उद्घोष, फ्रास की राजनैतिक क्रान्ति और रूस की साम्यवादी आर्थिक क्रान्ति ने एक नई दिशा प्रदान की है।

वास्तव मे मानववादी दर्शन आरम्भ से ही सर्वोत्तम सभव भौतिक जीवन की कल्पना और प्रयास करता रहा है। इसी प्रेरणा को वर्तमान चिन्तन की सज्ञा मे मानववाद कह सकते है।[2] अतीत के मानव केन्द्रित चिन्तन की अपेक्षा यह चिन्तन एक साधारण वैचारिक घटक रहा है। वर्तमान मानववादी चिंतन-धारा मे पारलौकिक मूल्यो के स्थान पर इहलौकिक उद्देश्यो को प्रमुखता दी गयी।[2] मानववाद के इतिहास का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि अब से पूर्व यह विचारधारा धर्म से अधिक प्रभावित रही और अब सामाजिक मूल्यो से। यूनान, मिस्र, मैसोपोटामिया और भारत के प्राचीन साम्राज्यो मे मनुष्य दैवी शक्तियो के सम्मुख अपने को तुच्छ समझता रहा और शासको में दैवी अंश की कल्पना करके उन्हे अलौकिक मानता रहा है। आज उसे विश्वास हुआ है कि उसमें अपने को और ससार को बदलने की क्षमता है। अस्तित्व-

1 " ..It was felt that if men are to live their lives in fulness and freedom they must be independent of the tyranny exercised either by kings or by society The rebellion of Rousseau against the hampering bonds of eighteenth century France in this sense be linked with the attitude of the men of the Enlightenment not only in France and Germany but also in England and America "
—Encyclopaedia of the Social Sciences—Vol VII, VIII, p 541

2 " That which is characteristically human not supernatural, that which belongs to man and not to external nature, that which raises man to his greatest height or gives him, as man, his greatest satisfaction, is apt to be called humanism .."
—वही, p 541

वादी दार्शनिक ने उसे यह बताकर उद्बोधित किया कि वह स्वय अपने भाग्य का विधाता है। वह विश्व मे होनेवाली क्रांतियों के कारण एक नये आत्मलोक से आभामय हो उठा। उसमे भौतिक जीवन को सुखी बनाने की कामना, राष्ट्रीयता की भावना, उदारवादी दृष्टिकोण, उपयोगितावाद की अनुभूति, स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व की भावना प्रबल हो गई।

उन्नीसवी और बीसवी सदी मे समस्त ससार मे साम्राज्यवादी शक्तियो के विरुद्ध मोर्चा बनाया गया। बीसवी शताब्दी के दो विश्व महायुद्धो ने उसे एक नयी जागृति प्रदान की। इसके साथ ही यूरोपीय पुनर्जागरणकालीन मानववाद आज की वैज्ञानिक प्रगति और व्यावसायिकता मे निर्बल और अनुपयोगी हो गया था। पश्चिमी देशों मे साम्राज्यवादी प्रवृत्ति को लेकर जो उपनिवेशवादी भावना आई, जिससे मानव का उत्पीडन और व्यक्ति का पतन हुआ उसका विरोध और पुनरुत्थान हुआ। पूँजीवाद ने मानव का शोषण किया और सामाजिक मूल्यों का हनन किया तथा अधिनायकवाद ने उसे भय और त्रास स सत्रस्त कर दिया। विगत दो विश्व युद्धो न मानव-गरिमा और मानव मूल्यों का उन्मूलन करने मे कोई कमी नही छोडी। वर्तमान यान्त्रिक सभ्यता मे मनुष्य का अस्तित्व नगण्य होकर रह गया है। उद्योगों के विकास के साथ ही, कोई एक सामाजिक आदर्श न होने के कारण मनुष्य मे टूटन और अलगाव आ गया, उसमे निराशावादी और पलायनवादी जीवन-दृष्टियाँ व्याप्त हो गयी।

इस युग मे मानववाद एक स्पष्ट दृष्टिकोण और मान्यता लेकर अग्रसर हुआ। वह इस युग का एक प्रबल और प्रभावशाली आन्दोलन बन गया।[1] आज का चिन्तक सिद्धान्तवादी न रह करके व्यावहारिक बन गया है। प० नेहरू ने हिन्दुस्तान की कहानी मे लिखा है "इस जमाने का दिमाग यानी ऊँचे दर्जे का दिमाग व्यावहारिक और प्रैगमैटिक है नैतिक है और सामाजिक है, परोपकारी है और मानववादी है—उसका सचालन सामाजिक उन्नति के असली आदर्शवाद से होता है। उसके पीछे काम करने वाले आदर्श जमाने की

1 "It has formed one of the main threads in the web of all modern life It has survived in various forms—classical scholarship, education in the humanities, temperamental resistance to ecclesiastical and political authority a certain warm conviction that man himself is the center of the universe and a basis for certain modern schools of philosophy and religion .."

—Encyclopaedia of the Social Sciences—Vol VII, VIII, p 540

युग-धर्म की नुमाइदगी करते हैं। पुराने लोगों के दार्शनिक ढग को, उनकी प्रन्तिम सत्य की खोज को बहुत हद तक छोड दिया गया है। साथ ही मध्य युग का भक्तिवाद और रहस्यवाद भी छोड दिया गया है—उसका ईश्वर है मानवता और उसका धर्म है समाज सेवा।"[1]

मानववाद के इस दृष्टिकोण से मनुष्य ने अपनी सम्भावनाओ, सृजनात्मक क्षमताओ और मेधा को भौतिक जगत के कल्याण के लिए प्रयोग किया, उसका लक्ष्य केवल रहस्यो की खोज ही नही रह गया अपितु वह भावुकता और अधानुकरण को त्याग कर तर्क के द्वार पर आकर खडा हो गया और उसने महसूस किया कि मनुष्य का अन्वेषण किसी विराट् सत्ता से नही हुआ है और न ही वह उसके प्रति समर्पित होने के लिए बाध्य है। आधुनिक साहित्य मे भी इस बात पर जोर दिया गया कि सामान्य जन ही सब मूल्यो का निर्माता और निर्णायक है। इस बात को गोर्की ने इन शब्दो मे कहा है, "सामान्य जन केवल ऐसी शक्ति ही नही है जिन्होने सारे भौतिक मूल्यो का सृजन किया है अपितु यही *आत्मिक मूल्यो के एकमात्र और अनन्त स्रोत हैं, काल, सौन्दर्य और प्रतिभा* मे वे ही सामूहिक रूप मे प्रथम और प्रमुख दार्शनिक कवि है, विद्यमान सारी कविताओ, विश्व की सम्पूर्ण त्रासदियो—और उनमे भी सबसे महान त्रासदी विश्व-सस्कृति के स्रष्टा है।" अस्तित्ववादी दर्शन ने वर्तमान साहित्य को सर्वाधिक प्रभावित और मनुष्य की सम्पूर्ण स्वतन्त्रता का उद्घोष किया है। इस प्रकार मानववाद कोई एक सम्प्रदाय नही है, वह चिन्तन और कर्म को प्रेरित करनेवाली विचारधारा है।

इस शताब्दी के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री गुनार मिरडल ने अमेरीका को मानववादी विचारधारा का सबसे अधिक पोषण एव पल्लवन करने वाला देश बताते हुए कहा, "विश्व मे अमरीका के अतिरिक्त ऐसा अन्य कोई देश नही है जिसकी एक स्पष्ट विचार-पद्धति और स्पष्ट नैतिक-आदर्श हो। मेरे विचार से यह प्राचीन प्रबोधन आदर्श है जिसमे मानव-व्यक्ति की गरिमा तथा जनता मे स्वतन्त्रता, अवसर की समानता और भ्रातृत्व है।"[2] इस प्रकार क्या मानववाद

1. *जवाहरलाल नेहरू—हिन्दुस्तान की कहानी।*
2. There is no country on earth which has more of a common, explicit ideology more of a common, explicit morality, I might say This is the old Enlightenment ideal, *dignity of human individual, justice between people*, liberty, equality of oppurtunity and brotherhood"
—Gaunar Myrdal, Speaking of America
—James R Flynn—Humanism and Ideology, An Aristotelian View

एक राजनीतिक स्वतन्त्रता की भावना बन सकता है अथवा समाज कल्याण की भावना। अमरीका मे जैफरसन की राजनीतिक स्वतन्त्रता की भावना को मानववाद का आधार माना गया है। यह व्यक्तिगत आदर्शों का विवाद है। वास्तव मे मानववाद और आदर्शवादिता मे आधारभूत मूल्यो का सघर्ष है। क्या मानववाद यही है कि कुछ निर्बल लोग, कुछ सबल और समृद्ध लोगो की दया और करुणा पर जीवित रहे? क्या कुछ निर्बल व्यक्तियो को आगे बढने का अवसर नही दिया जायेगा? क्या कुछ अधिक समृद्ध व्यक्ति ही जैसा वह चाहें, रहने के लिए स्वतन्त्र है और अन्य नही? इस विचार से आधारभूत मूल्यो म सघर्ष होता है, उनकी एकरूपता मे व्यतिक्रम आ जाता है। जब आदर्शवादी विवाद उत्पन्न हो जाता है तो हमे डार्विन के 'योग्यतम की अति-जीविता' के सिद्धान्त की बात सोचनी पडती है कि सबल ही जीवित रहने का अधिकारी है। इसके कारण विकासवादी अभिधारणाओ ने मनुष्य का अव-मूल्यन किया। किन्तु यह होते हुए भी मनुष्य एक प्रमुख जीव है। जहाँ तक आदर्श का प्रश्न है उसम दृष्टि भेद होता है जैसे पूँजीवादी और साम्यवादी आदर्श, आस्तिक और नास्तिक आदर्श। एक ओर नाजी हिटलर ने विरोधियो का सहार अपना आदर्श माना, दूसरी ओर नित्शे के विचारानुसार एक श्रेष्ठ मानव को बहुत ऊँचा, शेष समाज समूह को निम्नकोटि का माना गया है।[1] इस प्रकार आदर्शवाद प्राय व्यक्ति विशेष तक ही सीमित रहता है। सभी अपने आदर्शों और मूल्यो को सर्वोत्तम मानव-जीवन-पद्धति के लिए आवश्यक बताते हैं। जैसे एक सामान्य धार्मिक व्यक्ति, ईश्वर की सर्वव्यापकता और कृपा पर निर्भर करता है, इसके विपरीत एक यथार्थवादी मनुष्य परिस्थिति और प्रकृति के न्याय पर बल देता है। अत हम यही कह सकते हैं कि कुछ विशिष्ट मूल्य ऐसे हैं जो सभी के लिए स्वीकार्य हैं किन्तु इनमे भी कही न कही अन्तर होता है।

1 " . There is a complication here in that not all ideologies hold up their way of life as an ideal for all mankind For example, racist ideologies (like the Nazis) and elitist ideologies (like Nietzsche) divide mankind into two ethical species, a fully human species and sub human one, *and urge only the former to espouse their ideal way* of life It might be better to say that ideologies tend to claim that their way of life is best for either mankind or an elite sub species of mankind ."

—James R Flynn—Humanism and Ideology, An Aristotelian View p 8

वर्तमान युग मे आदर्शों के मतभेद के कारण सामान्य जीवन और व्यक्ति पर गहरा प्रभाव पडा है, विशेष रूप से मार्क्सवादी दर्शन के जनवादी दृष्टिकोण ने एक नया विचार परिवर्तन दिया है। रैल्फ फाक्स ने इसको इस प्रकार अभिव्यक्त किया है, 'हमारी दुनियाँ को ऐतिहासिक सघर्ष ने विदीर्ण कर दिया है, ठीक वैसे ही जैसे कि एरासमस की दुनियाँ को ऐतिहासिक सघर्ष ने खडित कर दिया था और आज के सघर्ष मे मार्क्सवाद—उस वर्ग का दृष्टिकोण जिसे पुरातन के खडहरो ने युद्ध-क्षेत्र मे ला खडा किया है—वही भूमिका अदा करता है जो सामन्तवाद का स्थान लेने वाली दुनिया के निर्माण में मानवतावाद ने अदा की थी।"[1] हगरी के प्रसिद्ध मार्क्सवादी विचारक जॉर्ज लूकाच का कहना है, "इतिहास का मार्क्सवादी दर्शन मनुष्य की एक इकाई मे व्याख्या करता है और मानव-विकास के इतिहास को भी सम्पूर्णरूप में ही अपने विचार का विषय बनाता है' 'वह समस्त प्रकार के सामाजिक बधनो के *अन्तर्भूत नियमो का उदघाटन करने की कोशिश करता है। इसलिए श्रमजीवी* मानववाद का उद्देश्य पूर्ण मानव-व्यक्तित्व का पुनर्निर्माण करना है और एक वर्ग समाज की जिन शृखलाओ ने इस व्यक्तित्व को विकृत करके उसका अग भग किया है, उनसे उसे मुक्त करना है।'' प्राचीन यूनानी कलाकार और कवि दाते, शेक्सपियर, गेटे, बालजक, टॉलस्टॉय—ये सब मानव-विकास के महान युगो के समुचित चित्र हमे देते हैं और साथ ही अभग मानव-व्यक्तित्व की पुन स्थापना के विचार-युद्ध म ये हमारे लिए आलोक-स्तम्भ का भी काम करते हैं।"[2]

मार्क्स के मतानुसार मनुष्य सर्वोपरि है। मार्क्स ने मानववाद के सन्दर्भ मे जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओ की पूर्ति और उसके यथार्थवादी जीवन को अपना आदर्श माना है। मार्क्स व्यक्ति के स्थान पर समूहगत भावना से इस दर्शन को देखता है। *उसका मनुष्य आर्थिक विषमताओ की समाप्ति के* साथ सहयोग की भावना भी चाहता है। वह पूर्ण विकसित व्यक्ति है जिसमे मानसिक और शारीरिक योग्यताओ का एकीकरण है। मार्क्स मनुष्य के विषय म सामूहिक रूप से चिन्तन करता है, एक व्यक्ति के रूप म नही अपितु मानवता के रूप मे उस पर विचार करता है। उसके मतानुसार दैवी भावनाएँ व्यक्ति पर भार है। चाहे ये स्थिति हीगल या आगस्ट काम्ते के महान प्राणी की हो अथवा मार्क्स के साम्यवादी समाज की हो, इसम व्यक्ति विचारणीय नही होता, सामाजिक मनुष्य के विषय मे चिन्तन होता है।[3]

1 नरोत्तम नागर (अनु०)—उपन्यास और लोकजीवन, पृ० 24
2 George Lucas—Studies in European Realism p 4-5
3. "Marx thinks about man in collective form, not as individual but as humanity He thinks that divine attitudes

इस प्रकार की भावना को लेनिन ने 'श्रमिक संस्कृति' का नाम देते हुए लिखा है, 'मनुष्य जाति ने पूँजीवादी सामन्ती समाज और नौकरशाही समाज का भार वहन करके ज्ञान की जो राशि लगायी है, 'श्रमिक संस्कृति' उसके स्वाभाविक विकास का परिणाम ही होगी। ये तमाम मार्ग और पथ श्रमिक-संस्कृति' की ओर बढ़ते जा रहे हैं उसी तरह जिस तरह मार्क्स द्वारा फिर से व्याख्या किये गये राजनीतिक अर्थशास्त्र ने हमें यह दिखा दिया है कि कौन-सा मानव समाज उस तक पहुंचेगा और जिसने हमें वर्ग-युद्ध से लेकर श्रमिक-क्रान्ति तक के प्रारम्भ तक का मार्ग दिखाया।'[1]

वास्तव में मार्क्स ने सभी युगीन सन्दर्भों की पुनः व्याख्या की है, वह मानवीय स्वतन्त्रता को बहुत महत्त्वपूर्ण मानता है और पूँजीवाद को उसका शत्रु मानता है। मार्क्स की मानववादी विचारधारा ने सबसे पहले सब कुछ बदल देने पर जोर दिया और उसने बताया कि मानव कल्याण के लिए ऐसी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था चाहिए जिसमें व्यक्ति और समाज दोनों का ही पूर्ण विकास हो। लेनिन की श्रमिक-संस्कृति भी यही मानती है। मार्क्स ऐसे जनतन्त्र की कल्पना करता है जो वर्गहीन होने के साथ ही राज्यहीन भी हो। उसने सर्वहारा वर्ग के संघर्ष में, जो एक अमानवीय समाज से लड़ रहा था—मानवता की मुक्ति को देखा। वह वर्तमान समाज से सन्तुष्ट नहीं था, "मार्क्स ने वर्तमान समाज को एक अमानवीय संसार माना। उसे दृढ़ विश्वास है कि यह केवल मानव ही है जो अंत में देव तुल्य पूज्य होगा और अपने अस्तित्व के पूर्ण सत्य को पुनः प्राप्त करेगा। मार्क्स का मानववाद एक नास्तिक मानववाद है जिसमें बौद्धिक युगों के मानव विकास का मानववाद अपनी पूर्णता को प्राप्त करेगा।[2]

are burden for individual man Whether that is the state of Hegel or the great being of Auguste Comte, or the Communist Society of Marx, individual person is not considered but social man"

—International Encyclopaedia of Social Sciences, Vol X

1 Selected Works Vol IX pp 470-71, (Moscow)

2 ". .Marx thought the present society a dehumanised world Marx is sure that it is man himself which in the end will be defied or restored to the full truth of his essence Marxism is a humanism an atheistic humanism in which the anthropocentric humanism of the rationalists centuries reaches its full realisation .."

—International Encyclopaedia of Social Sciences—Vol X

मार्क्स का मानववाद किसी भी ऐसे तत्त्व को स्वीकार नही करता जिसमे दैवी अथवा अलौकिकता का तत्त्व हो। मार्क्स मानव को सामान्य प्राणी मानता है। वह इससे अलग से किसी व्यक्तित्व को भी स्वीकार नही करता, वह तो समस्त समाज के परिप्रेक्ष्य मे ही उसके विषय मे चिन्तन करता है। उसका नारा है, "One for all, all for one" मार्क्स का मानववाद उन लोगो के लिए है जो आज निर्बल है और कल सबल बन जाएगे। वह उनको संघर्ष के लिए तैयार करता है। *इस प्रकार वह शोषित और दलित-वर्ग का* मानववादी दार्शनिक है।

गाधी जी ने भी अपना स्वतन्त्रता का युद्ध मानव-कल्याण की इसी भावना से लडा था। वह नैतिक बल लेकर चले थे। उन्होने अपनी देशभक्ति की भावना को स्पष्ट करते हुए लिखा है, 'मेरी देशभक्ति का अर्थ है सम्पूर्ण मानव-जाति का कल्याण। इसलिए भारत के प्रति मेरी सेवा मानवता की सेवा है।"[1]

पाश्चात्य विद्वानो का एक वर्ग मानववाद को परोपकारवादी विचारधारा मानता है। इसमे समाज कल्याण की भावना आ जाती है। इस प्रकार उसका उद्देश्य ऐसी नैतिक भावना का प्रचार करना है जो पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष, घृणा और स्वार्थ को दूर कर उन्हे एक दूसरे के कल्याण के लिए प्रेरित करती है। अमेरीकी विद्वान राबर्ट एच० ब्रेनियर ने इस युग मे इसके प्रभाव को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है, "अब पृथ्वी के दूसरे भाग म दूर के लोगो से मिलने के लिए एक ऐसी यात्रा करनी है, उनको धोखा देने या लूटने के लिए नही···अपितु उनके कल्याण के लिए और जहां तक हमारी शक्ति हो, अपने समान ही उनके जीवन को सुखद बनाने के लिए।"[2] इस कथन मे साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के दुष्प्रभावो की भर्त्सना और सर्व-समानता की भावना मिलती है। इसके लिए मानव समाज का पारस्परिक सम्बन्ध बहुत अनिवार्य है, उसमे समग्रता किस प्रकार आ सकती है इस विषय मे यर्वेन्ट एच० क्रीकोरियन लिखते हैं, "इस सिद्धान्त के तीन आधार-स्तम्भ हैं, महान अनुभूति

1 '·· My patriotism includes the good of mankind in general Therefore my service to India includes the service of humanity"
—Sriman Narayan Aggarwal—Selected works of Mahatama Gandhi

2 ". A voyage is now proposed to visit a distant people on the other-side of the globe, not to cheat them not to rob them...but merely to do them good and make them as far as in our power lies to live as comfortably as ourselves.. "
—Robert H. Bremner—American Philanthrophy, p 165

जो मानवीय-सम्बन्धों को जोड़ती है और स्वार्थपरता की वृत्ति को दूर करती है, धोखाधड़ी और षड्यन्त्र जो स्वार्थों में टकराहट उत्पन्न करते हैं उनमें एकता लाती है और वह शक्ति जो अन्त स्वार्थों के मतभेद को दूर करती है।"[1] मानववादी विचारधारा को विशेषरूप से एक ऐसी मानव सम्बन्धित विचारधारा माना गया है जिसका लक्ष्य और आदर्श मानव कल्याण है। इसमें ध्वंसात्मक प्रवृत्ति के स्थान पर सृजनात्मक तत्त्व होते हैं। अमरीकी राजनीति-शास्त्री जेम्स आर० फ्लायन इस विषय में कहते हैं, 'मानववादी आदर्श है—मानवीय प्रेम का जीवन और रचनात्मक कार्य, किन्तु मानववादी आदर्श में विभिन्नता मिलती है।"[2] इसी सम्बन्ध में वे आगे लिखते हैं, "मानववादी आदर्श एक कष्टपूर्ण कर्त्तव्य का पालन या एक बलिदान अथवा उदारता और नैतिक कल्याण है, विशेष रूप से जब इसमें अपने और दूसरों के संवर्द्धन का लक्ष्य होता है। ..."[3]

वर्तमान युग के राजनीतिक और अर्थशास्त्री इस युग को द्वन्द्व का युग मानते हैं और इस युग-संघर्ष की स्थिति के प्रति आज का मानववादी विचारक सचेत है। वह वर्तमान सभ्यता और संस्कृति में ह्रास को ही मानव-मूल्यों के पतन का कारण बताता है, "वे यह आरोप लगाते हैं कि पाश्चात्य यूरोपीय सभ्यता की रिक्तता ही उन आशावादी और प्रकृतिवादी भावनाओं के दिवालियेपन का प्रत्यक्ष परिणाम है जिनके अंकुर पुनर्जागरण काल में प्रस्फुटित हुए थे और जो हमारे युग में पूर्ण पुष्प के रूप में खिल उठे, वे यह

1 "...This truth rests upon three pillars, vital myths which cement human relationships and conceal differences of interest, fraud or manupulation which negotiates differences of interest, and force which ultimately settles differences of interests ..'
—Yervent H Krikorian (Ed)—Naturalism and the Human Spirit, p 63

2 " humanist ideal is . as a life of humane love and creative work There are varieties on the humanist ideal . "
—James R Flynn—Humanism and Idealogy An Aristotelian View, p 2

3 " He would call the performance of a painful duty, or a sacrifice, or heroism, morally good primarily when it was intended to increase the fulfillments of himself or others .'
—वही पृ० 174

कहते हैं कि विज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने संस्कृति और अनुभूति के सभी पक्षों को इतना अधिक प्रभावित किया है कि समस्त सत्य, स्थापनाएँ और मूल्य अन्तिम निर्णय के लिए उस पर छोड दिये गये और इनको मानव प्रतिभा, साहस और गौरव की पुनर्व्याख्या के लिए प्रयोग नहीं किया गया।"[1] इस युग के नीतिशास्त्रियों और धर्मशास्त्रियों ने मानव मूल्यों के समग्र पतन के प्रति गहन चिन्ता अभिव्यक्त की है और उन कारणों को खोजा है जिनसे कि मानवता का पतन हुआ है। नेहरूजी ने इस बात को माना है कि मानवता की उन्नति में धर्म न बहुत सहायता ही नहीं की अपितु उसके लिए त्याग और बलिदान भी किए है। धर्म मनुष्य की अन्तरात्मा के उन्नयन का साधन ही नहीं था अपितु नैतिक धारणाओं का उत्स भी था। उसने मनुष्य को वैयक्तिक स्वार्थों को त्यागकर सामञ्जस्य के लिये प्रेरित किया। मध्यकाल में मानववादी आस्थाओं और धर्म की प्रचलित मान्यताओं में संघर्ष आरम्भ हुआ। मानववाद न धर्म में सहधर्मिता की भावना का प्रतिपादन किया। धार्मिक मानववादी धर्म को इहलोक और परलोक के कल्याण के लिए आवश्यक बताते हैं। वह धर्म की निष्क्रियता और पलायनवादी प्रवृत्ति को स्वीकार नहीं करते। उनका मत है कि सामाजिक आदर्शों और मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए धर्म आवश्यक है। मानव प्रेम ईश-वन्दना के समान ही धर्म का मूल आधार है। वास्तव में धर्म व्यक्तिगत मान्यता पर बहुत कुछ निर्भर करता है। क्योंकि यह आज भी वैयक्तिक विश्वास की वस्तु है। धर्म का विरोध तब हुआ जब वह सम्पन्न वर्ग के लोगों के स्वार्थ साधन का माध्यम बना और संकीर्ण मान्यताओं ने सामाजिक अत्याचार और शोषण को बढाया। मार्क्सवाद ने धर्म को अफीम कहा है, चीन की साम्यवादी क्रान्ति के मूल में यही विचार है। यूरोप में मध्यकाल में पोप के धर्मोन्माद से जो

1 "They allege that the bankruptcy of Western European civilization is the direct result of the bankruptcy of the positivists and naturalistic spirit which sprouting from seeds scattered during the renaissance, came to full flowers in our own times They assert that the science and the scientific attitude pervaded every sphere of culture and experience that all truth, claims and values were submitted to them for final arbitration, and that they were employed not so much to reinterpret as to deny the existence of human intelligence, courage and dignity..."
—Proceedings of the conference of Science Philosophy and Religion in their Relation to the Democratic Way of Life Hallowell Ethics III, No 3 (1942), p. 337

अमानवीय अत्याचार हुए और यातनाएँ दी गयी, उन्होंने धार्मिक दृष्टिकोण का पतन किया। उस काल मे धर्म आत्मिक उन्नयन के स्थान पर भौतिक सुखो की प्राप्ति का साधन और स्वार्थपरता का कारण और मानव-मुक्ति के स्थान पर मानव-बन्धन का साधन बन गया था। मानववाद ने उसे एक उदार कला और शिक्षा का रूप प्रदान करने का प्रयत्न किया।[1] वैज्ञानिक उन्नति ने दिव्य-शक्तियो को मनुष्य मे ही निहित करने का प्रयत्न किया। जे० वी० प्रीस्टले ने धार्मिक अन्धविश्वासो की आलोचना की है और टी० एस० इलियट ने अपनी कृति, 'मानववाद पर पुनर्विचार' मे दिव्य-सत्ता विरहित मानववाद की कल्पना स्वीकार नही की है। वे धर्म का मानववाद के लिए आवश्यक बताते हैं। डा० राधाकृष्णन ने अपनी पुस्तक 'ईस्ट एण्ड वैस्ट रिलिजन' मे धर्म के आधार पर नव मानववाद का प्रतिपादन किया है और वह धर्म को भौतिक और आध्यात्मिक कल्याण के लिए अनिवार्य मानते हैं। प्रसिद्ध कैथोलिक मानववादी जाक मारिता ने मानवता और मानव-मूल्यो के पतन पर विचार किया है। वे धर्म को जन समाज के हित के लिए और उसकी समानता के लिए आवश्यक मानते हैं। उन्होंने ईसाई धर्म पर बहुत बल दिया है और वे मानवता के पतन का उपचार बताते हुए लिखते हैं, "बौद्धिक दृष्टि से ससार और सभ्यता को वर्तमान-युग मे जिस चीज की आवश्यकता है और चार शताब्दियो से मानव कल्याण के लिए जो चाहिए वह है ईसाई दर्शन। इसके स्थान पर उत्पन्न हुआ एक अन्य दर्शन और एक अमानवीय मानववाद मानव का ध्वस करने वाला मानववाद, क्योकि वह ईश्वर के स्थान पर मानव केन्द्रित है। हमने उसे स्वीकार कर लिया है और हम अपनी आखो के सामने उसके हिंसापूर्ण और मानव विरोधी रूप को देख रहे है, जिसमे बौद्धिकता नष्ट होकर दासता की भावना आ गयी है और जिसमे बौद्धिक मानववाद अन्तिम रूप से लुप्त हो गया है।'[2]

1 Humanism furnished two of the principal roots of the Reformation—criticism of the medieval church and the free study of the scriptures "

—Encyclopaedia of Social Sciences—Vol VII VIII, p 540

1 " what the world and the civilisation have needed in modern times in the intellectual order, what the temporal good of man has needed for four centuries is the just Christian Philosophy In their place arose a separate philosophy and an inhuman Humanism a Humanism destructive of man because it wanted to be centered upon man and not upon God We have drained the cup , we now see before our eyes that bloody anti Humanism, that ferocious irration-

मानववाद पर और उसके स्वरूप निर्धारण पर विभिन्न विचारधाराओं, धर्म, विज्ञान, पूंजीवाद, साम्यवाद, आध्यात्मिकता, नीतिशास्त्र, परोपकारवादिता और साम्राज्यवाद के प्रभाव के साथ अहिंसा आन्दोलनों का, वर्ण और वर्ग के विरुद्ध संघर्ष का प्रभाव भी पड़ा है। इस युग में विभिन्न देशों में मानववादी विचारधारा का विकास अत्यन्त तीव्रगति से हुआ है। समाज में जैसे-जैसे धर्म का स्थान विज्ञान ने, अंधानुकरण का तर्क ने, रूढ़ि और परम्परा का नये मूल्यों ने, सामन्तवाद का समाजवाद ने स्थान ले लिया है, वैसे-वैसे ही सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों के परिवर्तनों के साथ नये-नये मूल्यों की स्थापना होती चली गई। प्रत्येक राष्ट्र ने अपनी विचारधारा का प्रचार किया, पूंजीवादी और यूरोपियन राष्ट्रों में धर्म प्रधान भावना, परोपकारवादिता और प्रजातान्त्रिक मूल्यों को मानववाद का आधारभूत सिद्धान्त माना गया। साम्यवादी विचारधारा के राष्ट्रों ने शोषण का विरोध करते हुए सामाजिक समानता का नारा बुलन्द किया। भारत में अहिंसा और सत्याग्रह, गांधीवादी मूल्यों को स्वीकार किया गया। इस कारण इस विचारधारा में सर्वत्र मानव-मूल्यों की एकरूपता पर बल दिया गया। संयुक्त-राष्ट्र संघ ने इस कार्य के लिए विश्व भर में अनेक संस्थाओं की स्थापना की और मानव-कल्याण के कार्यों को प्रोत्साहन दिया।

यह युग प्रजातन्त्र का है जिसमें मानव स्वतन्त्रता, सांस्कृतिक विकास, शिक्षा का प्रचार, आर्थिक समानता और मानव अधिकारों की उदार नीति पर बल दिया गया है। इस विचार को प्रस्तुत करते हुए क्रीकोरियन लिखते हैं "सम्भवत 'सामाजिक समानता' की संक्षिप्त सूक्ति का अर्थबोधन इस तत्व को व्याप्त करता है कि शैक्षणिक और आर्थिक प्रजातन्त्र को ही प्रजातन्त्र की सर्वाधिक उचित अभिव्यक्ति मान लिया जाए ..।"[1] मानववादी विचारधारा कभी धर्म से, कभी सामन्तवाद से, कभी तानाशाही से, कभी उपनिवेशवाद, कभी शोषण, कभी नैतिक पतन से विभिन्न युगों में संघर्ष करती रही है।

alism and trend to slavery in which nationlistic Humanism finally winds up"

—Jacques Maritain—Contemporary Renewals in Modern Thought—Religion in the Modern World, p 14

1. "Perhaps the synoptic phrase, 'social equality' whose connotations encompass potential, educational and economic democracy may be taken as the most appropriate expression of the meaning of democracy in the broader sense"

—Yervent H. Krikorian (Ed)—Naturalism and the Human Spirit, p 50

आधुनिक युग मे साहित्य और समाज मे मानव-मूल्यो के प्रति समान रूप से विचार हुआ है। किसी देश को नई राजनीतिक अथवा सामाजिक-व्यवस्था के लिए संघर्ष करना पडा और किसी को दासता के विरुद्ध युद्ध करना पडा। इस विचारधारा को अनेक दौरो को पार करना पडा है और अनेक प्रयोगों से निकलना पडा है। दर्शन-शास्त्र ने उसे नये आयाम दिए और विज्ञान ने उसे नये क्षितिज प्रदान किए।

यूनानी दर्शन के आदर्श समाज की रचना पर बल देने वाले नैतिकतावादी दर्शन और सुखवादी दर्शन तथा भारत मे वैदिक, चार्वाक-दर्शन और जैन और बौद्ध विचारधाराओ ने समान रूप से मानव-मूल्यो की स्थापना के लिए अनेक प्रयत्न किए और उनका विकास किया। धर्मशास्त्र की विचारधारा अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र, और राजनीति शास्त्र से सदैव ही कुछ न कुछ भिन्न रही है। मानव विषयक धर्म शास्त्रीय सिद्धान्तो के अनुसार मनुष्यो मे स्वभावत विकार है, वह सदैव ही अपनी इच्छाओ और लिप्साओ स प्रभावित रहा है इसलिए वह कभी भी अपने पशु-भाव से मुक्त नही रहा।[1] मानववादी विचारो के विकास के लिए मानव स्वभाव का परिष्कार अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए किसी दैवी शक्ति की आवश्यकता नही है। मानववादी यथार्थ तथ्यो को मान्यता देता है। वह वास्तविक परिस्थिति के अनुसार ही अपने सिद्धान्तो को बनाना चाहता है। आज के युग के मनुष्य के विचारो पर जिन दार्शनिक विचारो का गहनतम प्रभाव पडा है वे मानववादी हैं। मार्क्सवादी विचाराधारा मे कल्पना के लिए स्थान नही है, उसने हिंसक-क्रान्ति का उद्‌घोष किया किन्तु मानव-कल्याण के लिए, समग्र चेतना के लिए और पराधीनता को बढाने वाले तत्वो का विरोध करने के लिए। नैतिकतावादी इस पर आपत्ति कर सकते हैं। सामाजिक शोषण क्या हिंसा नही है, इसका प्रतिरोध किस प्रकार से किया जाए। धर्म भी दुर्बल की रक्षा करता है, किन्तु निर्बल साधनो से, मार्क्सवाद दलित की रक्षा करता है, सबल साधनो से। यही तर्क बुद्धि-जीवियो का भी है। रसेल ने महायुद्धों का और अणु-शस्त्रो का घोर विरोध किया। मार्टिन लूथर किंग ने जातिवाद और वर्णभेद के विरुद्ध आवाज उठाई। अस्तित्ववादी दर्शन व्यक्ति को स्वय अपना और अपने जीवन-मूल्यो का नियामक बताता है। समाजवादी दर्शन के अनुसार यह विचार मनुष्य मे अराजकता उत्पन्न कर सकता है, वह समाज से अलग और दूर हो सकता है, यह अलगाव की भावना उत्पन्न करता है। सार्त्र ने कही-कही मार्क्सवाद का समर्थन किया है किन्तु यह दोनो ही एक स्वतन्त्र समाज के निर्माण के लिए प्रयत्नशील रहे हैं।

1 Yervent H Krikosian (Ed)—Naturalism and the Human Spirit, p 62

मानव ने इस युग मे अपने अस्तित्व की सुरक्षा मे आशका अनुभव की है। मनुष्य का जीवन एक निराशा, अविश्वास, कुठा, आत्महीनता म व्याप्त हो गया है। उसम मानव जीवन और सामाजिक आदर्शों के प्रति निष्ठा हीनता आ गई है। उसके असन्तुलन और सत्रास के अनेक कारण हो गए, आर्थिक सघर्ष, शीत-युद्ध, अशान्ति, शासकीय अयोग्यता, निरकुशता आदि। इस प्रकार के बढते हुए सत्रास से रसेल भी निराश थे, उन्होने मानवीय जीवन मे अधिक सौहार्द्र उत्पन्न करने का प्रयत्न किया।

वर्तमान सघर्ष बहुल जीवन मे एक ऐसे उदात्त आदर्श की आवश्यकता है जिसमे मानव मे मानव के प्रति सौहार्द्र और सवेदना हो और जो जीवन म विघटन उत्पन्न करने वाले तत्वो मे रसात्मकता तथा रागात्मकता भर सके। जिमसे सतप्त, शकित, भय-ग्रस्त और विषम परिस्थितियो मे सघर्ष करता हुआ मानव मुक्ति प्राप्त कर सके। 'सर्वहारा' वर्ग की घुटन, असतोष, दयनीयता और पीडा दूर हो सके। आज ऐसे उच्चतर मूल्यो की प्रतिष्ठा की आवश्यकता है जिसमे व्यक्ति जाति, प्रदेश और राष्ट्र की सीमाओ से उन्मुक्त होकर प्राणी मात्र के लिए सवेदना का अनुभव कर सके। वह अशक्त और असमर्थ प्राणियो के हित के लिए सघर्ष करे। इस प्रकार मानववाद की मान्यता है, "मनुष्य के भीतर पाशविक और दिव्य प्रवृत्तियो के बीच कुछ ऐसा है जो पूणत: मानवीय है और उसी को नैतिकता, कला, सौन्दय-बोध तथा अन्य आचार-विचार का प्रतिमान मानना चाहिए। यह मनुष्य को भावना और विचारणा के नय और स्वस्थ क्षितिज तो द हो सकता है। हैलेन और सेनेका ने दासता का विरोध किया और थामस मूर ने भौतिक मूल्यो का विरोध किया क्योकि ये मनुष्य को आत्म-केन्द्रित, स्वार्थी और सकुचित बनाते हैं। अट्ठारहवी उन्नसवी शती म वेन्थम, थामस और एमरसन ने समाज सुधार के लिए कार्य किया। प्रबुद्ध और क्रान्तिकारी वर्ग ने शोषित-पीडित वर्ग के पक्ष म सदैव ही आवाज उठाई है। उन्होन सैद्धान्तिक और उपदेशात्मक स्तर से हटाकर उसे व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया। आधुनिक भारतीय जीवन मे ये भावना आध्यात्मिकता से समन्वित होकर भौतिक कल्याण का साधन बन गई। यद्यपि बीसवी शताब्दी मे इलियट और रसल जैस विद्वानो और दार्शनिको ने मानववादी आदर्शों की असफलता को देखा किन्तु इससे उन्हे और अधिक प्रोत्साहन मिला है।

मनुष्य अपने ज्ञान की सीमा और साधनो का प्रयोग मानव कल्याण के लिए कर रहा है। उसके धर्म, दर्शन, नैतिकता और आदर्शों के मानदण्ड परि-वर्तित हो रहे है, जिससे वर्तमान जीवन मे उत्पन्न व्यर्थता, निरर्थकता और रिक्तता दूर हो सके। वह स्वय को और समाज को एक नयी दिशा देने केलिए प्रयत्नशील है। इस चिंतन को नये परिप्रेक्ष्य और सदर्भ मे देखने की आवश्यकता है। यही मानव के भविष्य को समृद्ध और कल्याणमय बना सकता है।

मानव का स्वरूप

यह विश्व, व्याप्त मूलसत्ता से उद्भूत एव निर्मित, उपकरणो के सघात का परिणाम है। विश्व का सृजन किन उपादानो से और किस प्रकार हुआ, यह एक रहस्य है, जिसका समाधान करने के लिए युगो से ज्ञान-विज्ञान की सहायता लेकर अन्त -बाह्य विश्लेषण करने की अविराम चेष्टा की जा रही है। इस चराचर जगत् मे चेतन तत्व का महत्व अधिक है क्योकि वह गतिमान एव सजीव है तथा सृष्टि का भौतिक समन्वय उसी के निमित्त है। जीवधारियो मे भी मनुष्य का स्थान सर्वोपरि है क्योकि वही एक ऐसा प्राणी है जो विवेक -बुद्धि से समन्वित है तथा ज्ञान-गरिमा का अधिकारी है। महाभारत मे लिखा है कि ब्रह्म का रहस्य यही है कि सृष्टि मे मानव ही सर्वश्रेष्ठ है।[1]

मानव का स्वरूप बडे व्यापक अर्थ का परिचायक है। मानव की श्रेष्ठता का अनुभव करते हुए ही पुरुष सूक्त[2] मे ईश्वर के लिए *पुरुष सज्ञा का उपयोग* किया गया है। निसर्ग की शक्तियो का दिव्य-स्वरूप धीरे-धीरे विकसित होता गया और उसके विकास की चरम-सीमा को व्यक्त करने के लिए 'मनुष्य' या 'पुरुष' शब्द से अधिक उचित कोई शब्द वेदो को नहीं मिला।[3] पौर्वात्य दार्शनिको के समान ही पाश्चात्य चिन्तको ने भी यही कहा है कि इस सृष्टि मे मानव से अद्भुत और श्रेष्ठ अन्य कुछ नही है।[4] मनुष्य ही इस सृष्टि की

1 गुह्य ब्रह्म तदिद ब्रवीमि, न मानुषात्छ्रेष्ठतर हि किंचित्।
—महाभारत, शा० प० 180/12

2 सहस्र शीर्षा पुरुष· सहस्राक्ष सहस्रपात्।
स भूमिम् विश्वतो वृत्वा त्यतिष्ठद्दशागुलम् (1)
पुरुष ऐवद सर्वं यद्भूत यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्ये शोनो यदन्ते नाति रोहति (2) ऋ० वे० 1 90

3. वैदिक सस्कृति का विकास—तर्कतीर्थ लक्ष्मण शास्त्री जोशी, अनु० डा० मोरेश्वर दिनकर पराडकर, पृ० 32

4 Many are the wonders of world
And none so wonderful as Man (Sophocles)
—Corliss Lamont—Humanism As A Philosophy, p 80

पूर्ण अभिव्यक्ति करने मे समर्थ है। इस सृष्टि के रहस्य का ज्ञाता भी वही है। पास्कल नामक पाश्चात्य विद्वान का मत है कि मनुष्य ही इस ससार का सर्वश्रेष्ठ बौद्धिक जीव है।[1] ज्ञान का अधिकारी मनुष्य ही है। मनुष्य ज्ञान की प्राप्ति और उसकी अभिव्यक्ति कर सकता है तथा वही कर्म का कर्त्ता है।[2]

धार्मिक और नैतिक भावनाओ को सूचित करने का माध्यम 'पुरुष' या "मनुष्य' ही है। ऐतरेय उपनिषद् का वचन है, 'मनुष्य विश्व-शक्ति की सुकृति है। मनुष्य का अर्थ है सुकृत या पुण्य।'[3]

मानव शरीर (जन्म) का महत्त्व

मानव शरीर प्राप्त करके ही इस ससार के रहस्य का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है और सिद्धि उपलब्ध हो सकता है। ब्रह्म का रहस्य मानव मे ही निहित माना गया है क्योकि नर ही नारायण के समीप है।[4] इस ससार मे वही परम सत्ता का साकार रूप है। बाइबल मे इस तथ्य का उल्लेख अनेक स्थलो पर मिलता है।[5] कुरान मे लिखा है कि मनुष्य पृथ्वी पर अल्लाह का प्रतिनिधि है[6] *तथा अल्लाह ने मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ आकार का बनाया है।*[7]

मानव जन्म प्राप्त करने की महत्ता के सम्बन्ध मे श्री गोपीनाथ कविराज लिखते हैं, 'प्राचीन हिन्दुशास्त्र मे—केवल हिन्दुशास्त्र मे ही नही, अन्यान्य देशो के धर्मशास्त्रो मे भी इतर प्राणियो की जीव देह की अपेक्षा मानव-देह को अधिक उत्कृष्ट माना गया है। भगवान श्री शकराचार्य ने मनुष्यत्व, मुमुक्षत्व *तथा महापुरुष सश्रय, इन तीनो का अति-दुर्लभ पदार्थ के रूप मे वर्णन किया* है। कहने की आवश्यकता नही कि इन तीनो मे भी मनुष्यत्व ही प्रधान है, क्योकि मनुष्य-देह की प्राप्ति हुए बिना मुक्ति की इच्छा तथा महापुरुष या सद्गुरु का आश्रय प्राप्त करना सम्भव नही है। चौरासी लाख योनियो के बाद प्राकृतिक विधान से सौभाग्यवश मनुष्य-देह की प्राप्ति होती है। चौरासी लाख योनियो मे स्थावर, जगम सबका समावेश है। स्वेदज, उद्भिज और जरायुज—

1 S Radhakrishnan and P T Raju (Eds)—The Concept of Man, p 9
2 C Kunhan Raja—Some Fundamental Problems in Indian *Philosophy, p 321*
3 ताम्य पुरुषमानयत्ता अब्रुवन् सुकृत बतेति। पुरुषो वाव सुकृतम्।' ऐत० उ० 1/2/3
4 'पुरुषो वै प्रजापतेर्नेदिष्ठम्'—शतपथ ब्राह्मण 2/5/1/1
5 बाइबल—जेनेसिस 1/2, 6/27, 5/1, 9/6
6 कुरान—सूरा 2 व 35/35
7 कुरान—सूरा 95/4, 64/3, 40/96

इन त्रिविध प्राणियो म जरायुज श्रेष्ठ है तथा जरायुजो म मनुष्य श्रेष्ठ होता है।'[1]

मनुष्य जन्म की श्रेष्ठता के विषय म श्रीमद्भागवत म अनेक उल्लेख मिलते हैं। इस दुर्लभ शरीर की प्राप्ति के लिये भगवान कहते हैं कि अनेक जन्मो के पश्चात मनुष्य शरीर की प्राप्ति होती है क्योंकि अन्यान्य प्राणियो के समान हिंसा द्वेष आदि वृत्तियो के प्रबल होने पर मृत्यु के अनन्तर इतर योनियो म ही जन्म लेना पडता है। अत्यन्त भोगाकाक्षा के साथ बहुत पुण्य सचय करने पर देवलोक म जन्म होता है। भगवान स द्वेष करन के फलस्वरूप असुर श्रेणी म जन्म मिलता है और मनुष्य देह की पुन प्राप्ति की आशा बहुत कम होती है।[2]

इसी कथन को स्पष्ट करत हुए कहा गया है कि मानव शरीर को बनाकर परब्रह्म भगवान अपनी कृतकृत्यता का व्यक्त करत हैं। भगवान ने अपनी आत्म शक्ति माया के द्वारा जड सृष्टि वृक्षादि तथा चेतन सृष्टि पशु मृग आदि को बनाया किन्तु इमस सन्तुष्ट न होकर मनुष्य को बनाकर अपनी काय-कुशलता स सन्ताप प्राप्त किया कि मुझे और मेरी सृष्टि को समझने वाला अब उत्पन्न हो गया है।[3]

इतना दुर्लभ होन पर भी मानव शरीर शाश्वत तथा अजर नहीं, इसलिए विदहराज निमि नौ योगियो म कहत हैं, मनुष्य जन्म की प्राप्ति सहज नहीं है, उसकी प्राप्ति का कोई निश्चय भी नही होता तथापि इसकी प्राप्ति क्षण-भगुर ही होती है।[4]

जैन दशन म भी मनुष्य जन्म के महत्व को स्वीकार किया गया है। मानव जीवन शुभ का लक्षण है क्योंकि उसका उदय शुभ की सिद्धि के लिए होता है। इस विषय मे भगवान महावीर कहते हैं कि जब अशुभ कर्मों का विनाश होता है तभी आत्मा शुद्ध, निर्मल और पवित्र बनती है और तभी प्राणी मनुष्य योनि को प्राप्त करता है।[5]

उत्तराध्ययन सूत्र म एक स्थान पर गौतम गणधर को उपदेश देते हुए भगवान महावीर मानव देह की महत्ता का वर्णन इस प्रकार करते है, 'ससारी

1 कल्याण—मानवता अक (देखिए श्री गोपीनाथ कविराज का लेख—मनुष्यत्व), पृ० 148
2 श्रीमद्भागवत् 11/9/29
3 सृष्ट्वा विविधान्यजयात्मशक्त्या
वृक्षान् सरीसृपपशून् खगदश मत्स्यान्।
तैस्तैरतुष्टहृदय पुरुष विधाय
ब्रह्मावलोकधिषण मुदमाय देव ॥ (श्रीमद्भागवत 11/9/28)
4 दुर्लभो मानुषो देहो देहिना क्षण भगुर —श्रीमद् भा० 11/2/29
5 कम्माण तु पहाणए आणुपुव्वी कयाइउ।
जीवा सोहिमणुप्पत्ता आययति मणुस्सय ॥ उत्तराध्ययन सूत्र 3/7

जीवो को मनुष्य का जन्म चिरकाल तक इधर उधर भटकने के पश्चात बडी कठिनाई से प्राप्त होता है वह सहज नही है। दुष्कर्म का फल बडा भयकर होता है। अतएव हे गौतम ! क्षण भर के लिए भी प्रमाद मत कर।[1]

मानव जीवन और देह प्राप्ति के सम्बन्ध मे बौद्ध धर्म का मत भी वैदिक मान्यता तथा दर्शनो से भिन्न नही है। इन्होने मानव को हो देव स्वरूप स्वीकार किया है और मानव-शरीर की प्राप्ति को उत्तम माना है। इसके अनुसार मानव-रूप प्राप्त होने पर ही सत्य ज्ञान की उपलब्धि हो सकती है।

मानव जीवन बडा श्रेष्ठ है। यह पशुता मानवता और देवत्व का सयोग है।[3] इतना ही नहीं मानव को निर्विवाद रूप स इस ससार की क्रियाओ का मूल और स्रोत माना गया है। कन्फ्यूशियस कहते हैं कि चाहे हम किसी भी दृष्टि से विचार करें मानव इस विश्व का सूत्र है।[4] प्राय सभी चिन्तक इस विषय पर एक मत हैं कि इस समस्त सृष्टि की विकास प्रक्रिया म मानव ही सर्वश्रेष्ठ है और वही इस ससार म सब वस्तुओ पर राज्य करता है। इस प्रकार मनुष्य ईश्वर से तनिक ही नीचे है।[5] वास्तव म मानव मे दिव्यता मिलती है।

मानव मे ईश्वरीय-गुण निरूपण की कामना स ही अवतारवाद की भावना प्रादुर्भूत होती है। जनसाधारण श्रेष्ठ पुरुषो मे श्रद्धातिरेक के कारण उन्ह ब्रह्म रूप मान कर उनके प्रति प्रबल आस्था और गहन विश्वास प्रकट करते हैं। पुराण और इतिहास मे राम, कृष्ण बुद्ध और महावीर जैस अनेक महापुरुषो का चरित्र इसका प्रमाण है।[6] अवतारवाद ने मानव शरीर को प्राप्त करने के दुर्लभ अवसर की महत्ता का प्रतिपादन पौराणिक, ऐतिहासिक एव दार्शनिक आधारो पर बड सबल रूप से किया है।

अवतारी महामानव ने अपने आचरण लोक-कल्याण की भावना तथा अधम और दुख से मुक्त[7] कराने की साधना द्वारा विश्व मे आदर्श मानव का चरित्र प्रस्तुत किया। निरपेक्ष भाव स समदृष्टि रखते हुए ये महापुरुष सत्कर्मों द्वारा समाज के लिए पूज्य बन जाते हैं। जिस प्रकार भगवान निष्काम और नि स्वार्थ

1 दुल्लहे खलु माणुसे भवे चिरकालेण वि सव्वपाणिण।
गाढा य विवाग कम्मुण समय गोयम ! मा पमायए॥ —उत्तराध्ययन सूत्र 10/4
2 S Radhakrishnan and P T Raju (Eds)—The Concept of Man p 256
3 The Complete Works of Vivekanand Vol VI p 123
4 Lui Wuchi—Confucius His l fe and time p 155
5 S E Frost—Ideas of the Great Philosophers P 56 57
6 Aldous Huxley—The Perennial Phiosophy p 34
7 S Radhakrishnan and P T Raju (Eds)—The Concept of Man p 256

भावना से सृष्टि मे प्राणिमात्र का कल्याण करते हैं, उसी प्रकार श्रेष्ठ-जन विश्व मे कल्याण और सद्भाव का प्रसार करते हैं।[1]

मानव को उत्तम कार्यों के लिए प्रेरित करना ही महामानव (अवतारो) का लक्ष्य होता है। धर्म-सस्थापना तथा सदाचार-प्रचार के निमित्त भगवान को मानव शरीर धारण करना पडता है। अवतारो की समस्त दैहिक क्रियाएँ सामान्य मनुष्य के समान ही होती हैं किन्तु उसके पीछे एक दिव्य शक्ति कार्य करती है।[2] मानव गुणो की दिव्यता एव श्रेष्ठता एक लोकप्रिय और श्रद्धेय व्यक्तित्व में मिलती है। इस प्रकार मानव के शरीर तथा उसके सासारिक रूप का बडा महत्त्व है। नारायण का नर रूप मे अवतरित होना मानव और ईश्वर के सामीप्य को सिद्ध करता है।

मानव को इसी श्रेष्ठता और गौरव के कारण सासारिक प्राणियो मे प्रधानता और आदर प्रदान किया जाता रहा है। मानव का ईश्वर से ऐक्य ईश्वरीय सत्य को स्वीकार करना है।[3] अमरीकी समाज-शास्त्री श्री अर्नेस्ट कैजिरर का यह विचार अत्यन्त समीचीन प्रतीत होता है कि ईश्वर ने मानव को अपने ही प्रतिरूप मे बनाया है अत वास्तव मे यह उस सृष्टा का समरूप ही है।[4] भारतीय दर्शन के अनुसार एकता मे साक्षात् ईश्वर निवास करता है अत मानव मे समभाव और सौहार्द का होना उसमे ईश्वरीय गुण की उद्घोषणा करता है। मानव का यह प्रथम धर्म है अत इस धर्म की पूर्ति के लिए उसे सचेत एव क्रियाशील होना चाहिए।

मानव को अपने दिव्य एव नैसर्गिक गुणो का पोषण तथा विकास करते हुए जीवन मे पूर्णता प्राप्त करनी चाहिए। ऐसा होने पर ही वह मानव-धर्म को पूर्ण कर सकेगा और मानव-धर्म के समुचित पालन स ही वह गुण सवर्द्धन तथा आत्म विकास की ओर उन्मुख हो सकता है।

मानव और आत्मज्ञान

मानव, जिसका इतना महत्त्व है, जिसे सृष्टि का मूल केन्द्र माना जाता है, क्या है? वह स्वय अपने लिए एक समस्या है। यह सभव है कि मानव इस ससार के रहस्य को समझ ले, किन्तु स्वय अपने लिए वह एक रहस्य सूत्र, एक प्रश्न चिह्न बन कर रह जाता है।[5] वह निरन्तर अपनी ही खोज करता रहता

1 Aldous Huxley—The Perennial Philosophy, p 287.
2 Letters of Aurobindo—Fourth Series, p 641
3 Aldous Huxley—The Perennial Philosophy, p. 68
4 Ernst Cassirer—An Essay on Man p 25
5 C. Kunhan Raja—Some Fundamental Problems in Indian Philosophy, p. 321.

है, अपने अस्तित्व के सम्बन्ध मे उत्सुक होकर अपना और अपने परिवेश का परीक्षण करता है।[1] इसीलिए समस्त ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, इतिहास, मनोविज्ञान, मानव शास्त्र, धर्म, नीति शास्त्र के चिन्तन-मनन का केन्द्र-विन्दु मनुष्य ही रहा है।

आत्मज्ञान मे दीप्त जीवन ही चेतना का लक्षण है। यह जीवन चतना का प्रमाण और प्रतीक है तथा सत्य एव सौन्दर्य का स्वरूप है। मानवात्मा की अभिलाषा, प्रेम, इच्छा, आतुरता चि तन अन्वेषण और सृजन उसम सर्वोच्च ज्ञान की स्थिति के सूचक हैं। 'मनुष्य का कल्याण, श्रेष्ठ जीवन मे है। यदि वह मानवता और सभ्यता को चेतना के उच्चतम शिखर पर पहुँचाना चाहता है तो उसे चेतना के मूल्यो को जीवन के क्षितिज पर प्रस्फुटित करना होगा जिसके निर्माणकारी तत्त्व ससार म बिखरे पडे हैं और जिसकी नीव शाश्वत है।'[2]

इस ज्ञान को प्राप्त करने की शक्ति भी मानव मे ही प्राकृतिक रूप स निहित है। मानव की रचना दो पक्षो का लेकर हुई है। सभी चिन्तनधाराएँ इस सम्बन्ध मे एक मत है कि एक स्थूल शरीर है जो मानव के बाह्य-विधान का प्रतीक है, दूसरा प्राण-तत्त्व है जो उसकी चेतना का द्योतक है। इस चेतन तत्त्व के आधार पर ही मनुष्य को चेतना-प्रवाह की धारा माना गया है।[3] पाश्चात्य दार्शनिक सार्त्र के मत म भी मनुष्य आत्माभिव्यक्ति मे समर्थ एव स्वतन्त्र है, प्रत्येक स्थिति मे आत्मज्ञान और स्वचिन्तन के अतिरिक्त उसका और कोई लक्ष्य नही है।[4] 'मनुष्य की गरिमा क्या है जो उसे अन्य प्राणियो से अलग करती है?" वह यह है कि वह मुक्ति प्राप्ति की क्षमता रखता है। राल्फ बार्टन पेरी अपने इस कथन का स्पष्ट करत हुए कहते हैं कि मानव ज्ञान एव आत्म दर्शन द्वारा मुक्ति प्राप्त करन मे समर्थ है, यही उसकी तीव्र इच्छा है।[5] इस आत्मज्ञान एव मुक्ति की भावना द्वारा ही वह अपने जीवन के लक्ष्य को पूरा करता है तथा अपने गौरव की स्थापना करता है। वह आत्म-विश्लेषण एव जीवन के प्रति विवेचनात्मक व्यवहार द्वारा मानव-मूल्यो की खोज करता

1 Marcus Aurelius—To Himself, p 20

2. शान्ति जोशी—राधाकृष्णन् का विश्व-दर्शन, पृ० 63

3 C. Kunhan Raja—Some Fundamental Problems in Indian Philosophy, p 321

4 *Jean Paul Sartre—Existentialism, p 53*

5 " · what is in man that was considered admirable· ··· that man's peculiar dignity, which makes him worthy of such distinction, lies in his capacity for freedom·· ·· It is here defined as man's exercise enlightened choice"

—Ralph Barton Perry—Humanity of Man, p 6

हुग्रा जीवन मे उनकी स्थापना करता है।[1] यही मानव जीवन की लक्ष्य-सिद्धि है। जब वह जीवन के यथार्थ मूल्यों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है तथा जीवन के विभिन्न पक्षो के ग्रन्तरग मे प्रवेश कर जाता है तब ग्रात्मज्ञान के प्रकाश मे जीवन के रहस्यो से परिचित हो जाता है।

मानव ग्रपना ज्ञाता, व्याख्याता ग्रौर निर्णायक स्वय ही है। वही ग्रपने गुण, दोष सत ग्रसत् उचित ग्रनुचित का निर्णय करता है तथा ग्रपन ज्ञान का साधन भी स्वय ही है। इस सम्बन्ध मे प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक प्रोटोगोरस का यह कथन कितना सगत ग्रौर विचारणीय है कि 'मनुष्य समस्त वस्तुग्रो का मापदण्ड है।"[2] इस रहस्यमय विश्व की समस्त विभूतियो का मूल्याकन मानव को मापदण्ड मानकर किया जाता है। रहस्य ही रहस्य को सुलझाने मे सहायक ग्रौर समर्थ है। चीन के प्रसिद्ध चिन्तक कन्फ्यूशियस का मत भी इसी प्रकार का है। वे मानव का मापदण्ड मानव को ही बताते हैं।[3] इस बात से स्पष्ट है कि विश्व का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्राणी मनुष्य ही है ग्रौर सृष्टि का गौरव भी वही है।

यूनान के सोफिस्ट दार्शनिको ने मानव को सृष्टि का केन्द्र एव मापदण्ड मान कर मानव तथा प्रकृति के सम्बन्धो पर विचार किया। इनके विचार से मानव सृष्टि तथा उसके नियमो से बद्ध नही था। वह स्वय ग्रपने भाग्य का निर्माता था।[4] प्रसिद्ध यूनानी चिन्तक सुकरात ने मानव को सृष्टि का केन्द्र, ग्राधार ग्रौर चिन्तनीय प्राणी माना ग्रौर कहा कि मानव सत्य ही सब वस्तुग्रो का मापदण्ड है क्योकि उसम वे सार्वभौमिक सिद्धान्त, विचार, प्रत्यय ग्रौर धारणाएँ उपलब्ध होती हैं जो सत्य के निकट हैं ग्रौर वही इस सृष्टि के रहस्य को समझने मे समर्थ है।[5] सोफिस्ट दार्शनिको ने मानव को सामाजिक परिवेश मे ग्रधिक देखा, जबकि प्लेटो ग्रौर ग्ररस्तू ने इसके साथ ही सृष्टि मे व्यक्ति रूप मे भी उसका ग्रध्ययन किया।[6] इतना होने पर भी सुकरात की इस बात की उपेक्षा काई नही कर सका कि ग्रात्मज्ञान हीन मानव-जीवन व्यर्थ है,[7] उस जीवन का कोई लाभ नही, क्योकि वह जीवन मूल्यहीन है, सामर्थ्यहीन है।

मानव गौरव के वर्णन ग्रौर ग्रात्मज्ञान के सम्बन्ध मे, मध्ययुगीन प्रसिद्ध

1 Mercus Aurelius—To Himself, p 21
2 "Man is the measure of all things"—Corliss Lamout —Humanism As A Philosophy, p 41
3 'The measure of Man is Man" Lin Yu Tang—The Wisdom of Confucius, p 157
4 S E Frost—Ideas of the Great Philosophers, p 58
5 Ibid p 59
6 Ibid, p 60
7 Marcus Aurelius—To Himself, p 2

इतालवी कवि और विचारक पिको-देला-मिरादोला ने अपने ग्रन्थ 'मानव-गरिमा प्रवचन' मे अत्यन्त भव्य शब्दो मे अपना यह मतव्य प्रस्तुत किया है,[1] "सृष्टि के अन्त मे ईश्वर ने ससार का ज्ञान प्राप्त करने के लिए, उसके (ससार) सौंदर्य से प्रेम करने के लिए और प्रशसा के निमित्त मानव की रचना की। उसने इस प्राणी (मानव) को सब प्रकार की स्वतन्त्रता प्रदान की जिससे वह सृष्टि का आनन्द भोग सके। ईश्वर ने आदम से कहा कि मैंने तुम्हे न तो स्वर्ग और न मृत्युलोक का प्राणी बनाया है और न नश्वर अथवा अमर बनाया है। तुम केवल इसलिये स्वतन्त्र हो कि आचार-विचार से सयमित होकर आत्म-ज्ञान द्वारा अपना उत्तरदायित्व वहन करो। इस प्रकार अपने कर्मों द्वारा तुम चाहो तो पशु और चाहो तो देवता बन सकते हो। तुम अपनी इच्छानुसार अपना निर्माण तथा विकास करो, तुम सृष्टि-सृजन-गुण से युक्त हो।"

मानव प्रकृत्या जिज्ञासु है। उसकी इच्छा, क्रिया और अनुभूति उसकी ज्ञान राशि मे निरन्तर वृद्धि करती रही है। उसमे अपनी शक्तियो की अनुभूति एव उनके ज्ञान के लिए अपरिमित सामर्थ्य होती है।[2] वास्तव मे इस ससार का क्षेत्र इतना ही है, जितना मानव-ज्ञान है। मानव-ज्ञान से बाहर कुछ नही है। इसमे सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यही है कि ससार का ज्ञान मानव के सम्बन्ध मे जाने बिना व्यर्थ है, इसलिये मानव का स्वय को जानना अत्यावश्यक है।[3] मानव आत्म-ज्ञान की उपलब्धि होने पर ही ससार के विभिन्न पक्षो के सम्बन्ध मे जान सकता है और क्योकि इससे श्रेष्ठ प्राणी और कोई नही है, इसलिए अपने गुण, दोष, प्रतिभा, शक्ति आदि को जानना उसका ही उत्तरदायित्व है। पाश्चात्य अग्रेज कवि पोप ने मानव की व्याख्या तथा उसके गुणो का वर्णन करते हुए कहा है कि मनुष्य ही मनुष्य का ज्ञाता और व्याख्याता है।[4] फ्रांसीसी दार्शनिक ज्या पाल सार्त्र का मत भी यही है[5] कि मानव का अस्तित्व अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, उससे पूर्व और पश्चात् अन्य कुछ नही है, इसलिए वह स्वय ही अपना व्याख्याता और विवेचक है तथा वही अपने आदर्श व स्वरूप का निर्धारण करता है।

1. M N Roy—Reason, Romanticism and Revolution, Vol-1, p 64-65
2 S Radhakrishnan & P T. Raju—(Eds.)—The Concept of Man, p 92
3 C. Kunhan Raja—Some Fundamental Problems in Indian Philosophy, p 279
4 "Know then thyself, presume not God to scan;
The proper study of mankind is man"
—A Pope—An essay on man, Epistle II-p 53
5. Jean Paul Sartre—Existentialism, p 18

मानव व्यक्तित्व के विकास के दो पक्ष होते हैं, मात्रा-मूलक और गुण मूलक।[1] प्रथमतः उस विकास का अर्थ है व्यक्ति की चेतना का उन असख्य सवेदनाओ तथा बोध-दिशाओ मे प्रसरित होना जिन्हे मानव चेतना ने संचित कर रखा है। दूसरे वह प्रगति अपने को, उस बढ़ते हुए विवेक मे प्रकट करती है जिसके द्वारा हम सास्कृतिक अनुभव के उच्चतर तथा निम्नतर रूपो मे भेद करना सीखते हैं और क्रमश निम्नतर रूपो से विरत होकर उच्चतर रूपो की ओर अग्रसर होते हैं।[2] इस तथ्य का उल्लेख हम पहले कर आए हैं कि मानव के आत्मोन्नयन का एकमात्र लक्ष्य यही है कि वह वह निम्नतर से उच्चतर की ओर बढ़ता जाए। इस साधना द्वारा वह अपने व्यक्तित्व मे गुण-सवर्द्धन कर लेता है और मानव-जीवन के शाश्वत मूल्यो का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। यही वह सत्य है जिसकी सिद्धि मानव का श्रेष्ठतम लक्ष्य है। इस ससार मे मानव की प्रवृत्ति बहिर्मुखी होती है, सासारिक सुख दु ख के भोग के लिए इस प्रवृत्ति की आवश्यकता भी है। किंतु सब भोगो का अनुभव करता हुआ भी वह जीवन के चरम लक्ष्य की खोज म व्यग्र रहता है।[3] मानव का प्रारम्भ से एकमात्र लक्ष्य रहता है सुख-प्राप्ति और दु ख-निवृत्ति।

दु ख से मुक्ति प्राप्त करने का साधन क्या है ? ऋषियो का कथन है कि वह आत्म ज्ञान है। ज्ञानी लोग कहते हैं—'आत्मा को देखो।' आत्मा को देखने के उपाय है 'श्रवण', 'मनन' तथा 'निदिध्यासन'। वास्तव मे आत्मा ही देखने का विषय है।[4] यही परमानन्द का साधन है। आत्म-ज्ञान के लिये मानव को तत्व-ज्ञानियो तथा श्रुतियो से सभी बातें जाननी चाहिएँ। इस ज्ञान-प्राप्ति के के लिये मनुष्य मे श्रद्धा और अभय-ज्योति होनी चाहिये।[5] उस अभय ज्योति को परमात्मा अथवा पुरुष की सज्ञा प्रदान की गयी है। अभय-ज्योति और आत्म-ज्ञान के लिये अभेद-बुद्धि आवश्यक है।[6] मानव मे यही अश (आत्मा) सर्वश्रेष्ठ है, अत ऋग्वेद मे उसे तेजस्वी करने की प्रार्थना की गई है;[7] क्योकि आत्म ज्ञानी पुरुष भय से मुक्त हो जाता है।[8]

1 डा० देवराज—'सस्कृति का दार्शनिक विवेचन', पृ० 34
2. R N Tagore—Sadhana p 33-34.
3 भारतीय दर्शन—उमेश मिश्र, पृ० 4
4 'आत्मा वा अरे दृष्टव्य , श्रोतव्यो, मन्तव्यो, निदिध्यासितव्य ॥
आत्मनो वा अरे दर्शनेन, श्रवणेन, मत्या,
विज्ञानेनेद सर्वं ज्ञातम् भवति ॥' —बृहदा० उ०, 4-5
5. ऋग्वेद 2, 27, 11, 14
6 वही 1, 7
7 अजो भागस्तपसा त तपस्व। —ऋग्वेद, 10, 16, 4
8 तमेव विद्वान्न बिभाय मृत्योरात्मान धीरमजर युवानम् ॥ —अथर्व वेद 10, 8, 44

ज्ञानोपलब्धि का फल आत्म सुख है। इसलिये आत्मा का ज्ञान कराना, चाहे वह ब्रह्म से भिन्न हो या अभिन्न, प्रत्येक दर्शन का लक्ष्य है। मानव-जीवन का चरम लक्ष्य आत्मा का साक्षात्कार, आत्मा का साक्षात् अनुभव है। वेद और उपनिषदों म आत्मा और उसके ज्ञान का विशद विवेचन मिलता है। यमराज के पास जाकर नचिकेता ने आत्म ज्ञान ही माँगा था, क्योकि वही माँगने योग्य है।[1] कठोपनिषद म इसीलिए कहा गया है कि हे मनुष्यो, उठो, जागो सावधान हो जाओ और श्रेष्ठ महापुरुषो के पास जाकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त करो।[2] सभी ऋषियो महात्माओ, म तो भक्तो और लोक कल्याण का काय करने वाले पुरुषो ने इस आत्मज्ञान ब्रह्मज्ञान को श्रेष्ठ माना है। इसका कारण यह है कि ज्ञानी पुरुष अपने अन्दर रहने वाले परमात्मा को देखकर परम-सुख की प्राप्ति करत है।[3] यम न आत्मा को रथी बताकर उसकी सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित की है।[4] बाह्य-विषयो स आरम्भ कर श्रेष्ठतानम से विचार करने पर आत्मा सबसे श्रेष्ठ ठहरती है। आत्मा का रूप व्यापक है। वह जगत् के समस्त पदार्थों म व्याप्त रहता है, समस्त वस्तुओ को अपन स्वरूप मे ग्रहण कर लेता है। स्थितिकाल मे वह विषयो को अनुभव करता है तथा उसकी सत्ता निरन्तर रहती है। इन्ही कारणो से आत्मा का आत्मत्व है।[5] जिसमे प्राण तथा अपान दोनो तत्व रहते हैं वह आत्मा है। आत्मा की सत्ता के कारण प्राणीमात्र जीवन धारण करता है।[6] आत्मा स्वचैतन्य तथा शुद्ध चैतन्यरूप है।[4] अत मनुष्य ही स्वय इसका ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

ज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति सदाचारनिष्ठ और शुद्ध अन्त करण वाला होता है। वेदो मे उल्लिखित तपस्या तथा स्तुतिया पवित्र कम तथा शुद्ध आचार स सम्बन्धित है। वैदिक ऋषि तथा साधारण जन असत्य बोलन वालो तथा मनुष्य की हत्या करने वालो म घृणा करत थ। इसीलिए कहा गया है कि दुष्कर्मी मनुष्य सत्य के मार्ग को पार नही कर सकते।[7] उपनिषद् म स्पष्ट

1 यस्मिन्निदं विचिकित्सन्तिमृत्यो यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत्।
योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो नान्य तस्मा नचिकेता वृणीते।—कठो० उप० 1/1/29

2 उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्नि बोधत। कठ० उप० 1, 3 14

3 नित्योऽनित्याना चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषा शान्ति शाश्वती नेतरेषाम॥ कठ० उप० 2/2/13

4 आत्मान् रथिन विद्धि शरीर रथमेव तु। बुद्धि तु सारथि विद्धि मन प्रग्रहमेव च।
—कठ० उप० 1/3/3

5 भारतीय-दशन—बलदेव उपाध्याय पृ० 72

6 न प्राणन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ॥ —कठ० उप० 2/2/5

7 ऋतस्य पन्था न तरन्ति दुष्कृत। ऋग्वेद 9, 73, 6

कहा गया है कि जो अकाम, निष्काम, आप्तकाम और आत्मकाम होता है, उसके प्राणों का उत्क्रमण नहीं होता, वह ब्रह्म रहकर ही ब्रह्म हो जाता है।[2] इस प्रकार मनुष्य को विशुद्ध अन्त करण से आत्म-ज्ञान की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए।

मानव और मोक्ष

मानव-जीवन के मूल्यों की गुणात्मक चेतना का सर्वोच्च रूप मोक्ष है। इसे जीवन के चार पुरुषार्थों मे अन्तिम एव सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है।[1] मानव के आत्म-ज्ञान प्राप्त करने का लक्ष्य भी यही है। यह मनोवृत्ति प्रमुख रूप से दो रूपों म अभिव्यक्त होती है साधारण लोग जिन छोटी-छोटी वस्तुओं की विशेष कामना करते है, उनके प्रति वैराग्य भाव मे और उदारता तथा त्याग की असाधारण क्रियाओं म,[3] जो सत-प्रकृति की अपनी विशेषता है। वस्तुत एक व्यक्ति आत्मज्ञान की प्राप्ति और उसका विकास उसी सीमा तक कर सकता है अथवा उतना ही उदार तथा पर-हिताकांक्षी हो सकता है जहां तक उसने श्रेष्ठ पुरुष (ज्ञानी पुरुष) के अथवा सतो के विशिष्ट गुण आचरण, अपरिग्रह-मूलक उदासीनता का आकलन किया है।

किसी भी आध्यात्मिक व्यापार मे लीन होने के लिए न्यूनाधिक रूप मे उदासीन, निष्काम एव अपरिग्रही होना आवश्यक है। मानव-जन्म इस दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसको पाकर भी मानव यदि साधारण लिप्साओं मे ही रत रहता है तो वह कुबुद्धी ही है।[4] इस अवसर का सयम द्वारा पूर्ण लाभ उठाना चाहिए। यह मानव शरीर मोक्ष मे सहायक सिद्ध होता है। शारीरिक सयम मानव-व्रत है और मन द्वारा शुद्ध की हुई बुद्धि देवव्रत है।[5] अतः हमे सत्य एव ज्ञान की उपलब्धि करनी चाहिए क्योंकि ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं होता। हमे अपनी वृत्तियो और सस्कारो का परिष्कार तथा उनका सयम करना चाहिए।

अब हम मोक्ष के सम्बन्ध मे विचार करेंगे। साधारण अर्थ मे यह जीवन के दु खो मे मुक्ति पाना है। विभिन्न धर्म-शास्त्रों मे मोक्ष को अज्ञान, दुष्कर्म और दु ख से मुक्ति दिलाकर आनन्द, सत्कर्म और ज्ञान प्रदान करने वाला बताया गया है।[6] भौतिक साधन इस साधना मार्ग मे सहायक होते हैं जिसमे सद्ग्राह्यता, श्रद्धा, आस्था के उन्नयन द्वारा मानव-व्यक्तित्व उदात्त बनता है

1 बृहदा० उ०, अ० 4, ब्रा० 4, 6
2 उमेश मिश्र—भारतीय दर्शन, पृ० 317
3 डा० देवराज, सस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० 34
4 श्रीमद् भा० 11/23/23
5 महा० वन पर्व० 93/21
6 Aldous Huxley—The Perrenial Philosophy, p. 209.

और परम सनातन सत्ता मे विश्वास उत्पन्न करने के पश्चात् मानव परलोक-सुख की आकांक्षा करता है। महात्मा बुद्ध ने भी अपने अष्टांगिक मार्ग मे नैतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक गुणो के विकास से मोक्ष का प्रतिपादन किया है।[1] वेद और उपनिषद का ज्ञान परम तत्त्व की प्राप्ति द्वारा, शारीरिक और मानसिक सयम स मानव को मोक्ष का सद्मार्ग बताता है। कतिपय व्यक्ति मोक्ष को मानव की सहज प्रकृति से बाहर की वस्तु मानते हैं जिनम प्रमुख हैं तर्कमूलक भाववादी। किन्तु यह मत कुछ उचित और ग्राह्य प्रतीत नही होता, क्योकि जिस प्रकार दार्शनिक कोटि के चिन्तन का लोप सम्भव नही है उसी प्रकार मोक्ष, धर्म और आध्यात्मिक मनोवृत्ति का लोप भी सम्भव नही है।[2] मोक्ष भी मानव का ही प्राप्य धर्म है, उसी की साधना का फल है।

मोक्ष के सम्बन्ध मे विभिन्न साम्प्रदायिक मान्यताएँ हैं जो परलोक आदि के सुख का प्रलोभन देती है। जो व्यक्ति इस जीवन म सुखी है वह स्वर्ग की आकांक्षा नही करता। स्वर्गलोक एक ऐसा आश्वासन है जो इहलोक मे असफल और निराश व्यक्तियो को अग्रिम जीवन मे समस्त कामनाओ की पूर्ति के रूप मे दिया जाता है। वैदिक संस्कृति म जीवन के सभी क्षेत्रो मे कर्त्तव्य पालन को धर्म बताया गया है, वही मोक्ष का मार्ग कहा गया है। उपनिषदो म भी ब्रह्मज्ञान पर बल दिया गया है और यज्ञादि की स्वर्ग अथवा मोक्ष प्राप्ति के लिए उपेक्षा की गई है। अज्ञान अन्याय तथा अभाव से मुक्ति का नाम ही आत्म विकास है। अनन्त ज्ञान का विकास अज्ञान दूर होन पर ही होता है। आत्मा के ज्ञान प्रकाश से समुज्ज्वल होने पर ही अज्ञान का अन्धकार दूर हो सकता है। स्वाभाविक सुख की उपासना का अर्थ है अभाव को दूर करना। मोक्ष को अथवा इस आत्मतत्व को लोकोत्तर, अनिर्वचनीय, जीवन से परे की वस्तु समझ कर सीमित कर दिया गया है इसलिए उसका नित्यप्रति के जीवन स सम्बन्ध टूट गया। यह मानव के आत्मिक और भौतिक विकास म बाधक सिद्ध हुआ तथा मनुष्य ज्ञान की अपेक्षा अज्ञान में ही निमग्न रह गया। वास्तव मे आत्म-तत्त्व की आवश्यकता और प्रेरणा केवल परलोक के लिए ही नही इस लोक के लिए भी है। अपने प्रत्येक व्यवहार म आत्मतत्त्व को जाग्रत करने की आवश्यकता है। मोक्ष की प्रेरणा स उद्भूत भावना मानव म श्रेष्ठता का उन्नयन करती है। इस ज्ञान की प्राप्ति और आत्म-तत्त्व का विकास मनुष्य के प्रमाद रहित होने पर ही होता है।[3] उपनिषदो म बताया गया है कि ब्रह्मज्ञान कोई भी साधक, अधिकारी बनकर प्राप्त कर सकता है। मोक्ष आत्मा के स्वरूप की

1 उमेश मिश्र—भारतीय दर्शन, पृ० 139
2 डा० देवराज—संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० 33
3 मुण्डको० 2/2/4

अभिव्यक्ति ही है। यह आत्म-साक्षात्कार अथवा आत्मा का ज्ञान अन्तःकरण की परिशुद्धि द्वारा ही प्राप्त होता है।[1]

मोक्ष, मुक्ति अथवा आनन्द की प्राप्ति के लिए मनुष्य को जीवित अवस्था मे शुभ कर्म करने चाहिएँ। यह जीवन की ज्ञान प्राप्ति कर 'जीव मुक्ति' का साधन है।[2] गीता मे भगवान कृष्ण ने उपनिषदो की भाँति ही ज्ञान, कर्म और मोक्ष सम्बन्धी उपदेश दिए हैं। गीता में निष्काम कर्म को ही महत्त्व दिया गया है।[3] इसी से परमानन्द की प्राप्ति होती है[4] और अन्तकरण की शुद्धि होती है।[5] इस भावना से अपना और दूसरो का कल्याण होना है, पारलौकिक आनद की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार आत्मज्ञान, आत्मा का साक्षात्कार, परमानन्द की प्राप्ति मानव जीवन से सम्बन्धित ही नही, उसके जीवन का चरम लक्ष्य भी है। मनुष्य लौकिक अथवा अलौकिक कार्यों द्वारा अपने लक्ष्य की प्राप्ति करते है। वास्तव मे मोक्ष अथवा ससार मुक्ति वह स्थिति है जब व्यक्ति सब बन्धनो से मुक्त हो जाता है, वह स्वय को स्वाधीन अनुभव करता है तथा उसका अस्तित्व, सुख, ज्ञान, शक्ति यहाँ तक कि उसकी कोई भी वस्तु बाह्य-तत्त्व पर निर्भर नही रहती। वास्तविक स्वाधीनता अथवा मुक्ति वह है जिसके लिए हमे पराधीन नही होना पडता, 'स्व' की कोटि छोडकर 'पर' की आवश्यकता नही पडती। ज्ञान, मुक्ति अथवा पूर्ण सुख के लिए परनिरपेक्षता की अवस्था को ही आत्म-रमण या आध्यात्मिक मुक्ति कहा जाता है।

ज्ञान मोक्ष का साधन है, स्व कल्याण तथा लोक-कल्याण की प्रेरणा देने वाला है तथा मानव महत्त्व की सृष्टि मे स्थापना करने वाला और जीवन के सर्वोच्च आदर्श की सिद्धि मे सहायक रूप है। जीवन एक यात्रा है। उसको शुभ एव मगलमय बनाने के लिए लक्ष्य परम-मगल होना चाहिए। हमे यह दुर्लभ मानव शरीर प्राप्त करके इसका सदुपयोग करना चाहिए तथा तत्परायण होकर आत्म धर्म की अवहेलना नहीं करनी चाहिए क्योंकि ऐसा करने से मनुष्य महान लाभ और कल्याण से वचित रह जाता है।[6] यह भावना आत्म ज्ञान या सत्य की प्राप्ति से ही आती है। यही मुक्ति अथवा दुःखो से परित्राण का स्वरूप है जिसके लिए मानव कल्याण की भावना से प्रेरित होकर सदैव प्रयत्नशील

2 बृहदारण्यक, 4/5/19
3 उमेश मिश्र—भारतीय-दर्शन, पृ० 60
4 गीता—2 71
5 गीता—2 72
6 गीता—5-11
1 यो दुर्लभतर प्राप्त मानुष्य द्विपतेनर ।
धर्मावमन्ता कामात्मा भवेत् स खलुवंच्यन ॥ —महा० शा० प० 297/34

रहता है। आत्म ज्ञान सर्वोच्च ज्ञान और सत्य ही सबसे बड़ा हित का साधन है।[1] मानव को ज्ञान द्वारा मोक्ष-प्राप्ति हेतु सदैव ही साधना में निरत रहना चाहिए।

मानव का आध्यात्मिक विकास

मानव और आत्मा—ये दो प्रमुख तत्त्व परस्पर प्रगाढ़ता से सम्बद्ध हैं और मानव का कल्याण ही इनका चरम लक्ष्य है। यह इस संसार का जीवन-दर्शन है जिसका केन्द्र बिन्दु मानव है।[2] यही जीवन के सत्य की कसौटी और साधना का लक्ष्य है। *मानव सृष्टि के आदि से ही अपने लिए एक पहेली बना हुआ है।* शरीर-विज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शन शास्त्र, धर्म-शास्त्र, इतिहास, समाज-शास्त्र, राजनीति आदि सभी मानवीय एवं सामाजिक विद्याएँ मानव के विभिन्न पक्षों का गूढ़ गहन एवं गम्भीर अध्ययन कर रही हैं[3] किन्तु समाधान की अपेक्षा यह समस्या गहन ही होती जा रही है। समाज-शास्त्र के अनुसार मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।[4] उसे समाज के लिए जीना और उसी के लिए मरना है अतः स्वतन्त्र व्यक्तित्व नाम की कोई वस्तु नहीं है। इसके विपरीत आध्यात्मिक परम्पराएँ इस बात पर बल देती हैं कि समाज एक बन्धन है उसे तोड़ देने पर ही मानव के व्यक्तित्व का विकास सम्भव है।[5]

केवल शरीर-रचना अथवा मानसिक क्रियाओं के अध्ययन से मानव का अध्ययन पूरा नहीं होता, न ही मानव को एक यन्त्र मानने से काम चलता है क्योंकि यन्त्र का सञ्चालन, निर्माण एवं इस पर नियन्त्रण कौन करता है यह एक रहस्य है। कठोपनिषद में उल्लेख है कि विधाता ने इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाया है, अन्तर्मुखी नहीं।[6] इसलिए बाह्य वृत्तियों का निरोध करने पर ही अन्तरात्मा के दर्शन हो सकते हैं—आध्यात्मिक ज्ञान हो सकता है।

मनुष्य अपनी सृजनशील प्रवृत्ति की प्रेरणा से निरन्तर उच्चतम मूल्यों के लाभ की सम्भावनाओं का अन्वेषण करता रहता है। इस ब्रह्माण्ड में मनुष्य का जीवन दो विरोधी मार्गों का संघर्ष-केन्द्र बना रहता है।[7] एक ओर उसकी कल्पना शक्ति द्वारा उत्पन्न उदात्त कामनाएँ और दूसरी ओर उसके चतुर्दिक व्याप्त व्यावहारिक जीवन की नीरस इच्छाएँ हैं। वह एक पूर्ण जीवन की कल्पना करता है और उसे यथार्थ में परिवर्तित करने के लिए अनेक प्रयत्न

1 आत्मज्ञानं परं ज्ञानं सत्यं हि परमं हितम्।—ना० पूर्व० 60/49
2 S Radhakrishnan & P T Raju (Eds) —The Concept of Man p 307
3 वही, पृ० 28।
4 वही पृष्ठ 81
5 इन्द्रचन्द्र शास्त्री—मानव और धर्म, पृ० 51
6 पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयम्भूस्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्। क० उ० 2-1-1
7 डा० देवराज—संस्कृति का दार्शनिक विवेचन', पृ० 278-79

करता है। वेदान्त म यह पूर्ण जीवन, परम श्रेय अथवा माक्ष ही है और उसकी प्राप्ति ही मानव जीवन का परम ध्यय है। पूर्णता म ही मानव का आनन्द निहित है, इसलिए कल्याण भी आनन्द रूप हाने स मानव जीवन का लक्ष्य है। इस आनन्द की प्राप्ति का उपनिषदो म विस्तृत वणन है। व्यक्तित्व के विकास या इस लक्ष्य की प्राप्ति के पाँच सापान—पचकोश के नाम स वर्णित किए गए हैं[1] —1 अन्नमय कोष—स्थूल शरीर, 2 प्राणमय-काष—ज्ञानेंद्रिया, कर्मेन्द्रियाँ और प्राणवायु, 3 मनोमय काष—सकल्प, विकल्प तथा इच्छाओ का पुंज मन, 4 विज्ञानमय कोष—सत्यासत्य तथा हिताहित का निर्णय करनेवाली बुद्धि 5 आनन्दमय कोष—सुखानुभूति। इस अन्तिम अनुभूति क स्थायी हान पर ही साक्षात्कार, कैवल्य या माक्ष की स्थिति बताइ जाती है। उपनिषदा म वर्णित इन अवस्थाओ म उत्तरात्तर बन्धन तथा पराधीनता की मात्रा घटती जाती है।

साख्य दर्शन म हमारे व्यक्तित्व का आधार चतना और तीन गुणा का परस्पर सम्बन्ध माना गया है। वे तीन गुण हैं—सत्व, रजस् और तमस्।[2] इसम पुरुष[3] नामक नित्य पदाथ का चतना माना गया है। वह कुछ नही करता कित प्रकृति (जगत जड पदाथ) स उसका सम्बन्ध रहता है। सत्वगुण का काय है ज्ञान एव बुद्धि की निमलता। रजागुण का काय है क्रियाशीलता तथा राग द्वेष। तमो गुण का कार्य है अज्ञान एव जडता।[4] इनम सत्व गुण का ही महत्त्व है। वही शुद्ध विकास की अवस्था है। इसम शान्ति, सुख और ज्ञान की ओर वृत्ति रहती है। शुद्ध विकास का अथ है तमागुण तथा रजागुण क प्रभाव का घटाते हुए सत्व गुण का विकास करना। साख्य क अनुसार तीना गुण परस्पर मिलकर काय करत हैं इसलिए मोक्ष दशा म रजस् और तमस् का कुछ न कुछ अश रहता है।[5] कितु ज्ञान और निरपेक्षता का यह भी स्वीकार करता है।

बौद्ध धम के अनुसार मानव-व्यक्तित्व एक प्रवाह है, जिसम सुख-दुख, हर्ष-विषाद की अनुभूतिया तथा घट ज्ञान, पट ज्ञान आदि प्रतीतिया की धारा निरतर प्रवाहित होती रहती है। इनक मूल म कोई शाश्वत तत्व नही होता वरन् इन धाराओ का कारण पुरातन सस्कार हैं जो मानव अस्तित्व का कारण होते हैं। यह अस्तित्व ही बन्धन है।[6] इस प्रवाह की समाप्ति के लिए किया जाने वाला प्रयत्न साधना है और अस्तित्व का उत्तरोत्तर क्षीण होना आत्मा का विकास

1 बलदेव उपाध्याय—भारतीय दशन पृ० 430
2 उमेश मिश्र—भारतीय दशन पृ० 268, 281
3 वही, पृ० 281, 312
4 इन्द्रचन्द्र शास्त्री—मानव और धम पृ० 55
5 उमेश मिश्र—भारतीय-दशन, पृ० 288 313
6 वही पृ० 135 137

है वही निर्वाण है मुक्ति है।[1] जैन ऱ्शन मे भी मानव व्यक्तित्व पर सस्कारो का प्रभाव माना जाता है। ज्या ज्या इन सस्कारो का प्रभाव घटता जाता है आ्मा मे ज्ञान सुख एव शक्ति की वृद्धि होती है।[2] दोनो ही दशनो ने ग्रा ग ज्ञान पर बल दिया है और नतिकता एव सदाचार को इसका मुरय सा।न ब।।या है।[3] इ्होने मानव महत्ता का प्रतिपादित करत हुए आध्यात्मिक अनु शासन की अनिवायता मानव क याण[4] के लिए स्वीकार की है। इस प्रकार सभी द्शन मानव कल्याण के निमित्त ज्ञान और आध्यात्मिक व्यापार का आवश्यक गमझते हैं।

भारतीय दशन की परम्परा म मानव के विकास का वास्तविक रूप अन त नान अन त सुख तथा अन त शक्ति है। मानव विकास का अथ है उसकी *आत्मा को सबल बनाना अर्थात काय बद्ध आत्मा को कर्मों के प्रभाव स मुक्त* कर स्वाभाविक शक्तियो को जागत करना। मानव म जब तक असल रहता है तब तक वह अभावग्रस्त और निबल रहता है। आत्मज्ञान प्राप्ति का आकाक्षी साधक निबलता अज्ञान तथा दु ख को छोडकर सशक्तता प्रकाश अमृतत्व अथवा शाश्वत सुख की ओर जाना चाहता है। इसी आत्म ज्ञानमयी अवस्था का नाम मानव की परम स्थिति है इसे ही सच्चिदान द आदि अनेक नामो स कहा जाता है। उपनिषदो मे इस आत्म ज्ञान के लिए प्राथना है हे परमेश्वर मुझ असत स सत की ओर अ धकार से प्रकाश की ओर तथा मत्यु से अमरत्व की ओर ले चल।[5]

विश्व के प्राय समस्त दशनो मे मानव जीवन क अ त बाह्य पक्षो पर विचार किया गया है। इस सम्ब ध मे डा० राधाकृष्णन का विचार है प्राचीन काल से ही भारतवष म सब धर्मों का परस्पर सौहाद रहा है। उनके गुरु और शिष्य परस्पर विचार विनिमय करते रहे गोष्ठियो मे सम्मिलित होते रहे और मनुष्य जाति के एक उच्चतर जीवन के उत्तरोत्तर उत्थान म योगदान करते रहे। भारत का जो तथाकथित निरपेक्षतावाद है वह इस सत्य को स्वीकार करता है कि आ यात्मिक जीवन ज्ञान या बोधि धर्मो के पारस्प रिक झगड से ऊपर की वस्तु है।[6] उनकी दष्टि से मानव का भौतिक कल्याण भी आध्यात्मिक कल्याण मे ही केद्रित है।

1 Aldous Huxley—The Perennial Philosophy p 214
2 बलदेव उपाध्याय—भारतीय-दशन प० 150
3 S Radhakrishnan & P T Raju (Eds) The Concept of Man p 252
4 Ibid p 272
5 बह० उ० 1/3/28
6 डा० सवपल्ली राधाकृष्णन—भारत और विश्व प० 28

मनुष्य में इतनी सामर्थ्य और प्रतिभा है कि विश्व के गुह्य-तत्वों, जीवन के रहस्यमय पक्षों को भली-भाँति समझ सकता है । इसमें कोई बाह्य शक्ति उसकी सहायक नहीं होती और यह मनुष्य के आन्तरिक विकास द्वारा ही प्राप्त होती है। मनुष्य की अन्तरात्मा प्रबल हो जाती है और वही संसार का ज्ञान प्राप्त कराने में मनुष्य का पथ-प्रदर्शन करती है। वास्तव में यह ज्ञान उसे दूसरे व्यक्ति से प्राप्त न होकर अन्त.प्रकाश द्वारा ही उपलब्ध होता है।[1] यही ज्ञान वह स्रोत है जिससे मानव-मन का अन्धकार दूर होता है तथा वह आत्मस्फीति को अनुभव करता है क्योंकि इस ज्ञान में संशय दूर होकर आत्म-परिष्कार होता है।[2] इस आत्म-परिष्कार और ज्ञान के लिए मानव-हृदय में भेद और संशय नहीं होना चाहिये।[3] इनके रहने से चित्त-विशुद्धि नहीं होती।

आध्यात्मिकता और मानव-कल्याण

उपर्युक्त विवेचन से यह बात पर्याप्त रूप से स्पष्ट हो चुकी है कि व्यक्ति के सुख-दुःख के कारण स्वयं उसमें, उसके व्यक्तित्व में ही, वर्तमान होते हैं। इसलिए भारतीय साधकों, ऋषियों, दार्शनिकों, योगियों और सन्तों ने अपनी सम्पूर्ण जीवन-शक्ति उन तत्वों के विश्लेषण में लगा दी जो वैयक्तिक चेतना के के स्वास्थ्य एवं सुख से सम्बन्धित है क्योंकि उन तत्वों को अन्तर्दृष्टि द्वारा ही गोचरीभूत किया जा सकता है। भारतीय चिन्तकों ने साक्षात्कार अथवा आत्मानुभूति पर ही बल दिया है।[4]

वेदों में इस तथ्य को प्रमुख माना गया और आध्यात्मिक ज्ञान को ही मानव कल्याण का मार्ग बताया। अथर्ववेद में मन्तव्य को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—'ज्ञान और प्रकाश को प्राप्त करनेवाले मन्त्र-द्रष्टा पुरुष, संसार का कल्याण और सुख चाहते हुए, सर्वप्रथम स्वयं तपस्या और व्रत पालन की दीक्षा लेकर परमेश्वर की उपासना करते हैं, उस तप और दीक्षा से राष्ट्रबल और ओज उत्पन्न होता है; इसलिए विद्वान पुरुषों को भी उनका आदर करना चाहिए।'[5]

वेदों में मानव-जाति की उन्नति के लिए आधिभौतिक और आधिदैविक अभ्युदय का समन्वय प्रतिपादित किया गया है। दिव्य-गुण, दिव्य-शक्ति, दिव्य-

1. G Xunjan Raja "Some Fundamental Prolbems in Indian Philosopy p. 8,
2. भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
   क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ मुण्डक० उ० 2/2/8
3. मुण्डक० उ० 3/1/5
4. बलदेव उपाध्याय—'भारतीय दर्शन', पृ० 18
5. अथ० वेद, एकोनविंश काण्डम् 41-1

चरित्र की प्राप्ति के लिए वेदों में सत्य,[1] सदाचार,[2] और नीति[3] के उपदेश हैं। वेदों में स्वयं से ऊपर उठकर तथा स्वार्थ-हानि करके भी सत्य-भाषण, सत्य-संकल्प तथा सत्य कर्म के आदेश बार-बार दिए गए हैं। उनमें असत्य-भाषण, मांस-भक्षण[4], द्वेष आदि का निषेध मिलता है और कहा गया है कि अहंकार मानव के अध पतन का कारण है[5] तथा जो सद्गुणों से शून्य है वे न तो ब्रह्म-लोक जा सकेंगे और न ही ब्रह्म को पा सकेंगे।[6] इसलिए वेदों में मानव के कल्याणकारी पथ के पथिक[7] होने की कामना की गई है। इसके लिए ऋत् के पथ पर[8] चलना आवश्यक बताया गया है। नैतिकता और आचार श्रेष्ठता ही मानव-जीवन की आध्यात्मिक उन्नति कर सकते हैं। इसलिए उसे 'ज्योतिष-पति'[9] कहकर बहुत ऊँचा स्थान प्रदान किया गया है।

वेदों में मानव के आध्यात्मिक तथा भौतिक कल्याण के लिए ही ऋत् का विवेचन किया गया है। इस जगत् में ऋत् के कारण ही सृष्टि की उत्पत्ति होती है। सृष्टि के आदि में 'ऋत्' सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ।[10] विश्व में सुव्यवस्था, प्रतिष्ठा, नियमन का कारणभूत तत्व यही ऋत् है। वास्तव में 'ऋत्' सत्यभूत ब्रह्म ही है।[11] ऐतरेय ब्राह्मण[12] तथा शतपथ ब्राह्मण[13] में भी आचार-पालन पर बल दिया गया है। ज्ञान-प्राप्ति के लिए सत्कर्म अनिवार्य है। इसके बिना अन्त करण पवित्र नहीं होगा, अहंकार बना रहेगा और ज्ञान प्राप्ति नहीं होगी। वेदों में ऋषियों की तपस्या ज्ञान-प्राप्ति के लिए साधना, पवित्र कर्म और शुद्ध आचार ही है।[14] यही मानव के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

वेदों की भाँति उपनिषदों में भी दार्शनिक तत्वों को व्यवहार में लाकर मानव-जीवन के नित्य-प्रति के कार्यों में प्रदर्शित किया गया है। उपनिषदों में

1 ऋग्वेद, 10, 190, 1, शतपथ 3, 4, 2, 8
2 ऋग्वेद, 1, 11, 5, 1, 5, 10
3 ऋग्वेद, 1, 22, 5, 4, 5, 5
4 तैत्तरीय संहिता 2, 5, 5, 32
5 शतपथ, 5, 1, 1, 1
6 गौतम धर्म सूत्र, 8, 20, 25
7 ऋग्वेद 5-51-15
8 यजुर्वेद 7-45
9 ऋग्वेद 1-23, 5
10 ऋग्वेद 10-190-1
11 बलदेव उपाध्याय—'भारतीय दर्शन', पृ० 58
12 ऐतरेय ब्राह्मण 1-1-6
13 शतपथ ब्राह्मण, 2-5 2-20
14 उमेश मिश्र—'भारतीय-दर्शन', पृ० 37

आचार-मीमासा का विस्तृत विवेचन मिलता है। आध्यात्मिक पथ पर आरूढ होने के लिए सद्गुणो का सद्भाव आवश्यक बताया गया है। तपस्या, दान, आर्जव, अहिंसा, सत्यवचन[1] जैसे सद्भाव मानव-कल्याण के सोपान हैं। *'सत्यंवद' का प्रतिपादन[2] और अनृतभाषण'[3] की निन्दा की गई है। जीव ब्रह्म-प्राप्ति के लक्ष्य की ओर तब तक अग्रसर नही हो सकता जब तक उसे सत्या-सत्य का विवेक, श्रेय तथा प्रेम का ज्ञान और वास्तविक अनुभूति नही हो जाती। मनुष्य कर्म के लिए स्वतन्त्र है, वह अपने सकल्प और इच्छानुसार कर्म करता है।[4] कर्म की श्रेष्ठता मानव का कल्याण करती है तथा उसे ब्रह्म की* उपलब्धि मे सहायता देती है। मुक्तिकोपनिषद् मे कहा गया है कि मनुष्य को आत्मज्ञान द्वारा शुभ-मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। अशुभ को शुभ मे प्रवृत्त कर देने मे ही मानव की श्रेष्ठता है।[5] शुभ कर्म का फल भी शुभ ही होता है। इससे ब्रह्मोपलब्धि का मार्ग प्रशस्त होता है तथा स्व एवं पर का कल्याण होता है।

'कर्म' का आदर्श ग्रहण कर और कर्मयोगी बनकर हम ससार की उपेक्षा नही कर सकते। कर्म, मानव और ससार इन तीनो का अभिन्न सम्बन्ध है। हमे व्यावहारिकता के विचार से भौतिक तथा अभौतिक दोनो ही कर्मों को पूरी पूरी मान्यता देनी पडती है। हम इस ससार की उपेक्षा नही कर सकते क्योकि यह ससार उपनिषदों की मान्यतानुसार ब्रह्मरूप (परम-सत्ता) ही है।[6] मनुष्य को इसके प्रति सचेत एव सजग रहना चाहिए क्योकि इस ससार के सत्य को पहचान कर ही उसे ग्रहण करना है और भ्रममय असत्य से अपनी रक्षा करनी है। असत्य और भ्रम मानव की लक्ष्य-सिद्धि मे मानसिक विकार बनकर बाधा उपस्थित करते हैं तथा उसको मन्द-बुद्धि से ग्रसित कर सत्य से दूर ले जाते है।

ससार मे मानव के सम्मुख दो प्रकार के कर्म-मार्ग है—प्रेय मार्ग तथा श्रेय मार्ग।[7] मानव का सम्बन्ध इन दोनो से ही पडता है। ससार के प्रति एकान्त अनुराग प्रेय मार्ग है और ईश्वर के प्रति अनुराग एव मानवता के अभ्युदय के प्रति निष्ठा श्रेय मार्ग है। प्रेय मे तात्कालिक सुख होते हैं जो

1 छान्दोग्य उ०—3·17·4
2 वही, 4-4-1, 5
3 प्रश्नोपनिषद्, 6-1
4 बृह० उप० 4-4-5
5 महादेव शास्त्री (स०)—सामान्य वेदान्त उपनिषद्, पृ० 358/121
6 सर्वं खल्विद ब्रह्म। छ० उ० 3·14·1
7 'श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीर ।
श्रेय ोहि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते।' —कठोपनिषद् 1-2-2

व्यक्तिगत स्वार्थ से सम्बद्ध होते हैं तथा मानव को अपने आकर्षण द्वारा सकीर्ण-मनोवृत्ति मे आबद्ध कर उच्चतर लक्ष्य से भ्रष्ट करते हैं। इससे वह भेद-बुद्धि के कारण शारीरिक सुख तक ही सीमित और क्षणिक इच्छाओ की तृप्ति मे ही सलग्न होकर रह जाता है परन्तु श्रेय मार्ग मे व्यष्टिगत सुख-कामना न होकर समष्टिगत सुख-कामना होती है। वह आत्मा के उदात्त एव विशुद्ध रूप से युक्त होती है।

गीता म भगवान कृष्ण ने भेद-बुद्धि को दूर करने का उपदेश देकर मानव-मात्र को स्व-कल्याण और पर-कल्याण का मार्ग दिखाया है[1] जिसके लिए ज्ञान और कर्म पर बल दिया गया है। वास्तव मे मनुष्य जीवन की और उसके ज्ञान की सार्थकता उसके कर्म मे है,[2] इसलिए उस ज्ञान से कोई लाभ नहीं जो कर्म को प्रभावित नही करता। जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र मे मनुष्य के ज्ञान की उन्नति, उसकी कर्म-क्षमता की उन्नति के समानान्तर होती है। जब सामान्य ज्ञान की बातो को मानव-हितो तथा रुचियो मे सम्बन्धित कर दिया जाता है तब ज्ञान सत्य बन जाता है और कर्म को उसकी कसौटी बना लिया जाता है।

अपने कर्मों द्वारा ससारी लोगो को कर्म की शिक्षा देने के लिए ही भगवान स्वय कर्म करते हैं। श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं,—'हे पार्थ, इस जगत मे मुझे कुछ करने को नही है, फिर भी मैं कर्म करता हूँ क्योकि मनुष्य मेरा ही अनुसरण करते हैं और यदि मैं निष्क्रिय होकर बैठ जाऊँ तो सभी कर्म करना त्याग देंगे और ससार मे अनर्थ हो जायेगा'।[3] कर्तव्यपालन के लिए अर्जुन को उन्होने तीन प्रकार से उपदेश दिया है—पारमार्थिक, व्यावहारिक तथा सामाजिक।[4] कर्म इन सभी दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण है। किन्तु यह कर्म निष्काम भाव से करना चाहिए।[5] कामना और अहभाव का त्याग कर कर्म से शान्ति प्राप्त होती है[6] और शान्त ही परमानन्द प्राप्त करता है।[7] ऐसे कर्म करने से अन्त करण की शुद्धि होती है[8] और शुद्ध ही सात्विक कर्म करने वाला होता है।[9]

1 उमेश मिश्र— भारतीय-दर्शन', पृ० 80
2 डा० देवराज—सस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० 363
3 गीता, 3-21, 22
4 उमेश मिश्र, 'भारतीय दर्शन', पृ० 71
5 गीता, 2 47
6 गीता, 2-71
7. गीता, 2-72
8 गीता, 5 11
9 गीता, 18 23

कर्म करने वाले को निष्काम होने के साथ-साथ समदर्शी भी होना चाहिए। समदर्शी योगयुक्त महापुरुष सर्वत्र सम्पूर्ण भूतो मे आत्मा को और सब भूतो को आत्मा मे स्थित हुआ देखता है।[1] इस प्रकार मानव को समदर्शी बनकर भेद बुद्धि त्याग कर उच्च-लक्ष्य और सिद्धि की ओर उन्मुख होना चाहिए। यह समदृष्टि आत्म शुद्धि या आत्मोन्नयन के पश्चात् ही प्राप्त होती है। ऐसा ही व्यक्ति यथार्थ का दर्शन करता है जो विनाशशील वस्तुओ मे भी समरूप से विराजमान एक अविनाशी तत्व को देखता है।[2] आत्मा अजर-अमर और अविनाशी है[3] तथा पचभूत-निर्मित शरीर नश्वर है, इसलिए बाह्य-रूप की अपेक्षा अन्त-रूप पर अधिक बल दिया गया है। सच्चा ज्ञान उसी व्यक्ति को प्राप्त होता है जो समस्त प्राणियो को आत्मवत् देखता है और वही अपना और लोक का कल्याण कर सकता है।

समत्व-दृष्टि मानव-कल्याण का मार्ग है, दु ख से निवृत्ति का मार्ग भी यही है और यही सार्वभौम मानवता के दर्शन की झाँकी दिखलाती है। समत्व ही मानव-जीवन का चेतन लक्ष्य है। उसकी आत्मा की जागरूकता और जीवन का सत्य तत्व है। इस सत्य का ज्ञान होने पर वह स्व-कल्याण के साथ अन्य प्राणियो का भी कल्याण साधन बनता है क्योकि कर्म की सात्विकता एव उसके श्रेय तत्व का व्यावहारिक जीवन पर यथार्थ और प्रत्यक्ष प्रभाव पडता है।

आत्मानन्द की इस स्थिति का ईशावास्योपनिषद् मे विशद् वर्णन है। जो सम्पूर्ण भूतो का आत्मा मे और आत्मा का सब म दर्शन करता है, वह किसी से घृणा नही करता तथा वह शोक-मोह से ग्रसित नही होता।[4] सर्वत्र आत्मीयता का प्रसार है, इस स्थिति में वैर विरोध के लिए कोई स्थान नही क्योकि वैर-विरोध तो अपने से भिन्न से ही हो सकता है, अभिन्न से नही। अतएव मानव का आन्तरिक दर्शन या ज्ञान ही सम-विषम परिस्थितियो को प्रकट करता है। जहां आन्तरिक समता है, वही शान्ति है और जहां शान्ति है, वही सुख है—जो प्राणीमात्र का ध्येय, श्रेय और परमश्रेय है। समता दृष्टि और ज्ञान के कारण आन्तरिक समदर्शन बने रहने से एक-दूसरे के साथ घृणा द्वेषादि

1 सर्वभूतस्थमात्मान सवभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सवत्र समदर्शन ॥ —गीता 6-30

2 सम सर्वेषु भूतेषु तिष्टन्त परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्व विनश्यन्ति य पश्यति स पश्यति ॥ —गीता 13-27

3 गीता—2-11, 25

4. यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मान ततो न विजुगुप्सते ॥
यस्मिन सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानत।
तत्र को मोह क शोक एकत्वमनुपश्यत ॥ —ई० उ० 6, 7

नही होते, इसलिए मानव प्राणिमात्र को आत्मदृष्टि से देखता हुआ अनैतिक व्यवहार नहीं करता अपितु सदाचारमूलक सुजनता, सहिष्णुता, स्नेह, सौहार्द, सरलता आदि सद्गुण ही प्रकट करता है। यही मानव का दिव्य और श्रेष्ठ रूप है।

मानव और नैतिकता

मानव-जीवन मे मानसिक तथा आध्यात्मिक बल का जो महत्वपूर्ण स्थान है वह शारीरिक बल का नही है। वेद और उपनिषद सम्बन्धी आध्यात्मिक विवेचन मे हम देख चुके है कि व्यक्ति को सदाचारी, अध्ययनशील, आशावादी, दृढ, निष्ठावान् तथा बलवान बनना चाहिए। इस आभ्यन्तर व्यक्तित्व से सम्बन्ध रखने वाले तीन तत्व मुख्य माने जाते है—आत्मा, मन और शरीर।[1] जिस व्यक्ति की आत्मा, मन और शरीर स्वस्थ है वह सुखी हैं। इनम भी आत्मा की विशदता, स्वस्थता सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं।

भारतीय-दर्शनो के अनुसार मनुष्य अपने-आप म पूर्ण हैं। उसके लिए बाह्य-विकृतियो विकारो से मुक्त होना आवश्यक है और यही मुक्ति है। नैतिक दृष्टि से सच्चरित्र ही मानव-व्यक्तित्व है, विकास का मूल तत्व है। यही मानव को पूर्णता देता है।[2] मानव को सद और असद मे निर्णय करना ही पडता है, यह सामान्य जीवन का महत्वपूर्ण और गम्भीर पक्ष है।[3] जिसे हम नैतिकता और 'आचार' कहते हैं वह वास्तव मे अपने ही नही, दूसरो के प्रति कैसा व्यवहार किया जाए इस बात का भी मार्गदर्शन करता है। डा० अल्वर्ट श्वित्जर ने दूसरो के प्रति व्यवहार को ही नैतिक दृष्टिकोण स महत्व दिया है।[4] मानव-मन की यह औचित्य भावना ही उसकी आत्मा की विशदता मे सहायक है। गांधी जी आत्म-परिष्कार को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र म आवश्यक मानते हैं। उनके अनुसार हमे मन, वचन और कर्म से शुद्ध होना

1 इन्द्रचन्द्र शास्त्री—मानव और धर्म पृ० 78

2 Immanuel Kant—Lectures in Ethics—p 252

3 William Marshall Urban—Humanity and Deity—p 411

4 " we feel obliged to think, not only of our own well-being, but of that of other people, and a society in general The first stage in the development of Ethics began with the idea that this "thinking of others" should be put on an even—broader basis "
—Jacques Feschotte—Albert Schweitzer An Introduction p. 114

चाहिए ।[1] जर्मन दार्शनिक कान्ट भी इस विचार से सहमत हैं ।[2] हेराक्लिटस का कथन है कि ईश्वर के लिए सद और असद सब समान हैं क्योंकि वह पूर्ण और निरपेक्ष है किन्तु मानव को इसका विचार करके ही चलना है ।[3]

प्लेटो के मतानुसार सदगुण व्यक्तिगत आचरण, सामाजिक कल्याण तथा लोक मगल के लिए आवश्यक है। वास्तव मे सदगुणयुक्त जीवन ही पूर्ण तथा सगतियुक्त है ।[4] जो सत है वही शुभ और शिव है। शुभ वह है जो अपने आप में वाछनीय है तथा जिसमे विरोध और असगति नही है। प्लेटो के विचार इस सम्बन्ध मे बडे उदात्त हैं, वह कहता है शुभ का मूल्य किसी वस्तु के सम्बन्ध मे न तो घट सकता है और न बढ सकता है क्योंकि इसका परिणाम पूर्ण सन्तोष और शुभ होना आवश्यक है। सदगुण ज्ञान है जिसका परम विषय शुभ की प्राप्ति है। सर्वोच्च शुभ की प्राप्ति सैद्धान्तिक और व्यावहारिक ज्ञान के ऐक्य की सूचक है। सत्य का ज्ञान आचरण की समस्या को हल कर सकता है ।[5]

सदगुण विवेक सम्मत और नैतिक[6] दोनो ही हो सकते हैं। विवेक सम्मत सदगुण बौद्धिक आत्मा का गुण है जो व्यावहारिक और सैद्धान्तिक ज्ञान का सूचक है। इस प्रकार वही व्यक्ति विवेकी है जो शुभ ध्येय और उचित साधना को चुनता है। जहां तक नैतिक सदगुणों का सम्बन्ध है वे व्यवहार या कर्म द्वारा आते हैं और ये व्यक्ति तथा समाज दोनो के लिए मूल्यवान हैं ।[7] सुकरात का यही सामाजिक आदर्श था।

अरस्तू भी इसी बात से सहमत हैं कि शुभ की प्राप्ति जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे कुछ स्वाभाविक नियमो के पालन द्वारा ही हो सकती है ।[8] सैद्धान्तिक नियम ही विवेक और बुद्धि द्वारा जीवन के स्वस्थ व्यवहार के गुणो में परि-

1 "Self—purifications must mean purification in all the walks of life To attain the perfect purity one has to become absolutely passion—free in thought, speech and action "
—M K Gandhi—Truth in God—p 50-51

2 "The moral law must be the expression of supreme purity" —M K Gandhi—Truth in God—p 66

3 Bertrand Russell—My sticism, logic and other essay—p 3

4 शान्ति जोशी—'नीति शास्त्र', पृ० 499

5 शान्ति जोशी—नीति-शास्त्र, पृ० 501

6 S Radhakrishanan & P T Raju (Eds)—The Concept of Man—p 93

7 Ibid—p 66, 70

8 Ibid—p 92

वर्तित हो जाते हैं। नैतिक लक्ष्य की पूर्ति के लिए मानव जीवन मे इन गुणो का प्रसार करना चाहिए। मानव जीवन का शुभ नैतिक गुणो से अनुस्यूत जीवन में ही निहित है।[1]

अरस्तू ने अपने ग्रन्थ नीति-शास्त्र मे नैतिक गुणो का मानव-जीवन के कल्याण के लिए विशद विवेचन प्रस्तुत किया है। विवेक-सम्मत अथवा बौद्धिक गुण हमे वस्तुओ और तथ्यो को वास्तविक रूप मे समझने मे सहायता देते हैं और हमारे आत्म-सस्कार द्वारा चिर-स्थायी और शुद्ध आनन्द की उपलब्धि सम्भव बनाते हैं। इनके तीन साधन हैं, शुद्ध अन्तर्दृष्टि, पूर्व-ज्ञान का परिष्कार और उन्नयन एव ज्ञान। किन्तु मानव-वृत्तियो और भावनाओ के सयम मे अधिक सहायक न होने से ये अधिक महत्वपूर्ण नही हैं।

आचार सम्बन्धी गुणो मे न्याय तथा भावना सम्बन्धी गुण आधार-भूत हैं। न्याय के तीन पक्ष हैं—(1) सामाजिक न्याय का विस्तृत रूप, जिसे अरस्तू ने सर्वश्रेष्ठ आचरण माना है और जो सामाजिक उपलब्धियो के समान उपयोग पर बल देता है, (2) समानता का शासन और (3) प्रत्येक को आवश्यकतानुसार जीवन-सुविधाओ की प्राप्ति।[2] जहाँ तक भावना सम्बन्धी आचरण और गुणो का सम्बन्ध है, उन्हे भी तीन रूपो में रख सकते हैं[3]—(1) निजी आतरिक सुख-दु ख सम्बन्धी, (2) बाह्य अमानवीय भौतिक वस्तुएँ और (3) अन्य मानव सम्बन्धी। इन सबका सयमन आवश्यक है क्योकि मनुष्य सामाजिक परिवेश मे रहता है जिसमे अनेक मानव सम्बन्धित हैं, इसलिए सहज सहानुभूति, सज्जनता, सत्य और कुशलता के गुण[4] होने अनिवार्य हैं। इन सभी नैतिक और आचरण सम्बन्धी गुणो की प्राप्ति प्लेटो और अरस्तू के मतानुसार उचित शिक्षा-प्रणाली की व्यवस्था द्वारा हो सकती है।[5]

1 "The *first step* in *attaining the moral goal is* to spread the influence of reasons in every phase of human life, and thus to build up firm tendencies towards responsible action in the concrete But this is only his first step Firm tendencies are not enough They must be actually energized in the concrete Human happiness is activity (energia) in accordance with virtue for the whole span of human life "
—S Radhakrishnan & P T Raju (Eds,)—The Concept of Man —p 92
2 Ibid—p 93-34
3 वही, पृष्ठ 94
4 Nichomachean Ethics—part IV—Ch 6-8
5 S Radhakrihnan and *P T* Raju (Eds)—The Concept of Man—p 95

यूनानी दार्शनिकों के विचार से मेधावी अथवा मेधा-प्रेमी व्यक्ति ही आदर्श मनुष्य है,[1] नैतिक है, जो विवेक द्वारा भावनाओं और आचरण का परिष्कार करता है। भारत के आत्मज्ञानी और यूनान के मेधावी में पर्याप्त समानता है परन्तु यूनानियों का आदर्श भारतीयों की भाँति साधुता को सिद्धि नहीं मानता। भारतीय-साधुता का सम्बन्ध मनुष्य के अन्त करण से है जिसे वेदों और उपनिषदों ने आत्मा की संज्ञा प्रदान की है। आत्मा को ही सत्पुरुष और शुद्ध निर्विकार माना गया है। इसलिए ऐसा व्यक्ति भौतिक स्तर से ऊपर उठ जाता है और मनोविकार उसे प्रभावित नहीं करते। भारतीय-दर्शन में सामान्य मनुष्य के लिए भी गुण वर्द्धन का आदर्श इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है, 'हे मनुष्य, संसार के ताने-बाने को बुनता हुआ, कर्मयोगी बनकर तू भी प्रकाश के पीछे चल। बुद्धि से परिष्कृत प्रकाश युक्त मार्गों की तू रक्षा कर। मनुष्य के बहुविध कर्म हैं, उनमें समन्वय और सन्तुलन रख। निरन्तर ज्ञान के मार्ग पर चलता हुआ उलझन से रहित कर्म का विस्तार कर और अपने पीछे दिव्यगुण-युक्त उत्तराधिकारी को जन्म दे।[2] इस प्रकार मानव को उच्चधर्म की शिक्षा दी गई है। मानव-श्रेय इसी में है कि वह अपने कर्म और आचरण द्वारा आदर्श बनकर मानवमात्र का कल्याण करे। पदम पुराण में एक स्थान पर कहा गया है कि जो मनुष्य जितेन्द्रिय, दुर्गुणों से मुक्त तथा नीति-शास्त्र के तत्व को जानने वाला है और ऐसे ही अन्य नाना प्रकार के गुणों से सन्तुष्ट दिखाई देता है, वह देवस्वरूप है।'[3] नैतिकता और आचरण श्रेष्ठता के सम्बन्ध में भर्तृहरि कहते हैं, 'जिनमें न विद्या है, न ज्ञान है, न शील है, न गुण है और न धर्म ही है, वे मृत्युलोक में पृथ्वी पर भार बने हुए मनुष्य रूप में मानो पशुवत् ही भ्रमण करते हैं।[4] मनुष्य की पशुता को ज्ञान और सहानुभूति आदि ही कम कर सकते हैं। राग, द्वेष, ईर्ष्या, मद, मोह से रहित जहाँ सेवा और तप का क्रम चलता है वहीं मानवता परिपुष्ट हो जाती है। इसी के साथ साथ जब दोषों का पूर्णतया त्याग एवं एकमात्र परमात्मा से अनुराग होता है तब जीवन में दिव्यता आती है।

विवेकी मानव में मानवता का परिचय उसकी सेवा वृत्ति में उपलब्ध होता

1 S Radhakrishnan and P T Raju (Eds)—The Concept of Man—p 311

2 तन्तु तन्वन् रजसो भानुमन्विहि
ज्योतिष्मत पथो रक्ष धिया कृतान्।
अनुल्बणं वयत जोगुवामपो
मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् —ऋग्वेद 10 53 6

3 पदम० सृष्टि 74-134

4 येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥ —नीतिशतक, 13

है क्योकि वह दूसरो की सेवा मे अपने हित को देखता है । नीति शास्त्र का यह आदेश नही है कि अपने हित का त्याग कर केवल परमार्थ का चिन्तन करे वरन स्व पर का साथ साथ हितसाधन करे । इस प्रकार नीति का उद्देश्य यह है कि मनुष्य अपनी सुखाभिलाषा मे इस प्रकार प्रवृत्त हो कि जिससे उसका भी हित हो, पूर्ण विकास हो तथा दूसरो का भी अहित न हो ।[1]

यहूदी धर्म के विचार से मानव मे ईश्वरीयता है। इसलिए उसे ईश्वरीय आवश्यकता कहा जा सकता है ।[2] ये मनुष्य मे ईश्वर का बिम्ब[3] होने के कारण उसमे प्रेम, दया एव दैविक गुणो आदि की अवस्थिति बताते है । मनुष्य में सज्जनता होनी आवश्यक है, गुण पूर्णता होने पर ही सज्जनता आती है और वह पवित्र बन जाता है ।[4] पवित्रता ईश्वर का एकमात्र ऐसा गुण है जो उसमें और मानव मे भेद बताता है ।[5] यूनानी और भारतीय विचारधारा की तुलना मे यहूदी धर्म की ईसाई विचार-धारा मे नैतिकता पर अधिक बल दिया गया है । अरस्तू नैतिकता की दृष्टि से अत्याचार सहन करना दासता मानता था, प्लेटो अन्याय सहन करना, अन्याय करने की अपेक्षा उत्तम मानव-आदर्श मानता था ।[6] यूनानी विचारको ने मानव-सम्बन्धो को नैतिक सदभावना द्वारा समृद्ध करने पर बल दिया है । व्यक्तिगत और पारस्परिक व्यवहार के सदगुणो ने मानव कल्याण मे सदैव सहायता की है । नैतिकता के आदर्श मे सार्वभौमिक एकता और कल्याण की व्यापक मान्यता होती है । सदाचार और नैतिकता व्यक्तिगत गुण हैं । इनके लिए किसी को बाध्य नही किया जा सकता, केवल प्रेरित ही किया जा सकता है[7] क्योकि इसमे उत्सर्ग, त्याग और सहिष्णुता आदि का होना आवश्यक है । वाल्टर हिल्टन कहते हैं कि बहुत से मनुष्य विनम्रता, सन्तोष, दया का पालन तर्क द्वारा विवश होकर करते हैं । उनको इससे कोई आत्मिक आह्लाद नही मिलता और कभी-कभी वे इससे कुढते और

1 John Russell—The Task of Rationalism in Retrospect and Prospect—p 26 (Gonway Memorial Lactures, 1920)
2 S Radhakrishnan & P T Raju (Eds)—The Concept of Man "Man is needed, he is a need of God"—p 119
3 "And God said Let us make man in our image (tselem), after our likeness (demuth) And God created man in His image, in the image of God created He him"
—Bible—Cenesis I 3, 6 f
4, S Radhakrishanan & P T Raju (—Eds)—The Concept of Man—p 125
5 वही, पृ० 311
6 Wilhelm Wundt—The Facts of Moral Life—p 283
7 Hector Hawton (Ed)—Reason in Action—p 37

दुखी होते हैं। उनमे उन कार्यों के प्रति सच्चा अनुराग-भाव नही होता, ऐसी नैतिकता व्यर्थ है। इसमे ईश्वर के अनुग्रह से ही सच्चा अनुराग उत्पन्न हो सकता है।[1]

बौद्धिक, भावमय तथा कल्पनामय सज्जनता सद्गुण तो है किन्तु अन्तिम सदाशयता नहीं है। इच्छा, कामना और कर्म का सयम भी पर्याप्त नही है जब तक कि वे ज्ञान, विचार और अनुभूतिमय नही होते।[2] सयम तभी पूर्ण होता है जब वह सज्जनता और जीवन की सरल विनम्रता का रूप ग्रहण करता है।[3] दूसरो के कल्याण के लिए अपने स्वार्थ का त्याग करना नैतिक श्रेष्ठता का मूलाधार है।[4] यह मनुष्य को आत्मसतोष देता है। वास्तव मे नैतिक सृजनात्मक शक्तियाँ ही मानव कल्याण और मूल समृद्धि में सहायक होती हैं। इस कार्य के लिए यूनानी ऐपिक्यूरियन विचारकों ने पारस्परिक मैत्री भाव, न्याय-प्रियता और सहिष्णुता को शान्ति और सुख का साधन बताया था।[5]

मानव सुख और आनन्द के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता है। इस आनन्द और सुख की उपलब्धि किस प्रकार हो? सुख शरीर से सम्बद्ध है और आनन्द अनुभूति होने के कारण आत्मा का गुण है। इस सम्बन्ध मे श्री गारनेट कहते है 'जब हम अपने अह और स्वार्थ को भूलकर दूसरो के कल्याण मे रुचि लेते हैं तभी हमे वास्तविक आह्लाद प्राप्त होता है, यह चित्त की विशदता और आत्म स्फीति की दशा होती है। इन्द्रिय-सुख से परे जो हमारे सुख के ध्येय है, उन्ही की पूर्ति मे हमे आनन्द मिलता है।'[6] यह जीवन मे सद्भावना का प्रसार करता है। वे आगे कहते है कि नैतिकता, आचरण की श्रेष्ठता सार्वजनिक कल्याण के लिए नितान्त आवश्यक है यद्यपि उसका माध्यम एक व्यक्ति ही है। यह समाज की एकता के लिए भी आवश्यक और अपरिहार्य है।[7] एक से अनेक मे परिवर्तित होकर ईसाई धर्म मे नैतिक उत्थान द्वारा भ्रातृत्व का

1 Aldous Huxley—The Perennial Philosophy—p 117

2 "The goods of the intellect, his emotions and imagination are real goods, but they are not the final good, and when we treat them as ends in themselves, we fall into idolatory Mortification of will, desire and action is not enough, there must also be mortification in the fields of knowing, thinking, feeling and fancying" —वही पृ० 118

3 वही, पृ० 121

4 Hector Hawton (Ed)—Reason in Action—p 133

5 Hector Hawton (Ed)—Reason in Action—p 36

6 A Campbell Garnett—The Moral Nature of Man

7 Ibid—p 268

प्रसार किया जाता है। इस नैतिक दृष्टि से पर-कल्याण ही सर्वश्रेष्ठ और चरम-लक्ष्य होता है।[1]

ईसाई-धर्म ने नैतिक दृष्टिकोण को हजरत ईसा के उपदेश द्वारा नया रूप प्रदान किया। इसके अनुसार मानव की महत्ता इसलिए नहीं है कि वह इस भूमण्डल का एक अंश है वरन् इसलिए है कि उसमें ईश्वरीय गुण विद्यमान है।[2] ईश्वरीय बिम्ब-रूप मानव को सम्पूर्ण मानव के रूप में मान्यता प्राप्त है अत ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, महात्मा, मूर्ख, मत, पापी, दुख, सुख, सज्जनता और दुष्टता सहित इस मानव को भेदभाव रहित एक स्वीकार किया गया है। मानव की सिद्धियों एव गुणों का कोई महत्व नहीं, महत्व है उसमें मूलरूप से निहित और व्याप्त सबके प्रति सदभावना जो अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम करने के लिए प्रेरित करती है।[3] ईश्वर समस्त प्राणियों को समान रूप से प्रेम करता है, इसलिए हमें भी मानव को ईश्वर-रूप होने के कारण बिना किसी दुर्भावना और भेद के प्रेम करना चाहिए। इस प्रकार मानव भी ईश्वर की भांति पवित्र बन सकता है, मानव मात्र ईश्वर के प्रेम का पात्र है अत पवित्र है।[4] भारतीय आत्म-ब्रह्म का आदर्श यहाँ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। मानव के प्रति पूर्ण आदर और श्रद्धा का रखना ही ईसाई धर्म म ईश्वर की उपासना करना तथा उसका आदर करना है। मानव के प्रति हिंसक और द्वेषी होना ईश्वर के प्रति ही ऐसा व्यवहार करना है।[5] रावी बाइबिल में

1 " The self, therefore, is only wholesome so long as i can for the most part, forget itself and its feeling—states in interests, in objectives, beyond itself When the welfare of other human beings becomes the habitual and preferred objective of such a wholesome, predominantly extroverted self, then it manifests the virtue that christianity calls, ' brotherly love"
—A Campbell Garnet—The Moral Natur of Man—p 270

2 "Man is man not because of what he has in common with the earth, but because of what he has in common with God The Greek thinkers sought to understand man as a part of the universe the prophets sought to understand man as a partner of God"
—S Radhakrishadan and P T Raju (Eds)—The Concept of Man—p 128

3 "Love thy neighbour as thyself"—Leviticus, 19 18 (Bible)

4 "Ye shall be holy, for I the Lord your God am holy
—Leviticus 19 2 (Bible)

5 "Reverence for God is shown in our reverence for man The fear you must feel of offending or hurting a human

कहता है उपासक उपास्य का ही प्रतिरूप है इससे अधिक स्वामी और सेवक मे क्या समानता हो सकती है।[1] किन्तु यह समानता या एकरूपता समाप्त भी हो जाती है यदि मानव अपनी पवित्रता खो दे तथा उसका नैतिक पतन हो जाए। मानव और ईश्वर मे भेद तात्त्विक नही है, वह कर्मों के कारण है।[2]

ईसाई-धर्म में सत्कार्य और नैतिकता के लिए 'मित्सवा'[3] अर्थात् पवित्र कार्य पर बल दिया गया। यही हमें अच्छाई और नैतिक उत्थान की ओर ले जाता है, इसलिए हम कम करते हुए प्रतिक्षण सचेत रहना चाहिए। मानव म ईश्वरेच्छा को पूरा करने की योग्यता एव सामर्थ्य है। ईसाई धर्म और नैतिक आदर्शों ने मानव के सद्गुणो को विकसित होने का अवसर दिया है तथा उसमें हीनता की भावना को नही आने दिया है। ये ही तत्व मानवीयता, विश्व बन्धुत्व और भ्रातृभावना का प्रसार करते है जिससे मानव समाज का कल्याण होता है।

चीनी दर्शन एव धर्म मे सद्मानव को महात्मा बताया गया है। वह मानव-कल्याण के प्रत्येक पक्ष में गहरी रुचि लेता है।[4] मानव को सच्चे अर्थों में मानव बना देना, उसके नैतिक तत्वो को जागृत करना ही वास्तविक मानव सेवा है।[5] चीनी दार्शनिक समाज के प्रति अधिक कर्त्तव्यपरायण है, इसलिए चीनी दर्शन मे ईश्वर प्राप्ति, साधुता पर अधिक बल न देकर मनुष्य को ही महत्व दिया गया है। चीनी नैतिकता का मूल मन्त्र एव सूत्र जेन है जिसका अर्थ प्रेम तथा सौहार्द्र है और यही मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ गुण है। इस प्रकार जो पूर्ण मानव है वही महात्मा है, समाज का आदर्श पुरुष है।[6] यही

being must be as ultimate as your fear of God An act of violence is an act of desecration To be arrogant toward man is to be blasphemons toward God"

—S Radhakrishanan & P T Raju (Eds)—The Concept of Man—p 139

1 S Radhakrishanan and P T Raju (Eds)—The Concept of Man—p 140
2 Ibid—p 141
3 Ibid—p 155
4 Ibid—p 311
5. Ibid—p 311
6 "[illegible] ived from [illegible] Man should [illegible] ho is fully [illegible] with man [illegible]

—S Radhakrishnan and P T Raju—The Concept of Man—p 311

उचित आचरण का मूलाधार एवं औचित्य के निकट है। जो मनुष्य सच्ची मनुष्यता प्राप्त कर लेते हैं वे ही समाज के शासक हैं।[1]

नैतिकता की दृष्टि से *मानव-श्रेष्ठता मनुष्य की सत्यता* मे है और तभी वह गुणपूर्ण होगा तथा सत्य अनुभूतियो और भावनाओं से सम्पन्न होगा। चीनी चिन्तक हुई नेंग कहता है, 'सत्य कही बाहर नही मिलता, वह तो मानव मे ही निहित है। जब मस्तिष्क पर से भ्रम का आवरण दूर हो जाता है तो उसे सत्य का ज्ञान हो जाता है'।[2] इसीलिए कन्फ्यूशियस कहता है कि मनुष्य सत्य को महत्ता देता है न कि सत्य मनुष्य को।[3] चीनी दार्शनिकों का गहरा विश्वास है कि मनुष्य मूलत नैसर्गिक रूप से अच्छा है, इसका सबसे बड़ा लाभ मानव आचरण मे औदात्य का उदभूत होना है। इन गुणो की कसौटी उसका दूसरो के प्रति सद्व्यवहार ही है। मानव-आचरण का सद्रूप शिष्टता मे निहित है। जो लोग मानव-स्वभाव को दोषपूर्ण तथा असाधु मानते है, इस सम्बन्ध में उनका तर्क है कि यदि ऐसा है तो मनुष्य में सज्जनता, साधुता, *सत्यता और सौहार्द्र कहां से आते हैं।[4] मैनशियस का यह तर्क मानव-मात्र के* नैतिक उत्थान और कल्याण में निष्ठा रखता है।[5]

चीनी नैतिकता में जेन शब्द का बडा महत्व है इसे प्रमुख रूप से प्रेम और मानवता के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता रहा है और कभी करुणा के अर्थ में भी।[6] कन्फ्यूशियस ने इसे पूर्णगुण सज्जनता तथा नैतिक जीवन के रूप में प्रयुक्त किया है जिसमें पवित्रता, विवेक, औचित्य, साहस और विश्वासपात्रता के गुण अन्तर्निहित है। जेन की पूर्णता के लिए मानव को धैर्य उदारता, सत्यता, कर्मनिष्ठता और त्याग की साधना करनी चाहिए। उसे निजी जीवन में आदरणीय, कार्य में गम्भीर-धीर और मित्रो में विश्वसनीय होना चाहिए।

1 "True manhood is the foundation for proper conduct and the *embodiment of conformity with the standard of right* Those who have achieved true manhood becomes the ruler of man"
—Lin Yu Tang—The Wisdon of Confucius—p 117
2 Aldous Huxley—The Perennial Philosophy,—p 135
3 It it man that makes truth great but not truth that makes man great"
—Analects 15-28
4 S, Radhakrishnan & P T Raju (Eds)—The Concept of Man —p 171
5. The Book of Mencius, 68-2
6 S Radhakrishan & P T Raju (Eds.)—The Concept of Man —p 183

इस प्रकार जेन दोषो का निराकरण मानव को समस्त गुण-सम्पन्न बनाने म सहायता करता है और उसकी अनुभूति होने पर ही मानव आदर्श मानव बनता है ।[1]

चीनी दार्शनिको ने अपने उपदेश का प्रचार सहज सामान्य जीवन के दृष्टातो एव राजनीतिक व्यवस्था की सुचारता द्वारा किया है । ये कपोल-कल्पनाओ में विश्वास करने की अपेक्षा तथ्य में अधिक विश्वास करते थे और इस प्रकार की प्रणाली का प्रतिपादन करते थे जिससे शासक सभ्यता की दुरूहता को दूर कर सामान्य जन जीवन को दूषित होने स बचा ले । इस प्रकार चीनी नैतिकता चिन्तन, अनुभूति और क्रियान्विति के क्रम से चलती थी । जनता के कल्याण और नैतिक उत्थान के लिए शासक का आदर्श गुण-सम्पन्न होना आवश्यक था ।[2]

चीनी नीति-दर्शन में मानव का मानव के प्रति सम्बन्ध ही मूल और अन्तिम लक्ष्य है । ये यहूदी धर्म तथा ईसाई धर्म की साधुता, प्रेम और सौहार्द्र की भावनाओ का मानव के नैतिक कल्याण में अधिक महत्व दते हैं । यद्यपि चीनी चिन्तक मानव की नैतिकता का सम्बन्ध केवल समाज और शासन से ही मानते है तथापि कही कही यूनानी विचारको की भाँति समस्त ब्रह्माड से गहरा सम्बन्ध भी स्वीकार किया गया है । भारतीय नैतिकता में गुणार्जन के लिए पूर्ण समर्पण को आवश्यक माना गया है ।[3]

इस प्रकार मानव कल्याण और मानव जीवन के उत्थान में औचित्य और नैतिकता आवश्यक है । औचित्य जीवन में समरसता, सामजस्य, शक्ति एव सन्तुलन लाता है, नैतिकता सामाजिक व्यवस्था और जीवन की स्वस्थता तथा कल्याण का प्रसार करती है । औचित्य का महत्व लोक-पक्ष में होता है । इसमें नैतिकता का विचार प्रमुख होता है । नैतिकता जीवन में सुख और आनन्द की स्थापना करती है और इसका सम्बन्ध मनुष्य के आचरण से होता है । श्रम, सयम, सेवा, सदाचार, विनम्रता जैस गुण मानव-निर्माण में सहायक होते हैं । हमारे जीवन की सुन्दरता से समाज भी सुन्दर बन सकता है । मानवता

1 'It denotes the general meaning of moral life at its best It includes filial piety, wisdom, propriety, courage, and [illegible]

—S Radhakrishnan & P T Raju (Eds)—The Concept of Man—p 183

2 Aldous Huxley—The Perennial Philosophy— p124

3 S Radhakrishnan & P T Raju (Eds)—The Concept of Man—p 313, 361, 362

की भूमि में ही प्रेम से द्वेष पर, न्याय से अन्याय पर, सेवा से स्वार्थ पर और गुणा के द्वारा दोष पर विजय सुलभ हो सकती है।

प्रसिद्ध चिन्तक बर्ट्रेण्ड रसल मानव आचरण के सम्बन्ध में कहते हैं कि जिस मनुष्य ने अनुभूति की दार्शनिक प्रणाली को अपना लिया है वह इस बात का अनुभव करेगा कि जो बातें उसके लिए अच्छी हैं या बुरी हैं, दूसरो के लिए भी वैसी ही हैं।[1] यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि विभिन्न धर्मों में धार्मिक मान्यताओं के सम्बन्ध में मतभेद हैं किन्तु नैतिक उपदेशों और विचारों के सम्बन्ध में एकता है। उनका धर्म शास्त्र नैतिक संहिता में आकर मानवीय हो गया है।[2] सभी धर्मों की नैतिक एकता कुछ सूत्र-नियमों में परिलक्षित होती है। ईसाई-धर्म में कहा गया है 'दूसरो के साथ ऐसा ही व्यवहार करो जैसा तुम अपने साथ चाहते हो।[3] भगवान बुद्ध कहते हैं, 'जो वस्तु तुम्हें पीडा दुःख देती है उससे दूसरो पर प्रहार न करो।'[4] इस्लाम धर्म में कहा गया है, 'तुम में से कोई भी तब तक धर्म में श्रद्धा नहीं रखता, जब तक वह अपने भाई के लिए भी वही वस्तु नहीं चाहता, जो अपने लिए चाहता है।'[5] और तलमूद का कथन तो यह है कि 'जो तुम्हारे प्रति असद् है वैसा ही आचरण दूसरो के लिए न करो।[6]

इस सूत्र-नियमों से ज्ञात होता है कि नैतिक नियमों में जब तक सार्वभौमिकता का गुण नहीं होगा, ये नैतिक चेतना की आवश्यकता को पूर्ण नहीं कर सकते,[7] इसीलिए इनमें आन्तरिक समानता के दर्शन होते हैं। प्रसिद्ध अस्तित्ववादी चिन्तक सार्त्र का कहना है कि मनुष्य स्वयं अपना निर्माण करता है, वह पूर्वकृत नहीं होता[8] और परिस्थितियों की विवशता के कारण वह

1 "A man who has acquired a philosophical way of feeling will note what things seems to him good and bad in his own experience and will wish to secure the former and avoid the latter for others as well as forhimself"
—R Osborn—Humanism and Moral Theory—p 92
2 R Osborn —Humanism and Moral Theory—p 92
3 Ibid—p 92
4 कल्याण—मानवता अक पृ० 391
5 R Osborn—Humanism and moral Theory—p 92
6 Ibid—p 92
7 W G De Burgh—From Morality to Religion, p 65
8 "Man makes himself He is not readymade at the first In choosing his ethics he makes himself, and force of circumstances in such that he cannot abstain from choosing one"
—Jean Paul Sartre—Existentialism—P 51

उसे टाल नही सकता । इस प्रकार नैतिकता का पालन जीवन के अस्तित्व, उसके कल्याण का एक आवश्यक और अपरिहार्य अग है।

मानव-कल्याण की नैतिक-सहिता का सृजन करने वाले व्यक्तियो को महापुरुष माना जाता है, अवतार कहा जाता है और समाज का आदर्श भी स्वीकार किया जाता है। इन चिन्तको में केवल वे ही लोग नही होते किन्तु अन्य साधु, सन्यासी, योगी, महात्मा, तपस्वी और सन्त भी होते हैं। यद्यपि ये भौतिक जीवन से दूर रहते हैं किन्तु जीवन के सम्बन्ध में सामान्य लोगो से अधिक गम्भीर और दूरदर्शिता से चिन्तन करते है। इनमें सभी मत और सम्प्रदायो के लोग होते हैं जो किसी ऐसे नैतिक शाश्वत सत्य की खोज किया करते हैं जिससे मानव जीवन को सुखी बनाने के लक्ष्य की पूर्ति हो। ये इन सिद्धान्तो का अन्वेषण सर्वकल्याण के लिए निरपेक्ष भाव से करते है, इसीलिए साधुता अथवा धर्म-मूलक व्यवहार को समाज में गौरव प्रदान किया जाता रहा है।

सभ्य एव सुसस्कृत व्यक्ति सच्चरित्र एव सुनियोजित हो सकता है किन्तु यह आवश्यक नही कि उसने पूर्णता भी प्राप्त कर ली हो—क्योकि पूर्णता के लिए जीवन और समाज के साथ अनुकूलता अथवा ऐक्य-भाव ही पर्याप्त नही है उसके लिए अनुभवगम्यता की भी आवश्यकता होती है। डा० गोखले कहते हैं कि प्राचीनकाल में कर्मकाण्ड तथा नैतिक-विधान-सहिता इस कार्य में सहायक होती थी।[1] ऋगवेद में विश्व-व्यवस्था सम्बन्धी 'ऋत्' ऐसी ही धारणा है जो विश्व सम्बन्धी नियमो के अतिरिक्त महत्वपूर्ण नैतिक प्रतिमान है। इस में सत्य, व्यवस्था जैसी अन्य बातो का सग्रह होता है।[2] इस प्रकार नैतिक नियमो का प्रारम्भ सृष्टि के आदि से हुआ और उनके मूल्य में समय और काल की आवश्यकतानुसार परिवर्तन, सशोधन और विकास होता रहा।

मानव ने अपने आचरण और समाज व्यवस्था के लिए स्वय ही नियम बनाए और उनका पालन किया। यह मानव का आन्तरिक गुण है और उसके व्यक्तित्व का अभिन्न अग है कि वह कल्याण भावना के प्रति सचेत रहता है। मानवीय शक्तियो का विकास बाहर से नही होता वरन् अन्तरग स होता है। वह आत्मिक बल बढाने के लिए आत्म सस्कार करता है और अपनी सद्-प्रवृत्तियो का उन्नयन करता है। आत्मोत्कर्ष के लिए मनोव्याधियो से मुक्त होना आवश्यक है क्योकि आत्मा का पोषण सद्भावनाओ से होता है। श्रद्धा, विश्वास, सत्य, न्याय, उदारता, प्रेम, धैर्य, आशा, उत्साह, दया, करुणा, त्याग, निर्भीकता मानव-हृदय की सहज सद्वृत्तियाँ हैं। इन गुणो के विकास से मानव लोक की सद्भावना को अपनी ओर आकृष्ट करने मे समर्थ हो जाता है।

1 B G Gokhlae—Indian Thought through the Ages— p 200
2 S Radhakrishnan—Indian Philosophy, part I, p 109-111

सत्पुरुष ऐसे ही होते हैं। उनका व्यक्तित्व विराट एव विलक्षण होता है। वे अलौकिक गुणो और प्रतिमानो को लौकिक बनाकर मानव-कल्याण की भावना का प्रसार करते हैं।

हमारी सद्प्रवृत्तियो का व्यावहारिक रूप ही उनकी उपयोगिता को सिद्ध करता है। यदि हम केवल विवेकशीलता अथवा सैद्धान्तिक नीतिज्ञता तक ही रहेगे तो वह समाज को प्रगति और स्थायित्व की ओर नही ले जा सकती। शुष्क और नीरस नीतिवचन से प्रेम, मित्रता, दया तथा सत्यता जैसे मानव-जीवन को सरस बनाने वाले गुण उपलब्ध नही हो सकते। ये तो अन्तरात्मा से ही निसृत होते है।[1] सामान्य व्यवहार मे शील और सज्जनता नैतिकता की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण गुण स्वीकार किये जाते है।

शील का अर्थ जहाँ माधुर्यपूर्ण शिष्ट-व्यवहार है वहाँ सयम और उचित अनुशासन भी है। बौद्ध-धर्म मे आचरण की दृष्टि से शील का महत्वपूर्ण स्थान है, 'शील का अर्थ केवल अनुचित पापमय कार्यो को अनुचित बताना ही नही है अपितु उन विशिष्ट सकल्पो और मानसिक दशाओ से भी है जो हमे दुष्कृत्यो से रोक कर सद्मार्ग की ओर उन्मुख करती हैं।' डा० दासगुप्ता इस सम्बन्ध मे कहते हैं, 'शील के उचित पालन द्वारा हमारी समस्त शारीरिक, मानसिक तथा वाचिक क्रियाएँ उचित रूप से *व्यवस्थित, सगठित और सुगठित* हो जाती हैं।' इस विषय को अधिक स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि जो लोग सताप से मुक्ति चाहते हैं उनका सर्वप्रथम कर्तव्य यह है कि वे निषेधात्मक पक्ष मे आत्म-सयम का पालन करें और भावनात्मक पक्ष मे मस्तिष्क मे इस बात *का मनन करते रहे कि सब हमारे मित्र हैं, सबके प्रति हमारे हृदय मे सहानु*-भूति और दया हो, सबके सुख की हम कामना करते रहें, दूसरो के दोषो और दुर्गुणो पर विचार न करें और अपने मस्तिष्क को घृणा तथा द्वेष से मुक्त रखें।[2] इस प्रकार आत्म-सयम व्यक्तिगत तथा सार्वभौमिक उत्कर्ष के लिए अनिवार्य है।[3] यह मनुष्य को पूर्णता की सिद्धि मे सहायता देता है।

आत्म-सयम मन और आत्मा की शुद्धि मे सहायक होता है। आचरण की पवित्रता द्वारा आध्यात्मिक प्रज्ञा की सिद्धि का आदर्श मानव-जीवन मे एक शाश्वत सत्य की प्रतिष्ठा करता है।[4] इस तथ्य को अस्वीकार नही किया जा सकता।

1 Surama Dasgupta'—Development of Moral Philsophy in India p 4
2 Surendranath Dasgupta—'Philosophical Essay' p 266
3 "Self-restraint is indispensable for individual as well as *universal progress*
—M K Gandhi 'Self-restraint vs Self-indulgence', p 4
4 H Black—'Culture and Restraint', Part VI, p 156

शील की पूर्णता सज्जनता के साथ होती है। ये मानव-विकास के दो सोपान कहे जा सकते हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर सज्जनता के सम्बन्ध मे लिखते हैं, 'सज्जनता मानव-व्यवहार का सौन्दर्य है। इसकी सिद्धि के लिए सन्तोष, आत्म-सयम की साधना और मुक्त वातावरण की आवश्यकता होती है। सच्ची विनम्रता एक कृति, चित्र या सगीत की भाँति होती है। इसमे वाणी, भाव-भगिमा, गति, शब्द तथा कार्य की सामंजस्यपूर्ण एकता होती है। इसका कोई गुप्त अथवा अप्रत्यक्ष उद्देश्य नही होता वरन् यह मनुष्यता को उद्घाटित कर देती है।'[1] इस प्रकार एक गुण से भी मानव की अनेक चरित्रगत विशेषताएँ विदित होती हैं। मानवीय गुणो मे समता और सहयोग भी आवश्यक हैं। मनुष्य को आत्मिक-दृष्टि से देखने पर उसे समस्त प्राणियो मे 'सर्वभूतान्तरात्मा' का दर्शन होता है। एकात्मता की यह भावना मनुष्य को परस्पर सहयोग के लिए प्रेरित करती है। मानवीय सहयोग स्वार्थ-बुद्धि से नही, कर्तव्य-बुद्धि से होता है। यही सामाजिकता का आधार मनुष्य की विशेषता है जिससे मानव-सभ्यता का विकास होता है। जीवन की पूर्णता, सरसता और सफलता के लिए मानव को हृदय से विशाल होना चाहिए। इससे जन-समाज मे मानवीय भावनाओ की प्रतिष्ठा होगी। महात्मा गाँधी का कथन है कि यदि हम अपने को भावी-पीढियो के नैतिक कल्याण का सरक्षक समझें तो हमारी अनेक समस्याओ का समाधान हो सकता है, कष्टो का निवारण हो सकता है।[2]

नैतिकता और मानव-कल्याण की दृष्टि से व्यवहार और उसके औचित्य का महत्व हाता है।[3] साधारणतया दूसरे व्यक्ति हमारे साथ जो उपकार करते हैं, हमे उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए। किन्तु नैतिकता के नियम सार्वभौमिक होते हैं, वे परिवर्तित नही होते। कर्म का औचित्य-निर्णय उसके परिणाम से होता है, इसलिए हमे कोई ऐसा कार्य नही करना चाहिए जो हम

1 "Civility is beauty of behaviour It requires for its perfection patience, self control and an envoirnment of leisure. For genuine courtesy is a creation, like pictures, like music It is a harmonious blending of voice, gesture and movement, words and actions in which generousity of conduct is expressed It reveals the man himself and has no ulterior purpose"

—Rabindranath Tagore—'Creative Unity', p 3

2 "A large part of the miseries of today can be avoided, if we . . regard ourselves as trustees for the moral welfare of the future generations."

—M K Gandhi—'Self-restraint vs self-indulgence', p 91

3 डा० देवराज—संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० 296

अपने लिए अहितकर समझते हो। साथ ही मनुष्य को 'आत्म प्रेम' तथा दूसरो के हित सम्पादन के बीच उचित सामजस्य रखना चाहिए और बुद्धिपूर्वक आत्महित तथा पर-हित का समन्वय करते हुए चलना चाहिए।

मानव और पशु

मानव की श्रेष्ठता को स्पष्ट करने के लिए उसकी तुलना पशु से की जाती है और दोनो के गुणो, प्रकृति एव प्रवृत्ति के अन्तर द्वारा मानव को श्रेष्ठ प्राणी कहा जाता है। दार्शनिको ने मानव को भी एक पशु बताया है किन्तु उसे सामाजिक पशु कहा जाता है। वह तर्क-वितर्क की शक्ति, निर्णय बुद्धि वाला और विवेकशील पशु है।[1] विभिन्न धर्म-दर्शनो मे मानव-श्रेष्ठता की स्थापना करने के लिए कही-कही उसे ईश्वर से अधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। क्योकि ईश्वर की सत्ता और महत्ता का प्रतिपादन वही करता है। हम इस बात का उल्लेख पहले ही कर आए हैं कि मानव शरीर की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है इसको पाना सहज सम्भव नही, इसलिए इस कर्मभूमि मे आकर मानव शरीर-प्राप्ति की सफलता इसी मे है कि वह अपने वास्तविक रूप को पहचाने।[2]

जीव विज्ञान तथा शरीर-विकास-प्रक्रिया की दृष्टि से मानव और पशु मे विशेष अन्तर नही है, यह परिणाम हमे जीव विज्ञान के अध्ययन स उपलब्ध होता है। ई० पी० ईवान्स अपनी पुस्तक 'इवोल्यूशनल ऐथिक्स ऐण्ड एनिमल साइकोलोजी' मे लिखते हैं कि मनुष्य भी अन्य पशुओ की भांति सृष्टि का एक अग है और उसको विलग करने की चेष्टा दार्शनिक दृष्टि स मिथ्या और नैतिक दृष्टि से घातक है।[3] इस विचार से एक अन्य उपलब्धि यह भी होती है कि मानव इस सृष्टि का एक अभिन्न अग है, उसकी श्रेष्ठता समस्त प्राणियो के साथ सहभाव एव स्नेह रखने पर ही है।

मानव गुणो का परिपालन करनेपर ही श्रेष्ठ हैं। चाणक्य और भर्तृहरि दोनो ही मानव को विवेकशील एव सयमी होना समानरूपो मे स्वीकार करते हैं।[4]

1 S Radhakrishnan & P T Raju (Eds,)—*The Concept of Man* p 78
2 इह चेदवेदीदय सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टि। —केन० उ० 2 2 5
3 " man is as *truly apart* and procedure of nature as any other animal, and the attempt to set him as an isolated point outside of if is philosophically false and morally pernicious "
—Encyclopaedia of Religion and Ethics—Vl VI p 838
4 चाणक्य नीति 10 7, नीतिशतक 13

इसी विशेषता के विकसित होने और नैसर्गिक प्रतिभासम्पन्न[1] होने के कारण मानव, पशु एव अन्य प्राणियो मे बहुत अन्तर है और वे सब उससे किसी-न-किसी अभाव के कारण हीन हैं। मानव कि विशेषता है गुण-सम्पन्न होना और पशु गुण-विहीन होता है। मानवीय गुणो के कारण ही मानव का यह कर्तव्य हो जाता है कि उसकी कर्तव्यशीलता स्वरक्षा एव पालन पोषण तक ही सीमित नही है, उस पर अन्य प्राणियो की जीवन-रक्षा, उनके यथोचित पालन का कार्यभार भी है। इस सम्बध मे कहा गया है कि 'नरक मे पतित होना अच्छा है, प्राणो से वियोग हो जाना भी अच्छा है किन्तु पीडित जीवो की पीडा दूर किए बिना एक क्षण भी सुख भोगना अच्छा नही है।'[2] श्रेष्ठ मानव मे सकीर्ण-वृत्ति स्वार्थपरता न होकर औदार्य, सौहार्द्र, आत्मज्ञान और उत्सर्ग का भाव होता है। स्वहित, स्वार्थसिद्धि की भावना केवल मूढ, अविवेकी शील-रहित, विकृत-बुद्धि वाले पशु मे ही होती है।

मानव और पशु का अन्तर स्पष्ट करते हुए और मानव के सृजनात्मक गुण पर बल देते हुए रवीन्द्रनाथ टैगोर लिखते हैं 'मानव को पशु से अलग करनेवाली विशेषता अथवा गुण उसकी आवश्यकताओ की अभिव्यक्ति म नही है अपितु सृजनात्मक शक्ति और उत्सर्ग मे है जो उसके निवास-आवास, समाज तथा सभ्यता के निर्माण मे सहायक होती है।'[3] पशु मे बुद्धि और विवेक का नितात अभाव होता है इसलिए सृजनशीलता से रहित होता है। मानव की सृजनात्मकता केवल अपने ही लिए नही होती वरन् उसका अत्यन्त व्यापक रूप और प्रभाव होता है। उसमे सार्वभौमिक-कल्याण, हित की कामना और सुख-प्रसार की प्रबल भावना होती है। यही उसकी कर्मशीलता का गरिमामय रूप है। सृजन, सृष्टि, रचना, पालन और कल्याण ईश्वर के महान गुण हैं। इस प्रकार श्रेष्ठ गुण-सवर्द्धन ही उसे सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी सिद्ध करते हैं। इन गुणो से विहीन प्राणी पशु कहे जाते हैं।

मानव मे एक-दूसरे के प्रति गहन सौहार्द्र और एकत्व के भाव की जितनी प्रबल वृत्ति दिखाई देती है वह पशुओ मे नही होती। उनमे हिंसा, क्रोध और द्वेष का भाव प्रबल होता है तथा स्वार्थ पूर्ति ही उनका लक्ष्य रहता है। इसी

1 Pitirim A Sorokin—The Reconstruction of Humanity, p 69

2 वर निरमपातो व वर प्राण वियोगजनम्
न पुन क्षणमात्रमि भक्ति नारामृते सुखम ॥ —पदम० पाताल० 97 35

3 " That which distinguishes man from the animal is the fact that he expresses himself not it his claims, in his needs, but in his sacrifice, which has the creative energy that builds his home, his society, his civilisation "

—Rabindranath Tagore—Religion of man, p 232

लिए स्वार्थी और सकीर्ण एव क्रूर वृत्तियो के कारण उसे पशु कहा जाता है।

पशु और मानव मे इन विशेषताओ के कारण *अन्तर होने का यह अर्थ* नही है कि मानव पशु से घृणा करता है अथवा उसके हृदय मे कोई सहानुभूति का भाव उसके प्रति नही है। प्राणी होने के नाते दोनो समान हैं, किन्तु दोनो के कर्म, व्यवहार, अनुभूति और निर्णय-बुद्धि मे अन्तर है। अरस्तू मानव को एक सामाजिक पशु मानता है।[1] वह एक समाज का निर्माण कर मेधा का विकास करता हुआ मनोमालिन्य का त्याग कर पवित्रता और दिव्यता को प्राप्त करता है।[2] इस प्रकार मानव का स्वभाव पशु से भिन्न है। पशु विच्छिन्न होकर जीवन व्यतीत करता है, मानव जीवन को समाज की स्थापना द्वारा समष्टिगत रूप देता है तथा उसमे एकत्व और अखण्डता स्थापित करता है। वह आत्मज्ञान मे समर्थ होने के कारण अपना शरीर तथा मन शुद्ध करने का प्रयत्न करता है और जीवन के सत्य को जानकर शिव और सुन्दर की उपलब्धि से सफलता प्राप्त करता है। पशु पाशविक-वृत्तियो, इन्द्रिय-सुख और मनो-*विकारो मे लिप्त रहने के कारण इन सब कार्यों मे असमर्थ है। इस प्रकार* मनुष्य में सभ्यता, समाज के विकास और निर्माण का गुण उसको पशु से अलग कर देता है। पशु में विध्वसात्मक प्रवृत्ति रहती है, यही पाशविक-वृत्तियो का मूल है। मनुष्य में जब ऐसी प्रवृत्तिया आ जाती हैं तो वह भी हिंसक पशु के समान बन जाता है। वह मानव से दानव रूप ग्रहण कर लेता है। यही रूप और भाव की विकृति निंदनीय और घृणित समझी जाती है। इसलिए जीवन के उच्च लक्ष्यों की पूर्ति के लिए हमें आत्म परिष्कार और भावोन्नयन करना पडेगा। इसी से मनुष्य में स्थित पशुत्व का दमन हो सकेगा।

वैयक्तिक चेतना का सास्कृतिक अथवा आध्यात्मिक परिष्कार किस प्रकार हो, इस सम्बन्ध मे विचारको ने गम्भीर चिन्तन किया है। अन्त परिष्कार ही बाह्य-परिष्कार में सहायक होता है। यही मानव-जीवन की समस्याओ का समाधान करता है और मानव को यथार्थ मे मानव बनाने मे सहायक होता है। *मानव समाज-निर्माण द्वारा अपने कल्याण के लिए उपयुक्त परिस्थितियो* का निर्माण कर लेता है किन्तु कोई विवेकहीन प्राणी ऐसा नही कर सकता। मानव का यही प्रयत्न उसके जीवन को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से आप्लावित करता है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी मानव गुण के सम्बन्ध मे लिखते हैं '' *इतिहास विधाता का स्पष्ट इगित इसी ओर है कि मनुष्य मे जो मनुष्यता*

1 H H Joachim (Ed)— Nichomachean Ethics, Introduction —p 2

2 Jacques Maritain—'True Humanism', p 2

है, जो उसे पशु से अलग कर देती है, वही आराध्य है। क्या साहित्य और क्या राजनीति, सबका एकमात्र लक्ष्य इसी मनुष्यता की सर्वांगीण उन्नति है। '[1]

मानव की मनुष्यता ही उसको श्रेष्ठ बनाती है जिनका मूल मानवीय गुणो के अभिवर्द्धन मे है। टेरेंस नामक कवि ने दो व्यक्तियो के वार्तालाप मे एक पात्र से कहलवाया है कि मैं मानव हूँ और कोई भी मानवीय गुण मुझ से विलग नही है, वे सब कुछ मुझ म विद्यमान हैं।[2] इस कथन का स्पष्टीकरण करते हुए कवि टेरेंस ने आग लिखा है कि मानवीय गुणो मे व्यवहार, सहानुभूति, दया, सहायता, दानशीलता आदि महत्वपूर्ण हैं। मानव और नैतिकता का विश्लषण करते हुए मानव को मनुष्यता प्रदान करने वाले गुणो को हम पहले स्पष्ट कर चुके हैं जिसमे अहिंसा, शील, सज्जनता, भूत दया और प्राणिमात्र की कल्याण कामना पर बल दिया गया है। जैन और बौद्ध धर्म का अहिंसा-सिद्धात इसीलिए महत्वपूर्ण और लोकप्रिय हुआ कि उसमे भूत-दया प्रेरित सार्वभौमिक-कल्याण की भावना का प्रसार है।

अरस्तू मानव की अन्य प्राणियो मे श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए उसे बौद्धिक प्राणी ही नही मानते अपितु मानवरूप प्राप्त करने वाला वह श्रेष्ठ जीव भी बताते हैं जिसे ईश्वर-अनुग्रह से मनुष्यता के गुण की विभूति प्रदान की गई है।[3] मानव मे अनेक अन्त बाह्य गुणो का समन्वय है और वह उनका सदुपयोग भी करता है। काट का कथन है कि सच्चे मानव-अस्तित्व का यह मूलभूत तथ्य है कि वह भौतिक की पूर्ण पराकाष्ठा का केवल एक जीव ही नही है अपितु उसकी परिपूर्णता चिन्तन-अनुभूति से उद्भूत कल्याणकारी भावो को विशिष्ट रूप प्रदान करने मे है।[4] मानव सद्गुण और कल्याण-प्रसार मे ईश्वरीय माध्यम है।

मानव और पशु मे अनुशासन और नियम पालन की दृष्टि से भी अतर है। पशु मे असयम एव क्रोध से हिंसा जागृत होकर उसे अनुशासनहीन तथा उच्छृखल बना देती है और उसके नियमहीन जीवन मे सृजनात्मकता, विनम्रता, सौहार्द्र, एकत्व, सामाजिकता का अभाव होने से प्रज्ञा का विकास नही होता।

1 आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—अशोक के फूल, पृ० 38

2 "I am a man, I hold that nothing that is human is alien to me"

—Behard Miall (Tr)—The Myth of Modernity, p 76

3 " And, if this be so, we shall then among the living-blessed who have and will have the things specified, but blessed as Man "

—D P Chase (Ed)—The Nichomachean Ethics p 20

4 P A Schilpp—The Philosophy of Ernst Cassirer p 461

मानव का गौरव और समृद्ध-व्यक्तित्व उसके आचरण की श्रेष्ठता मे है तथा *नियमवद्ध, अनुशासित एव सयमपूर्ण जीवन मे है*।[1] *मानव समाज-हितमे* अपने स्वार्थों को अर्पित कर देता है। मानव-कल्याण के इच्छुक इसीलिए पशु-जीवन और वातावरण से मानव को सचेत करते रहते हैं।[2] मानव इसीलिए मानव कहलाता है क्योंकि उसमे आत्म-सयम की योग्यता और सामर्थ्य है[3] और इसीलिए उसे जीव जगत का सौन्दर्य कहा गया है। वास्तव मे पाशविक-वृत्तियो का शमन दमन और मनुष्यत्व के गुणो का सवर्द्धन ही उसे पशु से भिन्न सिद्ध करता है।

मानव और स्वतन्त्रता

सुखपूर्वक जीने की कामना प्रत्येक मनुष्य करता है और यह उसकी नैसर्गिक एव मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति है। इस भावना मे, जीवन अर्थात् अपने अस्तित्व की रक्षा करना और सुख अर्थात् जीवन से सम्बन्धित अभिलाषाओ और कामनाओ की पूर्ति, दो प्रमुख तत्व हैं।[4] मानव जीवन का सघर्ष और प्रयत्न इन्ही के लिए है। इनकी पूर्ति के लिए वह 'स्व' का विस्तार करता है। इस 'स्व' के विस्तार ने विश्व मे पारस्परिक सघर्षों को जन्म दिया। सघर्ष द्वारा वह दूसरे का दमन करके तथा उसका अधिकार छीनकर अपनी इच्छा पूर्ति करता है[5] और इसी भाव ने मानव मानव मे वैषम्य की दीवारें खडी कर दी है। मानव-कल्याण अथवा सार्वभौमिक सौहार्द्र के विचार से यह समस्या बहुत गम्भीर और विचारणीय है। जिस समाज मे परस्पर एक-दूसरे के अधिकार को अपहृत करने की भावना हो वहाँ सुख शान्ति सभव नही है। यह 'स्व' तथा 'पर' का कृत्रिम भेद एक-दूसरे के प्रति अन्याय और शत्रुता के लिए प्ररित करता है।

1 " . The form and discipline of life, so important for the humanist, which integrates desires to produce a well-rounded and harmonious personality, is erected by the practical reason in to the supreme moral principle governing human action "

—Ralph Barton Perry—The Humanity of Man, p 18

2 " Morality requires discipline and must refuse therefore to surrender unconditionally to desire The fact that morality *opposed not to desire as such but only to looseness of* desire "

—Ralph Barton Perry—The Humanity of Man, p 18-19

3 M K Gandhi 'In Search of the Supreme' (II), p 216

4 डा० देवराज—संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० 160

5 वही, पृ० 161

प्रसिद्ध इतिहासकार टायनबी का कथन है कि मनुष्य की सबसे बड़ी समस्या है उसका स्वकेन्द्रित होना।[1] वह जिसे अपने अनुकूल समझता है उसे निजी पक्ष मे रखता है और प्रतिकूल को शत्रु मानता है, उससे द्वेष और घृणा करता है तथा उसके विनाश के लिए प्रयत्नशील रहता है।

मानव-हृदय मे दूसरे को पराधीन बनाकर स्वतन्त्रता हनन की लालसा के तीन कारण हो सकते हैं—1 अभाव, 2 अन्याय और 3 अज्ञान। अभाव के मूल मे कुछ प्राकृतिक कारणों के साथ साथ सहज स्वार्थवृत्ति, कामनाओ की वृद्धि, अहकार और मिथ्या अस्मिता भी उसके कारण हो सकते हैं। अन्याय मे स्वार्थ-वृत्ति और मानव के अह की अतृप्त भावना होती है। अज्ञान मे भ्रान्ति और सकीर्णता रहती है। भावनाओ के इस भेद से 'स्व' और 'पर' मानव को मानव का शत्रु बना देता है। श्री बर्ट्रेण्ड रसेल कहते हैं—"मानव शिवत्व की भावना से मगल-प्रसार भी कर सकता है और अमगल की भावना से विनाश भी।"[2] मनुष्य ने भौतिक साधनो मे बाह्य प्रकृति पर तो विजय प्राप्त कर ली है, किन्तु आन्तरिक प्रकृति को वश में नही कर सका। इसलिए विकृत स्वभाव के कारण, बुद्धिमान होता हुआ भी पाशविक कार्यों मे लिप्त रहता है।[3] ऐसी स्थिति मे मानव-जीवन मे स्वातन्त्र्य, गौरव, करुणा, सौन्दर्य और सुख शब्द निरर्थक हैं, असगति से भरे हुए हैं। इनमें अर्थ की प्रतिष्ठा तभी हो सकती है जब समाज का वैषम्य दूर हो जाए और वर्ग-भेद मिट जाए।[4]

यदि व्यक्ति अपने व्यक्तित्व तक ही सीमित रहता है तथा अपने स्वार्थ और कामनापूर्ति मे निमग्न रहता है तो वह जगली, सकीर्ण मनोवृत्ति का एक ऐसा व्यक्ति है जिसमें आत्म-नियत्रण और आत्म-ज्योति का नितान्त अभाव है।[5] ऐसा व्यक्ति लोलुपता के कारण दूसरो को बन्धन मे रखकर तथा सज्जनता की सीमाओ का अतिक्रमण कर अपने अस्तित्व के रक्षण में ही रत रहता है। वह दासता और स्वामित्व की परम्परा चलाकर मानव गौरव का ह्रास करता है। वास्तव में हितकर एव उचित यही है कि व्यक्ति मानव होने के नाते अपने और दूसरो के अधिकारो का समुचित आदर ही न करे वरन् उसका विकास भी करे। रूसो का मत है कि मानव स्वतन्त्र होकर भी प्रत्येक स्थान पर बन्धनो मे है।[6] उसकी स्वतन्त्रता समाज की मर्यादा की सीमा का अतिक्रमण नही कर

1 इन्द्रचन्द्र शास्त्री—मानव और धर्म, पृ० 14
2 Bertrand Russell—The Authority and Individual, p 84
3 Ibid—p 122—125
4 डा० धर्मवीर भारती—मानव मूल्य और साहित्य, पृ० 28
5 Rabindranath Tagore—'Religion of Man', p 233
6 "Man is born free, and everywhere he is in chains"
William Ebenstein—Greek Political Thinkers—p 419

सकती । वह नैसर्गिक रूप से अच्छा है, सद्गुण युक्त है, किन्तु प्रकृति ने उसे कुछ सीमाओं में नियन्त्रित कर दिया है ।[1]

व्यक्ति उस समय अपने को सुखी अनुभव करता है जब उसकी क्रियाएँ उस समाज के लिए, जिसका वह अंग है, ग्राह्य हों और उसके कष्ट का सबसे बड़ा कारण उसके व्यक्तित्व की वह चीजें हैं जिन्हें समाज स्वीकार नहीं करता ।[2] किन्तु इतना होने पर भी समाज में कभी कभी विद्रोह और क्रांति हो जाती है । मनुष्य समाज के नियमों और मर्यादाओं को तोड़कर स्वतन्त्र होने का उद्घोष करता है । विद्रोही तो अपनी स्वतन्त्रता ही चाहता है, किन्तु क्रांतिकारी समाज को अपने अनुरूप ढालना चाहता है । विद्रोही को भी सामाजिक होना चाहिए । उसे निषेधात्मक कार्य नहीं करने चाहिएं क्योंकि उच्छृंखल कार्यों तथा विवेकहीन विचारों से समाज का कल्याण नहीं होता । सामाजिक विद्रोही अन्यायपूर्ण एवं अवांछनीय प्रतिबन्धों से मानव की स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करता है । इसके पीछे समाज की सहानुभूति होती है । यह मानव समाज की व्यवस्था के लिए उपलब्ध अवसरों और साधनों का न्यायपूर्ण पुनर्वितरण करता है । रसेल इस बात से सहमत है कि कभी-कभी ऐसी परिस्थिति आ जाती है जबकि वैधानिक सीमाओं का उल्लंघन अपराध नहीं कहा जा सकता और क्रांति का औचित्य सिद्ध होता है ।[3] जब मानव अन्यायी के विरुद्ध विद्रोह करते हैं तो इसका दायित्व उन पर नहीं होता ।[4] मानव-जाति का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जैसे-जैसे समाज का विकास होता गया वैसे-वैसे मानव-जीवन और समाज-संहिता के मूल्यों में परिवर्तन हुआ है और इन सब के पीछे मानव की स्वतन्त्रता की भावना है ।

मानव-निर्मित नियम तथा उनके मूल्य परिवर्तनशील हैं । राज्य मानव की स्वतन्त्रता तथा जीवन-व्यवस्था को नियमबद्ध कर देता है और नैतिकता मानव को कर्त्तव्य पाश में बाँध देती है ।[5] पशु-जीवन में वन्य-नियमों के अनुसार नियमों

1 Jacques Maritain—True Humanism, p. 15
2 डा० देवराज—संस्कृति का दार्शनिक विवेचन पृ० 187
3 " I do not deny that there are situations in which law-breaking becomes a duty It is a duty when a man profoundly believes that it would be a sin to obey "
—Bertrand Russell—Authority and Individual—p 107
4 I think it must also be admitted that there are cases in which revolution are justifiable There are cases where the legal government is so bad that is worthwhile to over it by force in spite of the risk of anarchy that is involved,',
—Bertrand Russell—Authority and Indtvidul, p 119
5 Pitirim A Sorokin—'The Reconstruction of Humanity,' p 111

का अतिक्रमण सम्भव है क्योकि उसमे सृजन तथा भावी कल्याण की चिन्ता न होने के कारण सरक्षण की वह गहन अनुभूति नही होती जो मानव मे होती है।[1] मनुष्य के सामने जब श्रेष्ठतर व्यवस्था का चित्र आता है तो उससे आकृष्ट होकर वह पुरानी व्यवस्था के प्रति आस्थाहीन हो जाता है और यह मानव-स्वतत्रता को एक नया रूप देती है। इसलिए ससार की क्रातियो के मूल मे परम्परागत व्यवस्था के प्रति असन्तोष और अविश्वास देखा गया है।

स्वतन्त्रता की सीमा का अतिक्रमण करने मे सिद्धातहीनता, अवसरवादिता, प्रतियोगिता और शोषण की प्रवृत्तियाँ कार्य करती हैं।[2] रसेल कहते हैं, 'हम दूसरे के अधिकारो का अपहरण करने मे व्यस्त रहकर अपने समय तथा शक्ति का अपव्यय करते है जिससे जीवन को उदात्त बनाने वाले भावो की उपेक्षा से हृदय का स्रोत निरन्तर सूखता जा रहा है।'[3] वास्तव मे मानव-व्यक्तित्व उच्चतम कोटि के मूल्यो का अधिष्ठान है। वह केवल भौतिक परिवेश से उत्पन्न उत्तेजको के प्रति प्रतिक्रियाओ की परम्परा नही है वरन् उसकी महत्ता उन मूल्यो तथा आदर्शों के उस जगत के प्रति प्रतिक्रिया करने मे है जो उमके ज्ञान द्वारा नैतिक और सौन्दर्यमूलक के रूप मे निर्मित किए जाते हैं।[4] मनुष्य मे दूसरो के अधिकारो के प्रति आदर और सम्मान की भावना होनी चाहिए।

एक श्रेष्ठ समाज का निर्माण करने के लिए हमे ऐसे ज्ञान और तत्वो की खोज करनी चाहिए जो व्यक्तिगत सभावनाओ को सामाजिक विरोध के बिना विकसित करें तथा जिससे एक मानव दूसरे मानव के हितार्थ कार्य करे। वास्तव मे कोई समाज उसी सीमा तक अच्छा है जहाँ तक वह मानव-जाति की एकता मे सहायक है।[5] समाज ही एक ऐसा सगठन है जो राज्य के बाद व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की सीमाओ का निर्धारण करता है। मनुष्य समाज के बिना नही रह सकता और न वह उसके बिना व्यक्तित्व का विकास कर सकता है। प्लेटो और अरस्तू ने आदर्श राज्य और समाज वही बतलाया है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को समान रूप से व्यक्तित्व विकास का, जिसमे दूसरे से विरोध अथवा सघर्ष न हो, समुचित अवसर प्राप्त हो।[6] इसीलिए उसे एक सामाजिक एव राजनैतिक प्राणी माना गया है। पशुओ का कोई नियन्त्रित और अनुशासित समाज नही होता, इसीलिए उनमे एक दूसरे के प्रति घृणा और द्वेष की भावना

1. Pitirim A Sorokin—The Reconstruction of Humanity, p 113
2 डा० देवराज—संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० 387
3 Bertrand Russell—'Authority and Individual,' p 61-62
4 डा० देवराज—संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० 385
5 R Osborn—'Humanism and Moral Theory,' p 68
6 S Radhakrishnan and P. T Raju (Eds)—The Concept of Man—p 320

रहती है। किन्तु मनुष्य की प्रकृति इससे भिन्न है, वह शारीरिक शक्ति तथा पशु-वृत्ति से अपना विकास नही कर सकता।[1] उसका आतरिक विकास ही दूसरे के लिए सर्वश्रेष्ठ है। वास्तव मे व्यक्तिवाद का उत्तम स्वरूप अहकारमय न होकर विश्वजनीन होता है।[2] इस प्रकार मनुष्य को जीवन मे राजनैतिक सामाजिक, नैतिक समन्वय के साथ ही आदर्श जीवन का निर्माण करना है। मनुष्य को अपने विश्वरूप का, समन्वयात्मक स्वरूप का निर्माण करने के लिए अपनी वृत्तियो, भावनाओ और कामनाओ का नियन्त्रण करके उन्हे उचित दिशा की ओर उन्मुख करना नितात आवश्यक है।[3] साम्यवाद वैयक्तिक अत्याचार का कारण आर्थिक वैषम्य मानता है, जिससे वह दूसरो पर अत्याचार करके अपने अहकार का पोषण करता है। मानव जीवन मे आर्थिक बन्धन उसकी स्वतन्त्रता का अपहरण ही नही करता, उसके व्यक्तित्व के विकास पर प्रतिबन्ध भी लगा देता है।

मनुष्य जब तक स्वय अपने मे एकता स्थापित नही करेगा, पारस्परिक सघर्ष भी समाप्त नही होगा। अत हमे ऐसा वातावरण निर्मित करना चाहिए जिससे मनुष्य अपनी स्वभावगत वृत्तियो मे सामजस्य स्थापित कर सके।[4] इसके लिए सर्वप्रथम मनुष्य अपने स्वभाव को निर्मल बना कर अपने 'स्व' का सस्कार एव परिष्कार करे,[5] क्योकि जब तक मनुष्य की प्रकृति विकृति मुक्त नही हो जाती तब तक सघर्ष भी समाप्त नही होगा। रसेल मनुष्यो मे पारस्परिक सहयोग के अस्तित्व को एक ऐसा अनिवार्य तत्व मानता है जिसके अभाव मे मानवी प्रसन्नता, स्वतन्त्रता और विकास सम्भव नही और यह मनुष्यो के ऐक्य पर निर्भर करता है।[6] टैगोर कहते हैं कि इस प्रकार ही मनुष्य यह स्वरूप ग्रहण कर सकता है और दूसरों से सामजस्य के लिए यह आवश्यक भी है।[7]

मनुष्य को दूसरे पर शासन करने से पहले अपने ऊपर शासन करना चाहिए, साथ ही प्रत्येक मनुष्य को दूसरो के प्रति कर्तव्य पालन के लिए

1 S Radhakrihnan and P T Raju (Eds)—The Concept of Man—p 348
2 Ibid—p 371
3 Ibid—p 375
4 Bertrand Russell—'New Hopes for a Changing World,' p 19-20
5 The Complete Works of Swami Vivekanand—vol VI—p 87
6 Bertrand Russell—'New Hopes for a Changing World—p 17
7 Rabindranath Tagore—'Towards Universal Man,' p 323

तत्पर ही नहीं रहना चाहिए वरन् उसके प्रति आदर भाव भी रखना चाहिए। जर्मन दार्शनिक काट कहते हैं—"इस विश्व में सर्वश्रेष्ठ अच्छाई क्या है ? यह पूर्ण ससार का लक्ष्य है, ऐसा ससार, जिसम समस्त प्राणी सुखी हों और इसके पात्र भी हों।[1] वास्तव में किसी गुण अथवा आनन्द की प्राप्ति के लिए मानव को इसका पात्र भी होना चाहिए। इस विषय में जहाँ व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य का महत्व है, वहाँ दूसरे के स्वातन्त्र्य का भी ध्यान रखना होगा।[2] सभी मनुष्य अपना चरम विकास चाहते हैं। प्राकृत युग में यह सम्भव था किन्तु राजतन्त्र ने इस उत्प्रेरणा का मार्ग अवरुद्ध कर दिया। रसेल के अनुसार आदिमयुग में वन्य एव बर्बर मानव के जीवन को अनुशासित करने वाले नियम इतनी प्रचुर मात्रा में नहीं थे जितने आज सभ्य एव सुसस्कृत मानव के लिए हैं।[3] रसेल बार बार वैयक्तिक उत्प्रेरणा पर बल देते हैं जिससे योग्य व्यक्ति अपने योग्य स्थान को प्राप्त कर ले। वैयक्तिक उत्प्रेरणा की स्वतन्त्रता से ही सुन्दर ससार का निर्माण हो सकता है,[4] किन्तु उसमे अपने साथियो की उपेक्षा भी नहीं की गई है क्योंकि स्वतन्त्रता चाहने वाले को नई दृष्टि तभी मिलेगी जब वह सबके साथ मिलकर चलेगा।[5] मानव को यह तर्क शक्ति, विवेक और स्वतन्त्र इच्छा मिली है पशु को नहीं क्योंकि वह गुण-दोष, अच्छाई-

1 "What constitutes the supreme Good ? The supreme created good is the most perfect world, that is a world in which all rational being are happy and are worthy of happiness"
—Immanuel Kant—Lactures in Ethics—p 6

2 Paul Ramsey 'Nine Modern Moralist,' p 112

3 Bertrard Russell—'Authority and Individual,,—p 60

4 But if this possibity (human well being) is to be realised, there must be freedom of initiative in all ways not positively harmful, and encouregement of those forms of initiative that enrich the life of man We shall not create a good world by trying to make men tame and timid, but by encouraging them to be bold and adventurous and fearles except in inflicting injuries upon their fellow men"
—Bertrand Russell—Authority and Individual—p 124

5 "United with his fellow men by the strongest of all ties, the tie of a common doom, the free man finds that a new vision is with him always, shedding over our daily task the light of love "
—Egner and Denonn (Eds)—The Basic Writings of Bertrand Russell—(A Free Man's Worship)—p 72

बुराई का निर्णय नही कर सकता। स्वतन्त्र-अभिव्यक्ति की क्षमता मनुष्य मे ही है और वह अपने उच्च-स्वभाव से उच्चतम विकास की प्राप्ति कर सकता है किन्तु निकृष्ट स्वभाव और वृत्ति के कारण पशु से भी नीचे गिर जाता है।

मनुष्य के लिए अपेक्षित है कि वह अपने व्यक्तित्व तथा आचरण के लिए ऐसे उचित नियम खोजे जो उसके अनुरूप हो। इन्हें वह अपने अन्दर से ही उपलब्ध कर सकता है तथा अपनी स्वतन्त्र इच्छा के साथ इनका सामजस्य कर सकता है। प्रो० अर्नेस्ट कैजिरर कहते हैं, 'इस कार्य के लिए उसे ऐसे समाज की आवश्यकता है जिसके आदर्शो मे वह आन्तरिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर सके' और परम्परागत सामाजिक-मूल्यो के सम्बन्ध में स्वतन्त्र निर्णय दे सके।[1] ये उपलब्धिया उसके जीवन को पूर्णता और व्यक्तित्व को व्यापकता प्रदान करेंगी। जाक मारिता इसका विश्लेषण करते हुए कहते हैं कि व्यक्ति आध्यात्मिक स्वभाव और स्वतन्त्र निर्णय का योग है जिसमे कोई हस्तक्षेप नही कर सकता। ऐसे स्वातन्त्र्य का ईश्वर भी सम्मान करता है।[2]

मानव का सच्चा गौरव इसी म है कि वह दूसरो का शोषण न करे और अनुचित स्वार्थों की पूर्ति न करे। मानवीय विकृतियों को दूर करने के लिए अस्मिता, गौरव और सामाजिकता के मापदण्ड बदलने होगे। अहकारवृत्ति मानवीय दु खो का बडा कारण रही है। इससे प्रभावित होकर एक मानव ने दसरे मानव को, एक राज्य ने दूसरे राज्य को और एक समाज ने दूसरे समाज को अपना शत्रु बनाया है। जब यह अहकारवृत्ति धर्म के क्षेत्र मे आई तो उसने धर्म और मानव-स्वतन्त्रता का गला घोट दिया। मूल्याकन का आधार ऐसा तत्व रखना होगा जो देश-काल की सीमा से परे हो, जिसकी पूर्ति के लिए दूसरे का शोषण न करना पडे प्रत्युत् जिसका परिणाम सबके लिए मंगलमय हो। मानव व्यवहार की आधारभूत शक्ति, स्वतन्त्रता का आध्यात्मिक रूप है जो *मनुष्य के हृदय मे विद्यमान है। स्वतन्त्रता की यह भावना आत्म ज्ञान से* सम्बन्धित है। मनुष्य मान्य एव नैतिक धारणाओ मे अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करता है।[3]

मानव की सफलता का रहस्य आशावाद मे तथा उज्ज्वल भविष्य के मूल्यो की स्थापना मे है। हम उदारचेता बनना चाहिए।[4] रसेल व्यक्ति के

1 P A Schilpp—'The Philosophy of Ernst Cassirer" p 459
2 Jacques Maritain—'True Humaism,' p 2
3 Erwin D Caxham—'New Frontiers for freedom,' p 9
4 "It is only necessery to open the doors of our heart aup mind to let the imprisoned demons escape and the beauty of the world take place,'
—Bertrand Russell—New Hopes for a Changing World —p 17

लिए नैतिकता के दोनो रूपो, वैयक्तिक एव नागरिक के महत्व को समान मानते हैं। एक के ग्रभाव मे दूसरा ग्रपूर्ण है, तथा दोनो में उचित सामजस्य न होने से जीवन का सर्वांगीण विकास सम्भव नही है।[1] सभी के द्वारा अन्य दूसरों के प्रति सद्भावना, ग्रादर ग्रौर कर्तव्य-भावना रखने से मानव के जीवन का कटु-सघर्ष, मगलमय रूप मे परिवर्तित हो जाएगा।

मानव-मूल्य

मानव-जीवन के विभिन्न पक्षो को दृष्टिगत रखत हुए मानव-मूल्यों की स्थापना की जाती है ग्रौर इन्हे मानव व्यवहार तथा समाज-कल्याण की कसौटी माना जाता है। वास्तव में यह मूल्याकन मानव-व्यवहार नामक व्यापक वर्ग का एक ग्रग है। समस्त मानव-व्यवहार मूल्याकन स ग्रनुप्राणित हैं।[2] हम सभी वस्तुग्रों को मानव से ग्रलग करके उन पर विचार नही कर सकते वरन् मानव-जीवन ग्रौर व्यवहार के सन्दर्भ मे ही प्रत्यक वस्तु का मूल्याकन करते हैं।[3] प्रश्न उठता है कि वे मूल्य है क्या ? इस विषय मे यही कह सकते हैं कि वस्तु का मूल्य यही है कि मानव उसकी कामना करता है। परन्तु मनुष्य की श्रेष्ठता इसी मे है कि वह सामाजिक सीमाग्रो को ध्यान मे रखकर ही ग्रपनी कामना-पूर्ति करे।

चरम मूल्य वही है जिसकी कामना स्वय उस मूल्य के लिए की जाती है ग्रौर मनुष्य सज्ञान प्राणी होने के नाते यह कामना करता है कि उसकी ग्रावश्यकताएँ निर्विघ्न पूरी हो। इस सम्बन्ध में मानव-सभ्यता उसकी सहायता करती है। मानव, सभ्यता द्वारा ग्रपने परिवेश को इस प्रकार नियन्त्रित एव परिवर्तित करता है कि वह समाज के ग्रधिकाधिक नर-नारियो के लिए स्वतन्त्रतापूर्वक रहने ग्रौर उचित ढग से ग्रावश्यकताग्रो की पूर्ति के लिए स्थितियाँ प्रस्तुत कर सके।[4] मनुष्य स्वाभाविक रूप से समूह ग्रौर समाज मे रहता है। इससे ग्रलग रहकर वह ग्रपना विकास नही कर सकता। विभेद ग्रौर प्रतिद्वद्विता की ही भाँति सहयोग ग्रौर ग्रास्था मानव-जीवन के विकास में सहायक होती हैं[5] ग्रत इन दृष्टियो से भी मानव-मूल्यों पर विचार करना

1 "Without civic morality communities perish, without personal morality their survial has no value"
—Bertrand Russell—Authority and Individual—p 111

2 डा॰ देवराज—सस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ॰ 81

3 Rudolf Euchen—Main Currents of Modern Thought, p 76

4 डा॰ देवराज—सस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ॰ 160

5 Hector Hawton (Ed.)—Resson in Action, p 24

आवश्यक है। यह उसका एक आधार है। समाज और समूह में रहकर मनुष्य जहाँ पारस्परिक हित करते है वहाँ एक-दूसरे के हितों को क्षत भी करते हैं। साथ ही एक तथ्य और भी विचारणीय है कि समाज में कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो उचित रूप से अपनी सहायता भी नही कर सकते, जबकि अन्य व्यक्ति शारीरिक, नैतिक एव बौद्धिक दृष्टि से इतने श्रेष्ठ होते है कि न केवल अपनी ही समस्याएं सुलभा सकते हैं वरन् दूसरो की सहायता करने में समर्थ होते हैं। यह बात समाज में भेद उत्पन्न करती है और मानव-मूल्यो को विचारणीय बना देती है क्योकि इनका सम्बन्ध मानव-व्यवहार से है। इस प्रकार मूल्यो की बात विवादास्पद बन जाती है कि किन मूल्यो को अधिक महत्व दिया जाए और किन को कम। मानव व्यवहार में एक ओर नैतिक व्यवस्था है और दूसरी ओर समाज-कल्याण।[1] इसलिए मानव-मूल्यो के औचित्य के लिए व्यष्टिगत तथा समष्टिगत दोनो ही पक्षो मे सामजस्य की आवश्यकता है।

मानव-मूल्यो का चिन्तन करते समय एक बात पर और ध्यान देना आवश्यक है कि अपनी परिस्थितियो, इतिहास क्रम और काल-प्रवाह के संदर्भ मे मनुष्य की स्थिति एव महत्व क्या है।[2] ये मूल्य सभ्यता, सस्कृति, धर्म, नैतिकता, राजनीति, आर्थिक स्थिति आदि के सदर्भ मे देखे जाते हैं और सब अपनी अपनी विचारधाराओ पर बल देते हैं। नास्तिक लोग मानव के भौतिक कल्याण को ही मूल्यो का आधार मानते हैं। मार्क्स सभी समस्याओ के मूल मे अर्थ को मानते हैं। उनके अनुसार वर्ग भेद मनुष्यो को खण्डित[3] करता है, इसलिए उसमे प्रगति कही जाने वाली क्राति को प्राधान्य दिया गया है। आस्तिक विचारधारा किसी अलौकिक सत्ता को मानव-मूल्याकन का आधार बनाती है जिसमे आचार-विचार की दृढता और धर्म का महत्व है। समस्त मध्यकाल मे मूल्यो का स्रोत और नियन्ता किसी मानवोपरि अलौकिक सत्ता को माना जाता था और मनुष्य की एकमात्र सार्थकता यही थी कि वह अधिक से अधिक उस सत्ता से तादात्म्य स्थापित करने की चेष्टा करे।[4] यदि एक व्यक्ति ईश्वर का सच्चा ज्ञान प्राप्त कर लेता है तो उसे ज्ञान हो जाता है कि ईश्वर उससे क्या चाहता है, उसकी श्रेष्ठता किसमें है[5]। किन्तु क्या मानव स्वय को समझे बिना ईश्वर को समझ सकता है, यह एक समस्या है। मनुष्य

1 A Campbell Garnett—The Moral Nature of Man—p 265
2 डा० धर्मवीर भारती—मानव मूल्य और साहित्य (भूमिका)
3 डा० देवराज—सस्कृति का दार्शनीय विवेचन, पृ० 151, 156
4. डा० धर्मवीर भारती—भूमिका
5 Floy Ross—The Meaning of life in Hinduism and Buddhism —p 154

का जन्म समाज में होता है अत उसी परिवेश में अपने स्थान तथा कर्तव्य को पहचानना उसका सर्वप्रथम उत्तरदायित्व है, तभी वह उचित मूल्यांकन में दूसरो की भी सहायता कर सकता है और मानव मूल्यो की स्थापना के प्रति दृष्टिकोण बना सकता है।[1] समाज और मूल्यो का माध्यम मनुष्य है और वही समस्त सस्कृतियो की शक्ति का स्रोत है, अत उसका मूल्यांकन समाज और सस्कृति के विकास के आधार पर ही होना चाहिए।[2] अस्तित्ववादी मानव को मूल्यांकन की दृष्टि से सर्वाधिक सौभाग्यशाली समझते हैं, उसके व्यक्तित्व का, समाज और सृष्टि, स्वभाव, चिन्तन, आदर्श की दृष्टि से एक विशिष्ट स्थान होता है।[3]

इस प्रकार समय की प्रगति के अनुसार मानव मूल्यांकन का स्वरूप तथा उसके माध्यम बदलते चले गए। आधुनिक-युग के साथ साथ मानवोपरि सत्ता का अब मूल्य न होकर अस्तित्ववाद, व्यक्तिवाद, भौतिकवाद जैसे मूल्यांकन के आधारो का जन्म हुआ। मनुष्य की गरिमा का नया उदय हुआ और यह माना जाने लगा कि मनुष्य अपने में स्वत सार्थक और मूल्यवान है—वह आन्तरिक शक्तियों से सम्पन्न, चेतना स्तर पर अपनी नियति-निर्माण के लिए स्वय निर्णय कर लेने वाला प्राणी है।[4] इस सृष्टि का केन्द्र मनुष्य है। यह भावना आत्म ज्ञान के प्रवाह में बीच-बीच में मध्यकालीन साधु-सन्तो में भी कभी-कभी उदित होती रही है[5] किन्तु उसमें ईश्वर और आध्यात्मिकता निरपेक्ष चिन्तन नही था और न यह विचारधारा जिसमें कि मानव को मूल्यांकन का आधार और केन्द्र माना गया हो,[6] आधुनिक युग से पहले सर्वमान्य हो पाई थी। आधुनिक युग मे इसके साथ ही जहाँ कुछ सिद्धान्तो के स्तर पर मनुष्य की सार्वभौमिक सत्ता स्थापित हुई[7] वही भौतिक स्तर पर ऐसी परिस्थितियाँ और व्यवस्थाएँ विकसित होती गई जिन्होंने मानव की सार्थकता, मूल्यवत्ता मे अविश्वास उत्पन्न कर मानव का अवमूल्यन किया। अपनी नियति के, इतिहास-निर्माण के सूत्र, सास्कृतिक सकट से मनुष्यो के हाथ से छूट गए और वह निरर्थकता की ओर बढने लगा।[8] यह सकट आर्थिक अथवा

1 Roy H Ross—The Meaning of life in Hinduism and Buddhism, p 148
2 P A Schilpp—The Philosophy of Ernst Cassirer—p 462
3 Hanns E Fischer (Ed)—Existentialism and Humanism —p 8
4 Ernst Cassirer—An Essay on Man, p 28
5 डा० धर्मवीर भारती—मानव मूल्य और साहित्य, भूमिका
6 Rudolf Euchen—Main Currents of Modern Thought, p 76
7 Bipin Chandra Pal—The Soul of India, p 20
8 Hector Hawton (Ed)—Reason in Action, p 58

राजनीतिक न होकर जीवन के समस्त पक्षो मे प्रतिफलित होने लगे। इन सब बातो को ध्यान मे रख कर जान डेवी ने सामान्य विश्वास अथवा आस्था के लिए नैतिकता मे भी सत्य की प्रामाणिकता पर बल दिया। इस सत्य के लिए तर्क, सत्य और यथार्थ के प्रति निष्ठा, बौद्धिक सच्चाई, ईर्ष्या, द्वेष, पूर्वाग्रह-मुक्त विचार, सतोष, सहिष्णुता जैसे नैतिक गुण आवश्यक हैं इसीलिए *मानव-मूल्यों का विकास समाज ही करता है, कोई अलौकिक शक्ति नही।*[1] जान डेवी के इस कथन को आधुनिक प्रगतिशील विचारको ने स्थान दिया और मानव को सर्वगुण समृद्ध बताया।[2]

इसी समय से यह ज्ञात हुआ और माना जाने लगा कि अलौकिक शक्ति के प्रति आस्था वस्तुत हमारी मानवीय गरिमा के प्रति गहन सवेदनशीलता का ही दूसरा रूप है, साथ ही मनुष्य के गौरव को प्रतिष्ठित करने और उसकी रक्षा के प्रति हमारी जागरूकता हमारी जाग्रत अन्तरात्मा का प्रमाण है। समाज मे वैषम्य विधि का विधान नही अपितु मानव की स्वय निर्मित परिस्थितियाँ हैं जो समाज को विकलाग कर रही हैं। साथ ही यह तथ्य भी सामने आया कि विवेक अन्तरात्मा के सहायक तत्वो मे सम्भवत सबसे प्रमुख और विश्वसनीय है।[3]

मानव गौरव का अर्थ है कि मनुष्य को स्वतन्त्र, सचेत, दायित्वयुक्त, अपनी नियति और इतिहास का निर्माता माना जाए। इस सिद्धि के लिए विवेक और मनोबल सर्वोपरि हैं किन्तु शुद्ध मानवीय गौरव की प्रतिष्ठा किसी एक व्यक्ति के सुख तक सीमित नही है, यह एक व्यापक सामाजिक तत्व है जिसके लिए व्यापक मानवीय गौरव की स्थापना चाहिए।[4] रसेल कहते हैं कि विवेक-पूर्ण जीवन मे पक्षपात द्वेष, ईर्ष्या नही रहते। जिस एकता की यह कामना करता है वह निस्सीम है, इसीलिए इसके मार्ग मे कोई सीमा रेखा नही होती क्योंकि ज्ञान भेदभाव-रहित होता है।[5] केवल पाशविक और हीन-वृत्तिया ही मानव हृदय को सकुचित तथा सकीर्ण बनाती है और वही सघर्ष से विरत कर मानव को सीमित बना कर उसके गौरव का ह्रास करती हैं। इसलिए मानव-मूल्यो की स्थापना मे एकता और उदारता का होना अनिवार्य है।

मानव मूल्याकन और मानव गरिमा मे कोई छोटा-बडा नही माना जाना चाहिए, यही हम सत्य और यथार्थ के निकट पहुँचाता है। यदि किसी व्यक्ति

1 सर्वपल्ली राधाकृष्णन, डा० शान्तती दरबार (अनु०)—आध्यात्मिक साहचर्य, पृ० 56
2 P A Schilp—The Philosophy of Ernst Cassirer, p 451
3 डा० धर्मवीर भारती—मानव मूल्य और साहित्य, पृ० 21
4 वही, पृ० 117
5 Egner and Denonn (Eds)—The Basic Writings of Bertrand Russell, p 575

विशेष की गरिमा किसी की गरिमा मे बाधक है तो हम सत्य स दूर हैं और मूल्यो की उचित न्यायसगत स्थापना नही हो सकती।[1] मार्क्स ग्रोरिलियस का कथन है, "यद्यपि जीवन परिवर्तनशील है, इसम उतार-चढाव प्रात रहते हैं किन्तु जीवन के मूल्य सार्वभौमिक एव अपरिवर्तनशील हैं। यह तथ्य हम अनुभूति से नही, विवेक बुद्धि या निर्णय-शक्ति स प्राप्त कर सकते हैं क्योकि उचित-अनुचित के निर्णय की शक्ति ही मानव की मूल शक्ति है। इस सम्बन्ध में वे आगे बताते हैं कि निर्णयशक्ति स्वतत्र, स्वाधीन, आत्मनिर्भरतापूर्ण होनी है। मानव को अपना व्यक्तित्व विच्छिन्न नहीं होने देना चाहिए।"[2] नैतिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक आदि इन समस्त धरातलो पर समानता से ही नही बल्कि हम मानवमात्र की नियति से भी अपने को आबद्ध समझें। केवल निजी मुक्ति अथवा मानवीय नियति का अतिक्रमण कर किसी अलौकिक सत्ता के साक्षात्कार द्वारा पूर्णता प्राप्त करने की साधना अन्तरात्मा के क्षरण और सामान्य मानवीय गौरव की उपेक्षा की द्योतक है। मानव की अलौकिक विशेषता एक व्यवस्था से उसकी परिधि का निर्माण करना है।[3] डा० राधाकृष्णन् का मत है कि मानव-प्रगति मानव-कर्म की सार्वभौमिक जाग्रति मे निहित है। वह समष्टि के प्रति समर्पण म अपने को अविच्छिन्न अनुभव करता है, पूर्णता इसी का नाम है। इसीलिए मानव मूल्यो, आदर्शों की खोज और सार्वभौमिक एकता के लिए सघर्ष करता है।[4]

मानव मूल्यों के उन्नयन के लिए नैतिक और सामाजिक प्रगति का आधार हमारे निजी, प्रतिकूल स्वभाव तत्वो के बीच सामजस्य और अन्य लोगो के लिए सहानुभूति स्थापित करता है। हम आन्तरिक ऐक्य की भावना को प्रोत्साहित करना चाहिए[5] अन्यथा मानव-मूल्य विच्छिन्न हो सकत हैं। मानव-सम्बन्धी चरम मूल्य वे वस्तुस्थितिया तथा व्यापार हैं अथवा वे विशिष्ट पक्ष हैं जो मानव की सार्वभौम सवेदना को आवेगात्मक अर्थवत्ता सहित प्रतीत होते हैं।[6] एक मनुष्य के लिए यदि कोई एक पदार्थ उपयोगी है तो उसकी प्रतिक्रिया सार्वभौम न होकर व्यक्तिगत होगी किन्तु चरम मूल्यो के प्रति समस्त मानवो की सवेदना समानरूप मे प्रतिक्रिया करती है। सामाजिक मूल्यो म समानता को प्राथमिक मान्यता मिलनी चाहिए। मनुष्य मनुष्य को

1 M N Roy—New Humanism—p 39
2 Marcus Aurelius—To Himself—p 23
3 Ernst Cassirer—Essay on Man—p 67-68
4 S Radhakriahnan—An Idealist View of Life—p 273
5 डा० राधाकृष्णन, (अनु०) डा० ज्ञानवती दरबार—आध्यात्मिक साहचर्य, पृ० 18
6 डा० देवराज—सस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० 168

समान माने, महाजन के समकक्ष लघुजन को रखे और दोनों के समान नैतिक मूल्य, समान अधिकार और समान गौरव की रक्षा करे।

मानव का लक्ष्य

मानव, आत्मा, विश्व तथा ब्रह्म आदि इन कुछ विषयों को लेकर संसार के चिंतकों ने अलग अलग ढंग से मानवोन्नति एवं मानव कल्याण के सम्बन्ध में सोचा परन्तु अन्तिम रूप से उनका चरमलक्ष्य एक ही था—मानव कल्याण। मानव का सम्बन्ध अपने से होता है अन्य मानवों से होता है और इस विश्व के प्राणीमात्र से होता है अतः मानव जीवन के ये तीन प्रमुख पक्ष हैं।

मानव मूल्य और उनके संदर्भ सर्वत्र समान हैं। यदि कोई अन्तर हो सकता है तो केवल इतना कि समाज विशेष की परिस्थितियों के अनुसार उनके बाह्य, अस्थायी मूल्यों और सामाजिक परम्पराओं में भेद हो सकता है अन्यथा सामान्यतः सब समन्वयात्मक श्रेष्ठ जीवन पद्धति का प्रतिपादन करते हैं। मानव-जीवन में अन्तः बाह्य सामंजस्य, नैतिक मूल्यों का आदर ही सिद्धि एवं चरम लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक है। टैगोर का मत है कि दैवी-सत्य की पूर्णता के लिए मानवता (मानवीय गुण) महत्त्वपूर्ण तत्व है। परम सत्ता अपनी आत्माभिव्यक्ति के लिए मानव में अवतरित होती है और मानव आत्म-ज्ञान द्वारा सत्य की प्राप्ति करता है।[1] आत्मैक्य के कारण ही उद्दालक आरुणी ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को तत्वमसि' (वह तू ही है) को आठ बार उच्चरित करने का आदेश दिया था।[2] जब हम यह कहते हैं कि मनुष्य परमात्मा का ही एक अंश है तो इसका अर्थ यह होता है कि मनुष्य की विशुद्ध आकांक्षाएँ सत्य का प्रतिबिम्ब हैं।[3] मानव का क्लेश और भय उसके आन्तरिक संघर्ष का परिणाम है। इन विकृतियों एवं उद्वेलनों को दूर करके, इनका परिहार करने के पश्चात ही वह सत्य और समन्वय प्राप्त कर सकेगा।[4]

मानव धर्म यही है कि वह मानव-सत्य को पहचान कर प्राणीमात्र के प्रति सद्भावना रखे क्योंकि पारस्परिक सौहार्द्र आचार विचार की श्रेष्ठता द्वारा भौतिक मूल्यों के साथ साथ आध्यात्मिक मूल्यों का परिवर्द्धन भी होता है।[5] पारस्परिक व्यवहार में स्वार्थ तथा परार्थ प्रमुख हैं। स्वार्थ बाह्य संतुष्टि एवं

1 Rabindranath Tagore—Creative Unity—p 80
2 डा० जगदीश चन्द्र जैन—भारतीय तत्त्व चिन्तन पृ० 46
3 The Complete Works of Swami Vivekanand—Vol VII — p 70-78
4 The Complete Works of Swami Vivekanand—Vol VII— p 10
5 Rabindranath Tagore—Crative Unity—p 23

व्यक्ति तक ही सीमित है, परार्थ भ्रान्तरिक एव व्यापक भ्रानन्द है। मानव की श्रेष्ठता स्वार्थ को परार्थ मे तिरोहित कर देने मे ही है। यह भावना मानव की भ्रखण्डता एव पूर्णता की द्योतक है।[1] महापुरुष, साधु, योगी, सन्त इस समरसता तथा भ्रखण्डता की साक्षात् मूर्ति होते हैं। मानव मे प्रकृति-प्रदत्त भ्राकार प्रकार की समानता होते हुए भी स्वभाव, क्रिया, विचार, मनोवृत्ति मे भिन्नता होती है परन्तु सबके लिए सर्वत्र 'मानव' सज्ञा का ही प्रयोग होता है, यह मानव की भ्रखण्डता का ही परिणाम है, एक भ्रान्तरिक शाश्वत सत्य है। टैगोर कहते हैं कि भ्रभिन्नता तथा सामरस्य का वेदी मे विवेचन किया गया है, सगीत के स्वरो मे एक प्रवाह, लय तथा भ्रखण्डता होती है, उसी समस्वरता मे उसका माधुर्य रहता है, यदि उसको खण्डित कर दिया जाए तो वह कर्ण-कटु होकर मानव चित्त का प्रसादन नही कर पाता।[2] इस सृष्टि मे भी एक स्वर, लय, भ्रखण्डता इसे गरिमामय बनाती है। धर्म भ्रखण्डता भ्रौर सामजस्य का साधन है भ्रौर मानव गुणो का विकास करने वाला है। टैगोर लिखते हैं कि भ्रात्मैक्य, एकसूत्रता, भ्रान्तरिक सद्भावना ही मानवीय गुण है जो मानव को कल्याण-पथ पर भ्रग्रसर करने मे सहायक होते हैं। यह कल्याण-भावना उपचेतन रूप मे मानव-हृदय मे उपस्थित रहती है किन्तु धर्म मे स्थूल रूप से परिलक्षित होती है।[3]

मानव को सद्गुणो के कारण ही ईश्वर के समीप भ्रौर उसका ही प्रतिरूप बताया गया है।[4] नर मे ही नारायण का वास होता है यह इसलिए भी है[5] कि मानव उसकी सृष्टि से, भ्रर्थ यह कि प्रत्येक प्राणी से स्नेह भाव बनाये रखे। पारस्परिकता की भ्रनुभूति ही विश्व चेतना का ईश्वरीय सत्य है भ्रन्यथा सब कुछ जड है। भारतीय धर्म दर्शन ने इन भावनाभ्रो का दृढता से पोषण किया है। भ्रद्वैतवाद भ्रौर 'भ्रह ब्रह्मास्मि' की भावना ने मानव को सत्य के भ्रस्तित्व की भ्रनुभूति ही नहीं, इस सृष्टि के रहस्य का परिचय भी कराया है।[6] स्वामी रामकृष्ण परमहस भी इस मत स सहमत हैं।[7] जाक मारिता इस सम्बन्ध मे लिखते हैं कि मानव की सृष्टि ईश्वरीय ज्ञान के भ्रलौकिक ध्येय के

1 S Radhakrishnan—An Idealist View of Life—p 69
2 Rabindranath Tagore—Religion of Man—p 16
3 Ibid—p 17
4 The Complete Works of Swmi Vivekanand—Vol VII—p 77
5 नर नारायणौ नित्य केवल यत्र निष्ठत ।
भ्रातृभाव समापन्नौ परम सख्यमाश्रितौ ॥—कल्याण—मानवता भ्रक, पृ॰ 290
6 The Complete Works of Swami Vivekanand—Vol VIII —p 223-225
7 A C Dass—Studies in Philosophy—p 96

लिये हुई है। यदि वह ईश्वरीय गुण, करुणा, दया, समता से सम्पन्न नहीं है तो वह पशु से भी हीन है, अतः मानव का अस्तित्व लौकिक तथा अलौकिक दोनों ही है।[1] मानव में दिव्यता तभी आती है जब उसमें सत्य, शिव एवं सुन्दर की अभिव्यक्ति उसके श्रेष्ठ कार्यों द्वारा हो।[2] गुणरहित व्यक्ति का कोई लाभ नहीं क्योंकि उसमें मानवीयता का गुण नहीं होता। अवतारों ने भी अपने चरित्र गुणों द्वारा कर्म औचित्य का आदर्श स्थापित करते हुए जीवन का चरम-लक्ष्य और आत्मिक शान्ति समन्वय, एकता और सौहार्द्र में बताई है।[3] व्यक्तिगत सुख श्रेष्ठ नहीं, यह दिव्य चरित्रों से ज्ञात होता है। मानव का मूल्यांकन इन्हीं श्रेष्ठ गुणों तथा कर्मों के आधार पर होता है। इसीलिए दर्शनों में संकेत दिया गया है कि बाह्य-रूप से, रूपाकार की दृष्टि से मानव और ईश्वर भिन्न होते हुए भी तत्वरूप में एक ही हैं।[4]

मानव का अध्ययन, गुण-दोष विवेचन व्यष्टिगत संदर्भ में न होकर समष्टिगत अथवा सामाजिक संदर्भ में होता है क्योंकि उसके सत्य मानव रूप का ज्ञान मानव व्यवहार द्वारा होता है। हम व्यक्ति का अध्ययन इकाई में नहीं कर सकते, बल्कि समाज से सम्बद्ध रूप से ही कर सकते हैं।[5] सबाइन कहता है कि एक व्यक्ति अपनी रुचियों, उत्साह, सुख-कामना, प्रगति, बौद्धिकता सहित अन्य प्रतिभाओं के सदुपयोग से अपने व्यक्तित्व का निर्माण अपने लिए करता है, बनाता है समाज के लिए नहीं। समाज का लक्ष्य मानवता है। मनुष्य बौद्धिक एवं नैतिक दोनों विचारों से श्रेष्ठ है,[6] इसलिए समाज का यही भव्य रूप होना चाहिए। यह सत्य है कि मानव स्वभाव के साथ उसी जैसे प्राणी (मानव) का समन्वय हो सकता है। इसलिए मानव के लिए शुभ यही है कि वह एक राष्ट्र के रूप में एक दूसरे के साथ एकसूत्र हो जाए और उसे मानवरूप में एक होकर दृढ़ मैत्री में बंध जाना चाहिए।[7] यह अत्यावश्यक है क्योंकि सृष्टि क्रम की अभिव्यक्ति मानव के ज्ञान के लिए है अतः मानव को समस्त समाज के सम्बन्ध में ज्ञान होना चाहिए। एक ही व्यवस्था क्रम का एक अंग होने के कारण मानव मानव का पारस्परिक और सामाजिक सम्बन्ध

1 Jacques Maritain—True Humanism—p 3
2 Rabindranath Tagore—Religion of Man—p 14 15
3 S Radhakrishnan—An Idealist View of Life—p 57-58
4 Kenneth W Morgen (Ed)—The Religion of Hindus—p 132
5 शांति जोशी—नीति शास्त्र, पृ० 505
6 G H Sabine—A History of Political Theory—p 432-33
7 Spinoza—Ethics—parts IV—Appendix, Section IX, XII

भी सम्भव है[1] और शुभ भी वही है जो सबका लक्ष्य है।[2]

इस प्रकार मानव-जीवन का लक्ष्य एक ही है और वह है सार्वभौमिकता के व्यवस्थित रूप की स्थापना। इसीलिए ऋग्वेद[3] और अथर्ववेद[4] मे प्रार्थना है कि हम सब मिलकर ऐसी प्रार्थना करें जिससे मनुष्यो में परस्पर सुमति और सदभावना का विस्तार हो। हम मनुष्य हैं और एक ही मानवता के अंग हैं,[5] इसलिए हमे सार्वभौमिक एकता के लिए एक हो जाना चाहिए।[6] रवीन्द्रनाथ ने विश्व मानव की कल्पना की थी। मानव सच्चे अर्थों में राग द्वेष, क्षुद्र-सकीर्णता रहित होकर सच्चे अर्थों में स्वतन्त्र, निर्भीक, निष्कपट, उदार और प्रेम-प्लावित हृदय वाला बने।[7] ऐसा आदर्श मानव की समस्त क्रियाओ का ध्येय है। धर्म के साधन द्वारा वे प्रेम और निःस्वार्थ भाव से एक-दूसरे की सेवा करते हैं। अत अलौकिक मानव की अपेक्षा लौकिक मानव का महत्व अधिक है। सत्य, शिव, एव सुन्दर के गुण मानव सामर्थ्य, बौद्धिकता, सौन्दर्य-भावना तथा मानव की मानव के प्रति सद्भावना उत्पन्न करते हैं।[8] इसीलिए कवि चण्डीदास ने कहा है—'सुनो रे मानुष भाई, सवार उपरे मानुष सत्य, ताहार ऊपरे नाई'[9]—हे मनुष्य भाई सुनो! सबके ऊपर मनुष्य सत्य है, उसके परे कोई नहीं है।

मानव-कल्याण के लिए मानव विस्तार की तथा उदारता की बहुत आवश्यकता है। डा० राधाकृष्णन् कहते हैं, 'यदि मनुष्य अपने 'स्व' का विस्तार कर ले तो सार्वभौमिक कल्याण का प्रसार हो जाएगा।'[10] आत्म-सकीर्णता मानव पतन की सूचक है इसलिए मानवीयता, सद्भावना सौहार्द, मैत्री-भावना, स्वतन्त्रता, नैतिक मूल्यो की स्थापना मानव हित के लिए आवश्यक है। मानव ही इस कार्य को करने में समर्थ है वही व्यक्तिगत सीमाओ को पार कर, स्वार्थ से दूर होकर सम्पूर्णता से तादात्म्य स्थापित कर सकता है।[11]

1 S Radhakrishnan—An Idealist Viw of Life—p 274
2 शांति जोशी—नीति शास्त्र पृ० 505
3 ऋग्वेद 10/191 10/103/10—11
4 अथ० वेद 3/30 6/34
5 The Complete Works of Swami Vivekanand —Vol I—p 370
6 Ibid—p 372
7 गुरुदेव स्मृतिग्रंथ, पृ० 123
(पथभ्रान्त मानवता के प्रकाश—प्रदीप रवीन्द्रनाथ —डा० सत्यनारायण शर्मा)
8 C T K Chari (Ed)—Essays in Philosophy—p 230
9 डा० राधाकृष्णन् (अनु०)—डा० ज्ञानवती दरबार—आत्मिक-साहचय, पृ० 29
10 S Radhakrisnan—An Idealist View of Life—p 274
11 Rabindranath Tagore—The Religion of Man—p 47

लिये हुई है। यदि वह ईश्वरीय गुण, करुणा, दया, समता स मम्पन्न नहीं ह तो वह पशु स भी हीन है, अत मानव का अस्तित्व लौकिक तथा अलौकिक दोनो ही है।[1] मानव म दिव्यता तभी आती है जब उसम सत्य, शिव एव सुन्दर की अभिव्यक्ति उसके श्रेष्ठ कार्यों द्वारा हो।[2] गुणरहित व्यक्ति का कोइ लाभ नही क्योकि उसमे मानवीयता का गुण नही होता। अवतारो न भी अपन चरित्र गुणो द्वारा कर्म-औचित्य का आदर्श स्थापित करते हुए जीवन का चरम-लक्ष्य और आत्मिक शान्ति समन्वय, एकता और सौहार्द्र म बताई है।[3] व्यक्तिगत सुख श्रेष्ठ नही, यह दिव्य-चरित्रो से ज्ञात होता है। मानव का मूल्याकन इन्ही श्रेष्ठ गुणो तथा कर्मों के आधार पर होता है। इसीलिए दर्शनो मे सकेत दिया गया है कि बाह्य-रूप से, रूपाकार की दृष्टि स मानव और ईश्वर भिन्न होते हुए भी तत्वरूप मे एक ही हैं।[4]

मानव का अध्ययन, गुण-दोष विवेचन व्यष्टिगत सदर्भ मे न होकर समष्टिगत अथवा सामाजिक सदर्भ मे होता है क्योकि उसके सत्य मानव-रूप का ज्ञान मानव व्यवहार द्वारा होता है। हम व्यक्ति का अध्ययन इकाई म नही कर सकते, बल्कि समाज स सम्बद्ध रूप से ही कर सकते हैं।[5] सबाइन कहता है कि एक व्यक्ति अपनी रुचियो, उत्साह, सुख-कामना, प्रगति, बौद्धिकता सहित अन्य प्रतिभाओ के सदुपयोग से अपने व्यक्तित्व का निर्माण अपन लिए करता है, बनाता है, समाज के लिए नही। समाज का लक्ष्य मानवता है। मनुष्य बौद्धिक एव नैतिक दोनो विचारो से श्रेष्ठ है,[6] इसलिए समाज का यही भव्य रूप होना चाहिए। यह सत्य है कि मानव स्वभाव के साथ उसी जैसे प्राणी (मानव) का समन्वय हो सकता है। इसलिए मानव के लिए शुभ यही है कि वह एक राष्ट्र के रूप म एक दूसरे के साथ एकसूत्र हो जाए और उसे मानवरूप म एक होकर दृढ मैत्री म बध जाना चाहिए।[7] यह अत्यावश्यक है, क्योकि सृष्टि क्रम की अभिव्यक्ति मानव के ज्ञान क लिए है अत मानव को समस्त समाज के सम्बन्ध मे ज्ञान होना चाहिए। एक ही व्यवस्था-क्रम का एक अग होने के कारण मानव मानव का पारस्परिक और सामाजिक सम्बन्ध

1 Jacques Maritain—True Humanism—p 3
2 Rabindranath Tagore—Religion of Man—p 14 15
3 S Radhakrishnan—An Idealist View of Life—p 57-58
4 Kenneth W Morgen (Ed)—The Religion of Hindus—p 132
5 शाति जोशी—नीति शास्त्र, पृ० 505
6. G H Sabine—A History of Political Theory—p 432-33
7 Spinoza—Ethics—parts IV—Appendix, Section IX, XII

भी सम्भव है[1] और शुभ भी वही है जो सबका लक्ष्य है ।[2]

इस प्रकार मानव-जीवन का लक्ष्य एक ही है और वह है सार्वभौमिकता के व्यवस्थित रूप की स्थापना । इसीलिए ऋग्वेद[3] और अथर्ववेद[4] में प्रार्थना है कि हम सब मिलकर ऐसी प्रार्थना करें जिससे मनुष्यों में परस्पर सुमति और सदभावना का विस्तार हो । हम मनुष्य हैं और एक ही मानवता के अंश हैं,[5] इसलिए हमे सार्वभौमिक एकता के लिए एक हो जाना चाहिए ।[6] रवीन्द्रनाथ ने विश्व मानव की कल्पना की थी । मानव सच्चे अर्थों में राग द्वेष, क्षुद्र सकीर्णता रहित होकर सच्चे अर्थों में स्वतन्त्र, निर्भीक, निष्कपट उदार और प्रेम-प्लावित हृदय वाला बने ।[7] ऐसा आदर्श मानव की समस्त क्रियाओ का ध्येय है । धर्म के साधन द्वारा वे प्रेम और नि स्वार्थ भाव से एक-दूसरे की सेवा करते हैं । अत अलौकिक मानव की अपेक्षा लौकिक मानव का महत्व अधिक है । सत्य, शिव, एव सुदर के गुण मानव सामर्थ्य, बौद्धिकता, सौन्दर्य-भावना तथा मानव की मानव के प्रति सदभावना उत्पन्न करते हैं ।[8] इसीलिए कवि चण्डीदास ने कहा है—'सुनो रे मानुष भाई सबार उपरे मानुष सत्य, ताहार ऊपरे नाई'[9]—हे मनुष्य भाई सुनो ! सबके ऊपर मनुष्य सत्य है, उसके परे कोई नही है ।

मानव-कल्याण के लिए मानव विस्तार की तथा उदारता की बहुत आवश्यकता है । डा० राधाकृष्णन् कहते हैं, 'यदि मनुष्य अपने 'स्व' का विस्तार कर ले तो सार्वभौमिक कल्याण का प्रसार हो जाएगा ।'[10] आत्म-सकीर्णता मानव पतन की सूचक है इसलिए मानवीयता, सद्भावना सौहार्द, मैत्री भावना, स्वतन्त्रता, नैतिक मूल्यो की स्थापना मानव हित के लिए आवश्यक है । मानव ही इस कार्य को करने में समर्थ है, वही व्यक्तिगत सीमाओ को पार कर, स्वार्थ स दूर होकर सम्पूर्णता से तादात्म्य स्थापित कर सकता है ।[11]

1 S Radhakrishnan—An Idealist Viw of Life—p 274
2 शांति जोशी—नीति शास्त्र पृ० 505
3 ऋग्वेद 10/191 10/103/10—11
4 अथ० वेद 3/30 6/34
5 The Complete Works of Swami Vivekanand —Vol I—p 370
6 Ibid—p 372
7 गुरुदेव स्मृतिग्रंथ पृ० 123
(पथभ्रान्त मानवता के प्रकाश—प्रदीप रवीन्द्रनाथ —डा० सत्यनारायण शर्मा)
8 C T K Chari (Ed)—Essays in Philosophy—p 230
9 डा० राधाकृष्णन् (अनु०)—डा० मानवती दरबार—आत्मिक-साहचर्य, पृ० 29
10 S Radhakrisnan—An Idealist View of Life—p 274
11 Rabindranath Tagore—The Religion of Man—p 47

मानव का सत्स्वरूप तभी निर्मित हो सकता है जबकि उसका विश्वास, एकता और सार्वभौमिकता की एकरूपता हो। इसी लक्ष्य की प्राप्ति एवं मानव-कल्याण और प्राणीमात्र के प्रति सद्भावनायुक्त कल्याण-कामना के लिए मानववाद और मानवतावाद, ये दो चिन्तनधाराएँ, विचार-परम्परा की पारस्परिक समानता रखते हुए चल पड़ी। यही विश्व-कल्याण का रूप है। इसमें मानव की मानव और प्राणीमात्र के लिए सार्वभौमिक गहन ममत्वशील भावना अन्तर्निहित है। इसके अनुसार मानव मानव के बीच समस्त सामाजिक, राष्ट्रीय और धार्मिक भेद एवं व्यवधानों को समाप्त कर मानव को मानव-जाति के प्रति उदार आत्मीयता और संवेदनशीलता की ओर प्रेरित किया जाता है।

इसी सार्वभौमिक दृष्टिकोण से सम्बन्धित मानव-कल्याण सम्बन्धी चिन्तन-धारा, 'मानवतावाद' का आगामी अध्याय में हम अध्ययन करेंगे जो मानव-हित, विश्व-कल्याण और लोक-कल्याण का मूलाधार है।

तृतीय अध्याय

मानवतावाद

मानव-कल्याण, मानव-मूल्यो की स्थापना और मानव-गौरव तथा व्यक्तित्व-विकास के लिऐ आदिम-युग से ही विश्व के विचारक तथा चिन्तक गम्भीरता-पूर्वक विचार करते रहे हैं। यह एक महान तथ्य है कि ससार के मानव इतिहास मे किसी देश और किसी काल मे भी ऐसी कोई चिन्तन-धारा नही रही जिसमे सृष्टि-सम्बन्धी चिन्तन मानव जाति को मूल मानकर न किया गया हो।[1] वास्तव मे मानव जीवन का लक्ष्य ही मानव हित-चिन्तन है, वही उसकी सिद्धि है।[2] इस कल्याण-प्रसार और मानव-गौरव के विकास के सम्बन्ध मे हमे दो चिन्तनधाराएँ मानववाद तथा मानवतावाद के रूप मे उपलब्ध होती हैं। मानववाद समष्टिगत होकर व्यष्टि-कल्याण की चिन्तनधारा है। वह समस्त मानव जाति को अपना लक्ष्य मानकर व्यक्ति (मानव) के कल्याण का जीवन दर्शन है। मानवतावाद नामक दूसरी प्रणाली की प्रक्रिया इसके विपरीत है। वह व्यक्ति और व्यक्ति-विशेष (इकाई) के द्वारा मानव जाति के कल्याण की सन्देशवाहक चिन्तनधारा है। यद्यपि दोनो विचार-प्रणालियाँ मानव कल्याण की ही कामना करती हैं, तथापि इनकी मान्यताओ मे पर्याप्त अन्तर है। विषय के स्पष्टीकरण के लिए सर्वप्रथम मानववाद के सम्बन्ध मे विचार-विश्लेषण और इसके विभिन्न पक्षो का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है।

मानववाद नामक जीवन-दर्शन का प्रचलन तथा प्रचार पाश्चात्य दर्शन की एक विचारधारा के रूप मे 19वी तथा 20वी शताब्दी में हुआ और समाज, सस्कृति, सभ्यता तथा विज्ञान के विकास के साथ-साथ इसका प्रसार होता गया। मानववाद की आरम्भ सम्भवत भारत के पुरातन वैदिक तथा सस्कृत साहित्य मे विद्यमान हो किन्तु किसी भी भारतीय विचारक ने स्पष्ट तथा स्वतन्त्र रूप स इस विषय पर लेखनी नही उठाई।[3] यह अवश्य है कि

1. C Kunhan Raja—Some Fundamental Problems in Indian Philosophy, p 299
2. Corliss Lamont—Humanism as a Philosophy, p 7
3. गुरुदेव स्मृति ग्रन्थ, पृ० 134

आधुनिक युग मे मानववाद ने अनेक साहित्यकारो को अनुप्राणित किया जो पाश्चात्य साहित्य का ही प्रभाव कहा जा सकता है। भारतीय चिन्तन मे यह विचार धारा मानव-कल्याण, विश्व कल्याण, लोक-हित, लोक-सग्रह, वसुधैव कुटुम्बकम्, सर्वजन हिताय तथा सर्वजन सुखाय जैसी शब्दावली से प्रस्तुत और प्रतिपादित की गई है।

मानववाद का आधुनिक युग को प्रभावित करने वाला आन्दोलन चौदहवीं तथा पन्द्रहवी शताब्दी के लगभग पाश्चात्य साहित्य तथा दर्शन के क्षेत्र मे ग्रीक तथा रोमन सस्कृति, दर्शन की पुनर्जागृति के रूप मे हुआ तथा इस मानव केन्द्रित दर्शन की अभिव्यक्ति तथा प्रसार को साहित्य तथा चित्रकला के माध्यम से किया गया। लिग्यिस तथा कंजेमियन ने पुनर्जागरणकालीन मानववाद की कुछ विशेषताओ का उल्लेख किया है। मानववाद के प्रभाव से साहित्य और चिन्तन अधिक व्यापक बन गया और आभिजात्य साहित्य मे सौन्दर्य अनुभव किया जाने लगा तथा ग्रीक साहित्य के भाष्यकारो को मानववादी माना जाने लगा।[1] इसके अतिरिक्त यूरोप की पुनर्जागृति के नेताओ ने पादरी-प्रथा से आक्रान्त मनुष्य को ईसाई धर्म के पाश स मुक्त करा उसे मानव आदर्शो का दिग्दर्शन कराने के लिए पर्याप्त प्रयत्न किया। इसके लिए मानव की नैतिकता तथा आचरण पर बल दिया गया तथा श्रद्धा, विश्वास के साथ पवित्रता को प्रमुख माना गया। इस धर्म-सुधार का नेतृत्व ईरास्मस और कोलेट ने किया[2] और थामस मूर नामक विद्वान चिन्तक ने ज्ञान और आदर्श राज्य व्यवस्था के लिए एक नई विचारधारा समाज को दी,[3] एव साहित्य और धार्मिक ग्रथों को सामान्य जनता के लिए सहज सुलभ बनाया। थामस मूर को युद्ध से घृणा थी, वह सैनिको को नर-सहारक कहता था। उसके अनुसार श्रेष्ठ जीवन की मान्यता यह थी कि मनुष्य को न ही स्वय के प्रति और न ही प्रकृति के प्रति क्रूर होना चाहिए और हममे धार्मिक तथा सामाजिक सहिष्णुता होनी चाहिए।[4] इन्होने शोषण तथा सामाजिक विषमता की भर्त्सना की। इस प्रकार यूरोप मे मानववाद का प्रचार प्रमुख रूप से ज्ञान के साहित्य के[3] रूप मे हुआ।

1 Emile Legouis & Louis Cazamian—A History of English Literature, p 199
2 वही, पृ० 201, 202
3 वही, पृ० 203
4 वही, पृ० 204
5 वही, पृ० 231

मानववाद से तात्पर्य एक आशावादी चिन्तनधारा से लिया गया, जिसमे बताया गया कि मानव-मूल्य स्वनिर्मित हैं और इस सम्बन्ध मे यह किसी दैवी शक्ति पर निर्भर नही करता ।[1] मानववादी आस्तिकों को अन्ध विश्वासी, रूढ़िवादी कहकर उनका विरोध करते थे और अलौकिक तत्व मे भी उनका कोई विश्वास नही था ।[2] धार्मिक और सामाजिक सुधार के आन्दोलन मे दो प्रकार के लोग थे—एक वे थे जो दैवीशक्ति, पवित्रात्माओं, दया, पवित्रता को प्रेरणा मानकर धार्मिक सस्थाओं मे सुधार करना चाहते थे तथा समाज के सम्मुख पवित्रता का आदर्श रखकर सार्वभौमिक भ्रातृत्व का पोषण करना चाहते थे। इसके विपरीत दूसरे मत के लोग नई विद्वता और नवीन दर्शन स प्रभावित थे तथा नैतिक सुधार के लिए मानव बुद्धि म ही विश्वास करते थे ।[3] य मानव-प्रतिभा द्वारा बौद्धिक अराजकता की स्थापना करना चाहते थे। इन्होने दया के स्थान पर प्रकृति, धर्मशास्त्र के स्थान पर नैतिकता और भाग्य के स्थान पर कर्म को महत्व दिया। यह बुद्धिवादी वर्ग भौतिक ससार को ही प्रमुखत स्वीकार करता है।[4] य मानव स्वभाव का परिष्कार बौद्धिक अनुशासन द्वारा सम्भव मानते थे। इस प्रकार नवजागरण का यह आन्दोलन कला और साहित्य को बौद्धिक रूप प्रदान करने के लिय फैला और यह प्रयत्न किया गया कि मानव मूल्यो को अधिक स अधिक उदात्त रूप म प्रस्तुत किया जाए। यही भावना साहित्यिक क्षेत्र मे मानववाद के नाम से प्रसिद्ध हुई ।[5]

मानव मूल्यो की नव-स्थापना का यह कार्य सहसा ही हुआ जिसमे मानव का धर्म शास्त्र के बन्धन से मुक्त चिन्तन किया गया और व्यक्तिगत नैतिकता[6] को प्राधान्य दिया गया। साथ ही इस व्यक्तिगत नैतिकता के सम्बन्ध मे प्रमुख बात यह भी थी कि इस नवजागरण का सघर्ष व्यक्तिगत मूल्यो को लेकर हुआ। हेजिलिट ने अपने लेख 'मानववाद और मूल्य' मे लिखा है कि मानववाद मूल्य सिद्धातो का युद्ध था और नव मानववाद के अनुसार मनुष्य स्वय ही इनका अर्जन कर सकता है ।[7] मूल्यो की सिद्धि और स्थापना का लक्ष्य मानव-गौरव की स्थापना था। मानव मे आदिम युग से ही इसके तत्व उपलब्ध होते हैं और यही वे धूमिल प्रकाश कण थे जो एक प्रवृत्ति, एक आन्दोलन और

1 J B Coates—The Crisis of the Human Person, p 235
2 वही, पृ० 241
3 Myron P Gilmore—The World of Humanism, p 205
4 वही पृ० 206
5 Encyclopaedia of Social Sciences—Vol VII, p 537
6 Mosses Hadas—Humanism The Greek Ideal and its survival, p 119
7 William Marshall Urban—Humanity and Deity, p 409

संघर्ष के रूप मे शनै शनै मानववाद के रूप म विकसित हुय । विल्हेम वुदत कहते हैं कि इसी विचारधारा को मूल मानकर मानव की समस्त प्रगति हुई[1] और यही मूल विचार मानव की नैतिकता का वह तत्व है जिसने सार्वभौमिक ऐक्य का प्रसार किया ।[2] इसलिय मानववाद ने उस कल्याणपरक भावना का रूप ग्रहण कर लिया जो मनुष्य और समाज का इस दिशा म मार्ग-दर्शन करती है और बताती है कि शान्ति-स्थापना और मनुष्य की आवश्यकताओ की सन्तुष्टि के लिय क्या आवश्यक है ।[3]

किन्तु पुनर्जागरण काल मे नई नई परिस्थितियो और नये नये मूल्यो के साथ ही मनुष्य को प्राचीन सस्थाओ का त्याग कर नवीन सस्थाओ की स्थापना करनी पडी[4] तथा नये आदश तथा नये मूल्य स्थापित करने पडे । इस युग मे मानववादी प्रगतिशीलता और नास्तिकता स प्रभावित लोगो का ईश्वर से विश्वास उठ रहा था । वैज्ञानिक कहते थे कि मनुष्य सृष्टि का एक अग है और ईश्वर एक भ्रान्ति है ।[5]

पुनर्जागरण काल म यूरोप मे चर्च का समाज तथा राजनीति पर पूर्ण आधिपत्य था और स्वतन्त्र विचारधारा के लिए कोई स्थान न था ।[6] इस दासता और रूढिवादिता स मुक्त होने के लिए केवल परम्परा का विरोध हो रहा था तथा नये तत्व चिन्तन का सर्वथा अभाव था । परम्परा विरोधी सघर्ष रूढि खडन के प्रयत्न स्वरूप समाज धीरे धीरे जाग्रत हो रहा था ।[7] आध्यात्मिक जीवन मे जनतत्र का भाव पल्लवित हो रहा था तथा दर्शन अध्यात्म मात्र ही नहीं रह गया था, उसमे साधना के रूप मे मानव आदर्श की स्थापना भी हो रही थी । अब व्यक्ति ईश्वर का उपासक न रहकर मानव का उपासक हो गया था और समस्त सासारिक सिद्धियाँ उसका लक्ष्य थी । रेबिलियस तथा इरासमस नवजाग्रत समाज और विचारधारा के प्रमुख लेखक थे ।[8]

ईरासमस इस काल का प्रमुख सुधारक था । उसने धर्म मे उत्पन्न दोषो तथा आडम्बरो का खडन किया और पादरियो की भर्त्सना की[9] एव स्वतन्त्र

1 Wilhelm wundt—Elements of Folk Psychology, p 473
2 Saxe Commins & Robert N Linscott (Eds)—Man and Man · The Social Philosophers, p 324
3 Hector Hawton (Ed)—Reason in Action, p 63
4 वही पृष्ठ 77
5 Crane Brinton—A History of Western Morals, p 296
6 M N Roy—Reason, Romanticism and Revolutions—Vol I, p 77
7 Henri Pirenne—A History of Europe, p 501
8 Corliss Lamont—Humanism as a Philosophy, p 29
9 C.P S Clarke—Short History of Christian Church p 263

धार्मिक भावना का प्रचार किया। मध्यातमवादियो ने नैतिकता, साहित्य, धर्म पर अपना आधिपत्य जमाया हुआ था। इसको दूर करने के लिये नव विचार-धारा के चर्च अधिकारियो ने सौसताह कार्य किया। ये लोग सहिष्ण थे, अत इन्होंने बाइबिल मे उल्लिखित कट्टरपथी बातो का विरोध किया।[1]

इन लोगो ने सहिष्णुता का प्रचार किया, क्योकि सोलहवी शताब्दी मे रोमन कैथोलिक चर्च और प्रोटेस्टेण्ट मत मे जो सघर्ष प्रारम्भ हुआ था वह बहुत वीभत्स और प्रचण्ड था। दोनो मतो के अनुयायी एक दूसरे पर नि-सकोच होकर अमानुषिक अत्याचार करते थे। यूरोप के इतिहास मे यह असहिष्णुता सचमुच बडी वीभत्स थी।[2] साथ ही यूरोप मे इस युग मे अनेक भयकर युद्ध केवल धार्मिक व साम्प्रदायिक कारणो से लडे गये। सिडनी पेंटर लिखते हैं,[3] कि इस साहसपूर्ण धर्म युद्ध, लूटमार का मुक्ति का एकमात्र मार्ग बताकर लोगो को प्रोत्साहित किया जाता था। ये लोग अपनी सम्पत्ति धरोहर रखकर, भूमि बेचकर, परिवार को छोडकर, यात्रा की समस्त कठिनाइयाँ झेलकर ईश्वर की सेवा के लिए शत्रुओ से लडने जाते थे। इस युग के शासक अपने राज्य के अतिरिक्त अन्य राज्यो मे भी अपने धर्म की स्थापना के लिए शक्ति प्रयोग के लिए कटिबद्ध रहते थे और इस कार्य के लिए शस्त्र ग्रहण करना गौरव की बात समझते थे।[4]

नवजागरण के इस युग म पुनर्जागरण के साथ-साथ सुधारवादी आन्दोलन भी चल रहा था जिसने प्रमुख रूप स मध्यकालीन चर्च की आलोचना, अन्ध-विश्वास का खडन और निरकुशता का विरोध किया।[5] नैतिकता को आधार मानने वाले मानववादी सुधार के प्रभाव स ईश्वर मे आस्था रखते थे तथा धार्मिक प्रवृत्ति वाले थे, किन्तु बौद्धिक वर्ग स सम्बन्धित लोग धर्म-विरोधी हो गये थे।[6] इस वर्ग ने ज्ञान के प्रसार का प्रयत्न किया। इरास्मस इस कार्य मे सदैव अग्रणी रहा। उसने जादू, टोने, तन्त्र-मन्त्र तथा अन्य मानव ज्ञान को आघात पहुंचाने वाले आडम्बर और तर्कहीन विश्वासो का विरोध किया। कपट तथा आडम्बर की भर्त्सना करते हुए अज्ञान और मूर्खता को मनुष्य और समाज का शत्रु बताया। वह राष्ट्रीय और धार्मिक सघर्ष से घृणा करता था। उसने धर्म की आड मे होने वाले अनाचारो और अत्याचारो का घोर विरोध तथा हिंसा, युद्ध, दासता, क्रूरता और अमानुषिकता के विरुद्ध, व्यापक

1 Henri Pirnnee—A History of Europe, p 501-502
2 सत्यकेतु विद्यालकार—यूरोप का आधुनिक इतिहास, पृ० 64
3 Sir Sidney Painter—A History of Middle Ages, p 219
4 सत्यकेतु विद्यालकार—यूरोप का आधुनिक इतिहास, पृ० 64-65
5 Encyclopaedia of Social Sciences—Vol VII, p 540
6 Ibid—p 541

संघर्ष किया।[1] इसी भाँति इटेलियन चिन्तक पिश्रो पोम्पानाजी ने उद्घोष किया कि धार्मिक न्यायालय द्वारा प्रतिपादित स्वर्ग और मोक्ष का विचार तथ्यरहित है, वास्तव मे एक उच्चस्तरीय नैतिकता के लिए भावी-जीवन की चिन्ता का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता।[2] इस कार्य मे मोतेन, थामस मूर ने पूर्ण सहयोग दिया। अन्य देशो के चिन्तको मे वाल्तेयर, रूसो, दिद्रोत, काट ने भी आचार-विचार की श्रेष्ठता को ही प्रमुख माना।[3] इन्होने मानव-कल्याण, तार्किक औचित्य, मानव-गुण-सम्पन्नता के प्रतिपादन के साथ ही बताया कि मनुष्य मे समस्त दोष सामाजिक-आर्थिक परिवेश के दूषित होने पर ही उत्पन्न होते हैं।[4]

पुनर्जागरण काल के मानववाद की तीन प्रमुख विशेषताएँ थी, प्रथम विशेषता थी मानव-गौरव की सजग स्थापना, उसकी प्रतिभा, नैसर्गिक क्षमता, सामर्थ्य, स्वतन्त्रता और आत्म निर्भरता का उदात्त प्रतिपादन। वास्तव मे प्रारम्भिक नवजागरण काल मे साहित्य का मूलसूत्र यही था, जिसने मानववाद को सार्थक किया। द्वितीय विशेषता थी, तत्कालीन साहित्य का प्राचीन आभिजातीय रचनाओ से सम्बन्ध। मानववादी लेखको ने उस साहित्य से मानववादी शैली तथा आदर्श ग्रहण किये। उसके प्रति इनकी रुचि और ज्ञान-पिपासा निरन्तर बनी रही।[5] इसलिये इस साहित्य की पुनर्व्याख्या की गई और इसे उत्तम भी माना गया, किन्तु ग्रीक और रोम की सभ्यता पर केन्द्रित हो जाना ज्ञान के प्रसार मे और नव-विज्ञान के विकास मे बाधक माना गया, इसलिये मानववाद ने एक नया मोड लिया[6] जिसके फलस्वरूप ग्रीक दर्शन और साहित्य की सृजनात्मकता का मानववाद पर गहरा प्रभाव पडा,[7] क्योकि इसके पास अन्य कोई सिद्धात और नियम नही था। साथ ही ग्रीक चिन्तन तर्कनिष्ठ और बुद्धिवादी था, कल्पनाशील विचारो के स्थान पर उसके निश्चित सिद्धात थे। तृतीय एव सर्वप्रमुख विशेषता थी ज्ञान का प्रसार, जिसे मानववाद का एक अर्थ भी माना गया।[8] इस ज्ञान प्रसार और मानव-मुक्ति की भावना के कारण

1 C P S Clark—Short History of the Christian Church, p 263-64
2. Corliss Lamont—Humanism As a Philosophy, p 30
3 Crane Brinton—A History of Western Morals, p 297
4 वही, पृ० 297
5 Moses Hadas—Humanism The Greek Ideal and its Survival —p 119
6 Corliss Lamont—Humanism As A Philosophy, p 30
7 Ralph Barton Perry—The Humanity of Man, p 47
8 Moses Hadas—Humanism : The Greek Ideal and its Survival —p 120

जो मानव-गौरव बढ़ा उसने दैवी तत्व को हीन बना दिया जिसस वह उपेक्षित हो गया। कारलिस लेमाट लिखते है कि इस दृष्टि से पुनर्जागरणकालीन मानववाद की चिरन्तन विशेपता इस ससार मे पूर्ण सुख और आनन्द की स्थापना पर बल देना है।[1] इस प्रकार पुनर्जागरणकाल के मानववाद की विशेपता है उसकी देश-काल निरपेक्ष सर्वकल्याण की चिन्तनधारा।[2]

इस प्रकार मानववाद का आधार रूढियो, अन्धविश्वासो और धार्मिक आडम्बरो से मुक्ति की भावना है। मानववाद के पूर्ण सैद्धान्तिक-विश्लेपण के लिये उसके विकास और अर्थ का अध्ययन आवश्यक है क्योकि मानववाद की धारा प्राचीनकाल से प्रवाहित होती आ रही थी किन्तु यूरोप के पुनर्जागरण काल मे वह अधिक स्फुट रूप से ससार के समक्ष आई। अत अब हम मानववाद की भावना पर प्रकाश डालते हैं।

मानववाद : शब्दावली तथा भावना

सामान्यत मानव-मूल्यो और मानव-गौरव की स्थापना करने वाली विचार-धारा को मानववाद कहा गया है। इस शब्द की व्युत्पत्ति लेटिन भाषा के शब्द 'ह्यूमनस' से हुई है जिसने पहल 'ह्यूमन' शब्द का रूप ग्रहण किया तथा जिसका सम्बन्ध 'होमो' मनुष्य जाति स है। इस 'ह्यूमन' शब्द मे, जिसका अर्थ मानव है, प्रत्यय लगाकर इसे मानववाद बनाया गया, जिसका अर्थ किया गया मानव सम्बन्धी विचार दर्शन अथवा चिन्तन धारा। इसमे मानव जीवन के सर्वश्रेष्ठ रूप का प्रतिपादन करने का प्रयास किया गया। इस सम्बन्ध म अनेक शब्दो का प्रयोग हुआ है, मानव (ह्यूमन), मानववादी (ह्यूमनिस्ट) जो मानव कल्याण का चिन्तन करने वाला हो मानववाद (ह्यूमनिज्म), लोकोपकारी (ह्यूमनिटेरियन), जो मानव-सेवा को सर्वश्रेष्ठ मानते है[3] मानवतावाद (ह्यूमनिटेरियनिज्म) मानवीय गुणो का विकास करने वाली, मानव धर्म की व्याख्या करने वाली विचारधारा है। इसके अनुसार मनुष्य मे सच्ची कर्तव्य परायणता, पारस्परिक स्नेह, लोक-सेवा की भावना, आत्म-त्याग एव औदार्य होना चाहिये।[4] इसी क्रम मे मानवीयता (ह्यूमनेस) और मानवता (ह्यूमनिटी) भी आते हैं। प्रो० पेरी ने इन सभी पारिभाषिक शब्दो को उदार सस्कृति अथवा शिक्षा से सम्बद्ध बताया है जिसका मूल सूत्र स्वतन्त्रता है और इसके मुख्य गुण विद्वता, श्रेष्ठ कल्पना, सहानुभूति की

1 Corliss Lamont—Humansım As A Philosophy, p 30-31
2 Ralph Barton Perry—The Humanıty of Man, p 47
3 Encyclopaedıa of Brıtannıca—Vol XI, p 877
4 Wılhelm Wundt—The Prıncıples of Moralıty, and the Departments of Moral Lıfe, p 157

भावना, गौरव स्थापना तथा सज्जनता हैं।[1] *ग्रीक सोफिस्ट चिन्तकों ने मानव* से अर्थ व्यक्ति मानव स लिया और इसे ही 'सार्वभौमिक मनुष्य' कहा गया।[2] उन्होंने इस ससार के मनुष्य को ही मान्यता दी तथा उसका व्यापक रूप प्रस्तुत किया।[3]

यूनान म मानव गुण सवद्धन का सामान्य रूप मे मैत्री भावना अथवा सद्भावना स अर्थ लिया गया किन्तु इसका वास्तविक और मौलिक अर्थ *ललित कला और मानवीय विद्याओ की शिक्षा एव प्रशिक्षण प्रदान करना है।* इन मानवीय विद्याओ को ग्रहण करन वाल को मानव गुण सम्पन्न व्यक्ति कहा गया।[4] यह शिक्षण भावना मानव को ही श्रेष्ठ समझती है और इसी आधार पर मानव का पशु स भेद करती है।

मानवीयता का विकास करने वाल तत्व हमे मानव की मूल प्रकृति म उपलब्ध होते है और उसके नैसर्गिक परिवेश मे भी मिलत हैं। आदिम मानव मे मानवीयता एव उसकी गुण सम्पन्नता इतनी स्पष्ट नही थी जितनी आज है। उसमे केवल अपन क्षेत्र के साथियो के लिये ही स्नेह भाव एव सद्भावना थी।[5]

मानवता शब्द अत्यन्त व्यापक अथ का बोधक होने से अस्पष्ट रहा है। मानव स्वभाव और मानव-लक्षण का यह विचार अथवा धारणा कि समस्त मनुष्यो मे नैतिक आचार विचार और तात्विक एकता तर्कसगत है यह स्टोइक विचारको से उस समय स सम्बद्ध है जब से मानव जाति की तर्कसम्मत एकता के विचार की स्थापना हुई है। बुद्धि अथवा विचार-शक्ति को मानव मानव के बीच एक सावभौमिक समझौते का आधार माना गया है जिसके अनुसार सभी मनुष्य विवेकी अथवा सज्ञान प्राणी होने के नाते परस्पर और प्रकृति के साथ एक सौहार्द्रपूर्ण समन्वयात्मक भावना स रह सकते हैं।[6] इस प्रकार मानव लक्षण व्याख्या सम्बन्धी चिन्तन पश्चिम मे स्टोइक विचारको से सम्बद्ध है। वास्तव मे मानव स्वभाव सम्बन्धी विचार मानव की नैतिक सम्पन्नता का प्रतिपादन करते हुए यह सिद्ध करता है कि समस्त मानव जाति मे ऐक्य

1 Ralph Barton Perry—The Humanity of Man, p 40
2 P A Schilpp (Ed)—The Philosophy of Ernst Cassirer, p 472
3 Ernst Cassirer—The Myth of the State, p 57
4 *Ralph Barton Perry—The Humanity of Man—p 40—f* note
5 Wilhelm Wundt—The Elements of Folk Psychology, p 472
6 P A Schilpp (Ed)—The Philosophy of Ernst Cassirer—p 481

भावना नैसर्गिक है और यही भावना मानव-मूल्यों का उत्थान करती है तथा पारस्परिक मानव-व्यवहार को पशु-व्यवहार से भिन्नता सिद्ध करती है।[1]

विल्हम वुन्द्त लिखते हैं, 'मध्यकाल मे मानवता अथवा मानव स्वभाव शब्द ने एक और अर्थ ग्रहण कर लिया और वह गुणात्मक अथवा भावात्मक स्वरूप के कारण सामूहिक अथवा सामाजिक धारणा होकर मानव जाति के सदर्भ मे प्रयुक्त होने लगा, जिसका अर्थ रोमन 'जीनस होमिनम' विचार के, जो स्वतत्र मूल्य-निर्णय सम्बन्धी विचार था, समानार्थी बन गया।[2] आधुनिक शब्दावली मे यह शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होन लगा और मानव गुण तथा स्वतन्त्र मूल्य-सृजन इसके दो प्रमुख तत्व बन गए।

जर्मन विद्वान हर्डर ने मानव स्वभाव और मानव-शिक्षा के समानार्थी शब्दो के अर्थ को सयुक्त रूप म प्रयुक्त किया और वह मानव शिक्षा की शब्दावली म अभिव्यक्त हुआ। इसके साथ ही हर्डर ने समस्त ऐतिहासिक अर्थ को घनीभूत करते हुए उसकी व्याख्या न केवल मानवीय गुणों के विकास के रूप मे की अपितु उसका समस्त मानव-जाति के प्रति सहज विकास भी अनिवार्य माना।[3]

मानववादी विचारधारा का रूप

मानवीयता का विचार सभ्य समाज मे अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है जो आत्मपरक होने के साथ साथ विषयगत और ध्येयमूलक भी है। एक ओर मानवीयता का अर्थ सम्पूर्ण मानव जाति से है और दूसरी ओर वह मूल्य गरिमा के अर्थ म प्रयुक्त होता है। इसमे मानव और पशु मे अन्तर स्पष्ट करने वाली नैतिक विशेषताओ के विकास का उल्लेख और व्यक्तिगत तथा सामूहिक जीवन मे उसके व्यवहार की अभिव्यक्ति है।[4] इस विचार के दूसरे भाव में मानवीयता के अर्थ मे मानव-जाति और मानव-स्वभाव दोनो अर्थ आ जाते हैं। व्यक्ति सदर्भ मे यह मानव श्रेष्ठता के सार्वभौमिक विचार का प्रतिपादन करता है।[5]

मानवीयता का भाव जैसे-जैसे बढता गया, मानवीय भावना का क्षेत्र विस्तृत होता गया। उसने सार्वभौमिक रूप ग्रहण कर लिया और मानव

1. P A Schilpp (Ed)—The Philosopy of Ernst Cssirer, p 481
2 Whilhelm Wundt—The Elements of Folk Psychology—p 471
3 वही, पृ० 472
4 Vergilius Fern (Ed)—The Encyclopaedia of Religion—p 348
5 Wilhelm Wundt—The Elements of Folk Psychology, p 472

संकीर्ण एव कृत्रिम सीमाम्रो से मुक्त हो गया ।[1] म्रादि-मानव मे भी इस भावना के तत्व मिलते हैं किन्तु उसका म्रर्थ तथा भाव वह नही था जो बाद मे विकसित हुम्रा ।[2] इस शब्दावली का वास्तविक सम्बन्ध उस युग से है जिसमे मानवीयता का विचार स्पष्ट होकर म्राया म्रोर जिसने मानव-जाति म्रोर सस्कृति के बडे भाग को प्रभावित किया म्रोर लोगो ने इसकी म्रनुभूति की । इसी म्रनुभूति के परिणामस्वरूप मानव एव दूसरे से म्रनुस्यूत है ।

मानववाद का ऐतिहासिक म्राधार वास्तव मे मानव की एक दूसरे पर निर्भर करने की परिस्थितियाँ हैं । जीवन की सहयोगी प्रणाली ईश्वर की दया म्रथवा म्रनुकम्पा से प्रदत्त नही है म्रोर न ही नरक के भय से उसे ग्रहण किया गया है, म्रपितु यह तो मानव म्रस्तित्व को जीवित रखने का एक साधन है । यदि मनुष्य दूसरों पर निर्भर नही करता, उसमे सहयोगपूर्ण जीवन की भावना न होती तो एकाकी रहकर वह म्रसभ्य, मूर्ख म्रोर नृशस तो होता ही, साथ ही उसका म्रस्तित्व भी चिरस्थायी नही होता[3] म्रतएव मानव एकता, सहयोग, सहजात म्रनुभूति म्रोर पारस्परिक सहानुभूति, मानव म्रस्तित्व को सुरक्षित रखने के लिए, उसको सभ्य एव शिष्ट बनाने के लिये म्रोर जीवन को लक्ष्य-सिद्ध बनाने के लिए मानववाद का भाव म्रत्यन्त म्रावश्यक था ।

इससे ज्ञात होता है कि मानवीयता के विकास मे प्रथम भावना म्रथवा विचार, जो वाह्य तथा उद्देश्यात्मक है म्रोर मानव जाति की सज्ञा मे म्रभि-व्यक्त है ऐतिहासिक क्रम से पूर्ववर्ती है । द्वितीय, म्रान्तरिक विशेषतायुक्त विचार, जो वैयक्तिक चेतना म्रोर मूल्य सम्बन्धी है, उत्तरवर्ती है ।[4] मान-वीयता के विकास के इस क्रम को हम इस प्रकार भी व्यक्त कर सकते हैं कि मानव-जाति को मानवीयता म्रोर मानव स्वभाव के लिये मार्ग निर्माण करना चाहिये, जिससे मानव की परिष्कृत भावनाम्रो को निकसन का मार्ग मिल सके । इसीलिये ज्यूलियन हक्सले ने इस बात की म्रोर ध्यान दिलाया है कि *मानववाद मनुष्य को यह शिक्षा देता है कि उसे म्रपनी शक्तियों पर विश्वास* करना चाहिये म्रोर वही मूल्यो का सृजक तथा भविष्य का निर्माता है ।[5]

मानव मूल्यो म्रोर मानव-भविष्य के निर्माण की यही भावना मनुष्य को उच्चता के लिये सघर्षरत रख सकी म्रोर वह निरन्तर दूसरो के सहयोग से म्रागे बढने का प्रयास करता रहा । म्रादिमानव दूसरों के सम्बन्ध मे एक सकुचित

1 Wilhelm Wundt—The Elements of Folk Psychology, p 473
2 वही, पृ० 474
3 Hector Hawton (Ed)—Reason in Action, p 31
4 Wilhelm Wundt—The Elements of Folk Psychology, p 475
5 J B Coates—The Crisis of the Human Person, p 241

एव परिसीमित दृष्टिकोण स मोचता था । वह रक्त-सम्बन्ध के आधार पर ही दूसरो से अपना सम्बन्ध मानता था तथा जो लोग उसके जाति समूह के अथवा उसके वृहद् परिवार के सदस्य होते थे ।[1] किन्तु एक समय ऐसा भी आया कि मानव ने दूसरो के लिये त्याग किया तथा जीवन उत्सर्ग किया ।[2] इस प्रकार की भावना ने ही मानवीयता का विकास किया ।

मानव-जाति की यह सामूहिक धारणा केवल जन्म-क्रम विकास को ही व्यक्त नही करती बल्कि यह समाज के सभी सदस्यो को एकसूत्र करने के अर्थ मे प्रयुक्त होकर व्यष्टिगत विचार से आगे बढ जाती है क्योकि वह मनुष्य के सार्वभौमिक अधिकारो और कर्तव्यो की स्थापना भी करती है ।[3] हम मानवीय गुणों के तत्व व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन की विशेषताओ मे भी देख सकते हैं क्योकि व्यक्ति और समाज भिन्न व्यवस्था और क्रम से अग हैं और इनका सयोग तथा समन्वय मानवीयता के नैतिक विकास मे ही होता है । इस भावना की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति मानव की कर्तव्य-भावना और सार्वजनिक सेवा मे मिलती है जिसमे व्यक्ति व्यक्तिगत कर्तव्यो की सीमाओं को पार कर जाता है और उसमे लोकोपकार के गुण उद्‌भूत हो जाते हैं ।[4]

मानवीय गुणो के प्रति जागरूकता ने पुनर्जागरणकाल मे मानव गौरव की स्थापना की ओर साहित्यकारों, नीति-शास्त्रियो, शिक्षा विशारदो, धार्मिक नेताओ, राजनैतिक और सामाजिक चिन्तको को आकृष्ट किया । मध्यकालीन सघर्ष न आधुनिक मानववाद के लिए मार्ग प्रशस्त किया और एक स्वतन्त्र समाज तथा सभ्यता के निर्माण का कार्य किया ।[5] कैजिन्र लिखते हैं कि मानवीय गुण विकास की यह भावना सर्वप्रथम रोम के सामन्त वर्ग मे पल्लवित हुई और इस विचार को तर्कसगत भी माना गया । साथ ही यह निजी तथा सार्वजनिक जीवन का रूपाकार ग्रहण करने लगी । नैतिक गुणो के अतिरिक्त इसका अर्थ आदर्श से भी लिया गया । वास्तव मे यह एक ऐसी आवश्यकता थी जिसका प्रभाव मनुष्य के सारे जीवन पर, उसके नैतिक आचरण, भाषा, साहित्यिक शैली और रुचि पर आवश्यक था ।[6]

1 Jacques Feschotte—Albert Schweitzer : An Introduction—p 114
2 वही, पृ० 125
3 Wilhelm Wundt—The Elements of Folk Psychology, p 475
4 Wilhelm Wundt—The Principles of Morality and the Department of Moral Life, p 156
5 Jacques Maritain—True Humanism, p 8
6 Ernst Cassirer—The Myth of State, p 102

मानव गुण प्राधान्य की धारणा ने मानव को ही चिन्तन और समाज का केन्द्र-बिन्दु बना दिया और अतिमानवीय तत्व का विरोध किया गया। मानववाद मनुष्य की सम्पूर्ण मनोवृत्तियों का निस्सग चित्रण करता है, वह यथार्थोन्मुख है और विशुद्ध मानवीय-दर्शन है। मानववादी दर्शन का पोषक भौतिकवादी दर्शन है। मानववाद धार्मिक विचारों का विरोधी चिन्तन है। ई० पू० 5वीं शताब्दी मे एपिक्यूरस ने इसी दर्शन को विकसित किया और एक नैतिक मानववादी आधार दिया।[1] एपिक्यूरस भारतीय चार्वाक दार्शनिको की भाँति था, उसने कहा कि हमे देवताओ से डरना नही चाहिए और परलोक की चिन्ता नही करनी चाहिए और इसी जन्म मे सुख-प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए। यूरोप मे मध्यकाल मे धार्मिक रूढ़ियो का खण्डन तथा विरोध करके प्रकृतिवादी और भौतिकवादी मतो की स्थापना का प्रयत्न किया गया। इस सम्बन्ध मे हम पहले भी उल्लेख कर चुके हैं।

मानववाद का पोषण और भी अनेक ढगो से हुआ। उन्नीसवी शताब्दी के मध्य मे काम्टे ने ईश्वर के स्थान पर मनुष्य की पूजा का विधान किया।[2] इग्लैण्ड मे जान स्टुअर्ट मिल ने उपयोगितावाद से मानववाद को पोषित किया।[3] हर्बर्ट स्पेंसर और हक्सले को भी अति-प्राकृत तत्वो मे सन्देह रहा और वे भी मानववाद के प्रबल समर्थक रहे। बर्टेण्ड रसेल को भी इसी श्रेणी मे रख कर प्राकृतिक मानववाद का समर्थक कहा जा सकता है।[4] इस प्राकृतिक मानववाद के अनुसार दो तथ्य प्रमुख हैं, प्रथम तो यह कि इस ससार मे मानव-उद्देश्य से श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण और कुछ नही है, द्वितीय इस ससार मे समस्त घटनाएँ प्रकृति के नियमो के अनुरूप ही घटित होती हैं और अद्भुत अथवा अति मानवीय कुछ नही है।[5]

बीसवी शताब्दी के प्रमुख मानववादी चिन्तक प्रो० शिलर ने मानववाद की स्थापना करते हुए कहा कि मानवीय अनुभव ही इस ससार मे चिन्तन का विषय है और मानव ही समस्त मूल्यो का मापदण्ड है। शिलर के विचार से मानव ही समस्त वस्तुओ का निर्माता है।[6] मानव-मूल्यो का विश्लेषण करते हुए शिलर ने सत्य को प्रमुख बताया और ऐसे मूल्यो का निर्धारण मानव

1 Corliss Lamont—Humanism As A Philosophy, p 52
2 वही, पृ० 57
3 वही, पृ० 58
4, वही, पृ० 59
5 Gardner Wilhemy—Humanistic Ethics—p 213
6 Revben Ahel—The Pragmatic Humanism of F C S Schiller —p 8

द्वारा होने पर ही शिलर ने सत्य और फलवाद को मानववाद का नाम दिया।[1] इस प्रकार मानववाद आधुनिक काल का एक प्रसिद्ध और वृहत् दर्शन बन गया और साम्यवाद, समाजवाद, प्रगतिवाद तथा अन्य अनेक रूपों मे मानव-हित के उद्देश्य को लेकर समाज के चिन्तकों के मनन का विषय बना।

मानव-हित के लिए मानववाद को धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक, भौतिकवादी, राजनीतिक तथा आनन्दवादी अनेक दर्शनों की प्रतियोगिता में आना पड़ा।[2] चाहे इन दर्शनों म कितना ही पारस्परिक विरोध रहा हो, इतना तो सत्य है ही कि मानववाद को एक महत्वपूर्ण जीवन दर्शन के रूप मे उन्हें स्वीकार करना पड़ा। इसका यह महत्व मनुष्य जीवन की शाश्वत समस्याओं और जीवन के प्रति स्पष्ट दृष्टिकोण की उपलब्धि के लिए किये जाने वाले प्रयत्नो के कारण हुआ। मानव किसी न किसी रूप मे अपने जीवन मे किसी दर्शन को लकर चलता है, एक व्यावहारिक पद्धति को आदर्श मानकर चलता है। मानव-जीवन के मौलिक तथ्यो, उचित एव समर्थ परिणामो की उपलब्धि के लिए तथा शाश्वत मूल्यो की स्थापना के लिए तर्क और विचारणा की दृष्टि स यह बहुत ही कठिन प्रयास है। यह मानव जीवन को एक ऐसी प्रेरणा से स्फुरित करता है और सामूहिक सामजस्य तथा एक सार्वभौमिक ध्येय की ओर अग्रसर करता है जो उन्हें व्यष्टिगत सकीर्णताओं से ऊपर उठा कर पारस्परिक सौहाद्र क लिए प्रेरित करता है। उदार एव सृजनात्मक शक्तियो क विकास क लिए मानववाद ही एकमात्र सर्वश्रेष्ठ जीवन दर्शन कहा जा सकता है।

मानव अथवा मानव-जाति के कल्याण स मानववाद का गहरा सम्बन्ध है। वह मानव के उत्थान और प्रगति के लिए प्रयत्नशील रहता है और उसका मार्ग दर्शन करता है परन्तु इससे मानववाद सम्बन्धी कोई स्पष्ट सैद्धान्तिकी धारणा नहीं बन सकती। इसलिए मानववाद के सम्बन्ध मे विभिन्न विद्वान के मतो का अवलोकन तथा अध्ययन नितान्त अनिवार्य है।

मानववाद

'मानववाद' शब्द का प्रारम्भ से ही विभिन्न लोगों ने पृथक्-पृथक् अर्थ लिया है और आज भी यह स्थिति वैसी ही बनी हुई है। उसके पाश्चात्य और भारतीय विचारको मे ये अर्थ प्रचलित रहे हैं, धार्मिकता का अभाव, मध्ययुगीन मनोवृत्ति का विरोध, इन्द्रियो अथवा इन्द्रिय-जन्य सुखो के महत्व

1 Revben Ahel—The Pragmatic Humanism of F C S Schiller p 93
2 S Radhakrishnan & P T Raju (Eds)—The Concept Man—p 28

की घोषणा, इहलोकवाद, बुद्धिवाद और व्यक्तिवाद, मानवीय अधितियो की अर्थात् साहित्य, दर्शन और धर्म से सम्बन्धित श्रेष्ठ-ग्रन्थो के अध्ययन मे अभिरुचि, मानव जीवन और अनुभूति के महत्व मे आस्था इत्यादि।[1]

प्रो० एडवर्ड पीटरचेने के अनुसार, '…सोलहवी शती के पश्चात् मानववाद से अभिप्राय उस दर्शन से रहा है जिसका केन्द्र और प्रमाण दोनो मनुष्य हैं।…'[2]

एँसाइक्लोपीडिया आफ ब्रिटेनिका म मानववाद को एक विचार-पद्धति बताते हुए लिखा है, '…मानववाद विचार अथवा क्रिया की वह सामान्य पद्धति है जो अलौकिक अथवा गुणात्मक दर्शन की अपेक्षा पूर्णतया मानव-कल्याण मे अभिरुचि लेती है। …'[3]

ऐसा ही विचार एक अन्य विश्वकोश मे भी दिया गया है, ' ''मानववाद विचार तथा जीवन की एक ऐसी पद्धति है जिसका मूल उद्देश्य मानव-जीवन की पूर्ण अनुभूति करना है।' '[4]

मानववाद को एक विशेष प्रकार का अध्ययन माना गया है और उसे सस्कृति के विकास मे सहायक कहा गया है, '…सामान्य रूप मे मानववाद शब्द का प्रयोग उस शिक्षा पद्धति के लिए किया जाता है जो एक बहुमुखी तथा विस्तृत सस्कृति के लिए प्राचीन-ग्रन्थो का अध्ययन सर्वोत्तम मानती है।'' '[5]

प्रसिद्ध अमेरीकन दार्शनिक प्रो० कारलिस लेमान्ट मानव और भौतिकवाद को मानववाद का विशेष अग मानते हैं और मानववाद को विश्व के लोगो मे पारस्परिक कल्याण-भाव का समझौता बताते हुए लिखते हैं, '…मेरे विचार स

1 Encyclopaedia of Social Sciences--Vol VII—p 541

2 " It may be a Philosophy of which man is the centre and sanction "
—Encyclopaedia of Social Sciences—Vol VII—p 541

3 "Humanism, in general any system of thought or action which assigns of predominant interest to the affairs of men as compared with the supernatural or the abstract"
—Encyclopaedia Britannica—Vol XI--p 876

4 Humanism is a way of thought and life which takes as its central concern the realisation of the fullest human career "
—Colliers Encyclopaedia—Vol X—p 244

5 "The word "Humanism" is often used for that theory of education which claims that a study of the classics is the best means for a well rounded and broad culture"
—The Encyclopaedia Americana—Vol XIV—p 488

मानव जाति की सृजनात्मक शक्तियों को मुक्त करना और उनका संसार के विभिन्न लोगों मे एक पारस्परिक सौहार्द्र-भाव को बनाये रखना वह जीवन पद्धति है जिसे 'मानववाद' का दर्शन कहा जा सकता है।'[1] यह कथन प्रो० लेमान्ट का मानववादी दर्शन के सम्बन्ध मे एक दृष्टिकोण मात्र है, जीवन-व्यवहार का एक स्वरूप है। वे बीसवी सदी के मानववाद की परिभाषा करते हुए लिखते हैं, 'मैं बीसवी शती के मानववाद की सक्षिप्त परिभाषा इस प्रकार कर सकता हूँ—'यह इस ससार मे तर्क और प्रजातन्त्र की पद्धति से समस्त मानवता के अधिकतम कल्याण के लिए भावयुक्त उल्लासपूर्ण सेवा का दर्शन है।'''[2] इस विचार को स्पष्ट करते हुए वे इसे सुखी और उपयोगी जीवन से सम्बन्धित सामान्य नर, नारी के चिन्तन और व्यवहार की रीति बताते हैं।[3]

मानववाद की एक निश्चित परिभाषा अथवा तर्कसगत व्याख्या बहुत कठिन है, इसका कारण बताते हुए अमेरीका के प्रसिद्ध चिन्तक प्रो० राल्फ बार्टन पेरी कहते हैं कि इस शब्द का मानव इतिहास के विभिन्न युगो, व्यक्तिगत मत मतान्तर तथा सामाजिक सदर्भ मे अनेक अर्थों में प्रयोग होने के कारण ही यह कठिनाई उपस्थित हुई है। यदि 'मानववाद' शब्द का विशेष अर्थ भी लिया जाय तो इसे एक प्रवृति अथवा एक प्रबल भावना के बहुमुखी अर्थ मे ही ग्रहण किया जायेगा जो कि मानव स्वभाव की अस्पष्टता को प्रतिबिम्बित करती है। इस कथन का विश्लेषण करते हुए वे 'मानववाद' के सम्बन्ध मे अपने विचार इस प्रकार व्यक्त करते हैं, 'मानववाद उन इच्छाओ, क्रियाओ तथा सिद्धियो को कहते हैं जिनसे सामान्य मनुष्य उत्कृष्ट-स्वभाव ग्रहण करता है। मानवीय आदर्श न तो सामान्य मनुष्य है और न अलौकिक व्यक्तित्व है, सक्षेप मे वह सामान्य मनुष्य की द्वैतावस्था और उसकी अनुभवातीतता की सम्भावनाए हैं।'' '[4]

1 " In my judgement the Philosophy best calculated to liberate the creative energies of mankind and to serve as a common bond between the different people of the earth is that way of life known as Humanism"

—Corliss Lamont-Humanism As A Philosophy—P 17

2 "To define tweentieth-century Humanism in the briefest possible manner, I would say that is a Philosophy of Joyous service for the greater good of all humanity in this natural world and according to the methods of reason and democracy " —वही, पृ० 18

3 वही, पृ० 19

4 "Humanism is the name for those aspiratic , activities and attainments through which natural man puts on super-

अपने इन विचारों को और अधिक स्पष्ट करते हुए प्रो० पेरी मानववाद को मनुष्य का समर्पित पथ बताते हैं जो उसे प्रकृति से विलग किए बिना ही श्रेष्ठ बनाता है। इसका लक्ष्य मनुष्य को सम्मानित करने वाली प्रतिभाओं और सिद्धियों के संदर्भ में उसके सम्बन्ध में विचार करना है। यह आवश्यक नहीं कि मानववाद को धर्म का अनुकल्प माना जाए। यह आस्तिक भावना से युक्त है, किन्तु ईश्वर की तुलना में मनुष्य को अनादृत नहीं करता और न मनुष्य को ही केवल श्रद्धा योग्य बताकर ईश्वर के स्थान पर उसे प्रतिष्ठित करता है।[1] मनुष्य में अपने को गौरवान्वित करने की क्षमता होती है। वह उसे किसी अन्य की अनुकम्पा से नहीं मिलती। इतना कहना भी पर्याप्त नहीं है कि मनुष्य केवल एकमात्र मोक्ष का इच्छुक है। मनुष्य श्रेष्ठ गुणों से भी गौरवान्वित होता है, प्रेम और करुणा के श्रेष्ठ ईश्वरीय गुणों तथा भौतिक प्रकृति को आध्यात्मिक पूर्णता के साथ संयुक्त करके मानववाद उन्हें सामान्य मनुष्य में प्रोद्भासित करता है।[2]

पाश्चात्य विद्वान श्री अब्राहम मानव और ईश्वर के मानववाद से सम्बन्ध का उल्लेख करते हुए कहते हैं, "...मानववाद का सारतत्व सृजनशील मनुष्य को सृष्टि-रचयिता ईश्वर के स्थान पर प्रतिष्ठित करना भी हो सकता है।..."[3] इनके कथन का मन्तव्य मानव को ईश्वरीय गुण युक्त करना ही है। इनके विचार से मानववाद जागरूक और अत्यन्त क्रियाशील विचार है।

प्रसिद्ध मानववादी चिन्तक डा० अलबर्ट श्विटजर मानववाद को नैतिकता, अहिंसा और आत्मिक-एकता का समन्वित रूप मानते हैं। वे कहते हैं कि मानव-कल्याण के लिए ग्रहण की गई विचार-पद्धति, जो समानता की अनुभूति से पोषित होकर मानव-मात्र के लिए गहरी सहानुभूति रखती है, मानववाद है।[4] इसका एकमात्र उद्देश्य विश्व-कल्याण है।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में मानववाद को सर्वाधिक प्रसिद्धि दिलवाने का श्रेय आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध विद्वान प्रो० शिलर को है।[5]

nature The humanistic model is neither natural man nor a supernatural substitute It is, precisely, duality of natural man and his possibilities of transcedence

—Ralph Barton Perry—The Humanity of Man—p 3

1 वही पृ० 21
2 वही पृ० 20
3 " one may say that the essence of humanism consists in the replacement of God the creator with man the creator "
—W E Abraham—The Mind of Africa—p 15
4 George Seaver—Albert Schweitzer—p 276
Lamont—Humanism As A Philosophy—p 32

वे मानववाद को सत्य के निकट मानते हैं और इसे सत्य ही कहते हैं ।[1] वे हते हैं कि मानववाद के मूल तक पहुँचने के कई मार्ग और स्रोत हैं । इतिहास के विकास की सहायता स वह प्रोटोगोरस के इस सिद्धान्त तक पहुँचता है कि मनुष्य सब वस्तुओ का माप दण्ड है । कोई जीव विज्ञान के योग्यतम अस्तित्व-दोष के सिद्धान्त तक पहुँचता है अथवा तर्कसम्मत आस्तिक विचार द्वारा धर्म को ही मानववाद का मूल-तत्व मानता है ।[2] प्रो० शिलर मानववाद की कोई स्पष्ट परिभाषा नही दे सके, इसलिए सत्य पर ही बल देते हैं और मानववाद को, आध्यात्मिकता की उपेक्षा न करते हुए, मानव को समझने की समस्या बताते हैं ।[3]

प्रो० शिलर के समकालीन प्रो० विलियन जेम्स ने भी मानववाद को सत्य के निकट माना है । किन्तु उन्होने इसे 'व्यवहारवाद' के रूप मे प्रस्तुत किया है । इनके विचारानुसार मानववाद एक ऐसा अनुभव है जो सत्य सिद्ध होने के लिए, चाह प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक हो अथवा विचारात्मक हो, तथ्यसम्मत होने पर बल देता है । '[4]

फ्रासीसी दार्शनिक जॉक मारिता ने मानव और सामाजिक कल्याण पूरित विचार मानववाद के सम्बन्ध मे अभिव्यक्त किये हैं, ' ' मानववाद मनुष्य को सत्यरूप मे मानव बनाने के लिए तथा भौतिक ससार और इतिहास मे अधिकाधिक समृद्ध बनाने के लिए उसे सासारिक कार्यों मे प्रवृत्त करने का प्रयत्न करता है ।[5] सबके हितचिंतन मे प्रवृत्त रहना ही मानव-स्वभाव का

1 Reuban Ahel—The Pragmatic Humanism of F C S Schiller —p 97

2 J H Muirhead (Ed)—Contemporary British Philosophy —p 401-404

3 "Humanism as an attitude of the human spirit and as a method of solving the problem of human knowing, rather than as a metaphysical doctrine about reality as such but I cannot a'together deny that it has metaphysical implications, and points to metaphysical consequences of considerable interest."
—J H Muirhead (Ed)—Contemporary British Philosophy-p 408

4 " An experience, perceptual or conceptual must conform to reality in order to be true "
—William James — Pragmatism p 418

5 " humanism (and such a definition can itself be developed alone on very divergent lines) essentially tends to render

परिष्कार करता है तथा उसके गौरव को बढाता है।

विश्वविख्यात फ्रांसीसी चिन्तक और विद्वान ज्या पाल सार्त्र ने मानववाद को अस्तित्ववाद कहा है जिसमे वह मानव-अस्तित्व पर बल देते हैं और उसको मानव कल्याण के लिए आवश्यक बताते हुए लिखते हैं, " किसी भी दशा म अस्तित्ववाद शब्द से हमारा तात्पर्य उस सिद्धान्त से है जो मानव जीवन को सुलभ बनाता है, साथ ही जो इसकी भी पुष्टि करता है कि प्रत्येक सत्य और प्रत्येक कार्य मानव की आत्मनिष्ठा से सम्बन्धित है। "[1]

पाश्चात्य विद्वानो, दार्शनिको, मनोविज्ञानशास्त्रियो तथा साहित्यकारो की भाति *भारतीय चिन्तको ने भी मानववाद के सम्बन्ध मे अपने विचार व्यक्त* किये हैं तथा उसकी परिभाषा और स्वरूप का विवेचन किया है। पाश्चात्य *विद्वानो ने मानववाद को अपने देशो के साहित्यिक, सामाजिक, आर्थिक* और नैतिक मापदण्डो मे होने वाले परिवर्तनो और जीवन के मूल्याकन सम्बन्धी भौतिकवाद के सदर्भ और पृष्ठभूमि की कसौटी पर कस कर देखा एव परखा है। इसके विपरीत भारतीय चिन्तको ने इनको अस्थिर-जीवन तथ्य माना है और मानववाद की आधारशिला, मानव-जीवन के धार्मिक तथा आध्यात्मिक, शाश्वत, अपरिवर्तनशील, अखण्ड और स्थायी मूल्याधारो को कसौटी बनाकर प्रस्थापित की है।

वर्तमान शती के विश्वप्रसिद्ध समाज सुधारक और मानव कल्याण के अग्रदूत महात्मा गांधी मानव-प्रेम को ही सर्वश्रेष्ठ और इस जीवन का मूल तत्व मानते हैं, 'मानव प्रेम दैवी अथवा सार्वभौमिक प्रेम का प्रथम सोपान है।'[2] गांधी जी समाज-सुधारक अधिक थे और दार्शनिक कम अत उन्होने जीवन के प्रत्यक्ष तथ्यो के अध्ययन पर सर्वाधिक बल दिया। इसीलिए उनकी विचारधारा मे नैतिक-दर्शन की प्रमुखता है।[3]

man more truly human and to make his original greatness manifest by causing him to participate in all that can enrich him in nature and in history (by concentrating the world in man as Schiller has almost said and by dialating men to the world) "

—Jacques Maritain — True Humanism, p XII

1 " In any case, we can begin by saying that existentialism, in our sease of the word, is a doctrine that does render human life possible, or a doctrine, also, which affirms that every truth and every action imply both an envoironment and a human subjectivity "

—Jean Paul Sartre — Existentialism and Humanism, p 24

2 M K Gandhi — Women — p 80

3 M K Gandhi— My Experiments with Truth, p 37

कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने मानवता के आदर्श और समाज का महत्व बताते हुए, मानव हित चिन्तन के विषय में बडे उदात्त भावो द्वारा मानवतावाद का स्वरूप चित्रित किया है, '' समाज मे उच्चरित होने वाली नाना ध्वनियाँ हमे ध्यान दिलाती हैं कि *मानव निहित अन्तिम सत्य,* बौद्धिकता अथवा अधिकार भाव नही है। अन्तिम सत्य उसकी बुद्धि-दीप्ति, जाति और रगभेद के समस्त बधनो से मुक्त सहानुभूति के विस्तार मे है। वह इस ससार को शक्ति भडार की मान्यता प्रदान करने म नही है अपितु आनवात्मा का आगार बनकर शाश्वत माधुर्य की सुन्दरता और ईश्वरानुभूति की अनन्त ज्योति प्रज्वलित करने मे है। यही जीवन का सत्य और मानवतावाद का व्यापक तथा शाश्वत भाव है।'[1] रवीन्द्रनाथ ने अपने इस विचार को अधिक स्पष्ट करते हुए परम सत्य और जीवन म एकत्व, सार्वभौमिक एकता और औचित्य का वर्णन करते हुए मानवतावाद पर प्रकाश डाला है, 'वह (ईश्वर अथवा परम सत्ता) एक है और मानव-जीवन की आवश्यकताओ को सदैव पूरा करता है, वह इस ससार का आदि और अन्त है, वह हम सत्य म अनुस्यूत करे भ्रातृ भावना और कल्याण-मार्ग की ओर प्रेरित करे।[2] यह भावना जीवन के आदि सत्य और श्रेष्ठता की प्रतिपादक है।

विश्वविख्यात महान भारतीय चिन्तक डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, इस शताब्दी के प्रमुख मानवतावादी विचारक और इस दर्शन एव विचारधारा के वर्चस्वी व्याख्याता हैं। उन्होने मानववाद के सम्बन्ध में अपने विचार इन शब्दो म अभिव्यक्त किए हैं, ' मानववाद उन धर्म रूपो के विरुद्ध एक न्याय सगत विरोध है जो धर्मनिरपेक्ष और धर्मापेक्षित को अलग करते हैं, अनित्य और नित्य को विभाजित करते हैं और आत्मा और शरीर को खण्डित करते हैं। धर्म सब कुछ है और कुछ भी नही है। धर्म की श्रेष्ठता इसमे है कि मानव-गौरव और मानव-व्यक्तित्व की रक्षा के लिए समुचित आदरभाव रखे।...'[3]

1 Rabindranath Tagore—Creative Unity, p 27

2 "He who is one, and who dispenses the inherent needs of all peop e and all times who is the beginning and the end of all things, may he unite us with the bond of truth, of common fellowship, of righteousness"

—Rabindranath Tagore—Religion of Man, p 237

3 "Humanism is a legitimate protest against those forms of religion which separate the secular and the sacred, divide time and enternity and break up the unity of soul and flesh Religion is all or nothing Every religion should have sufficient respect for the dignity of man and the right of human personality ."

—S Radhakrishnan—Recovery of Faith, p 49

भारतीय विद्वान श्री पी० टी० राजू मानववादियो द्वारा प्रतिपादित विभिन्न प्रकार के मानववादी सिद्धान्तो और मान्यताओ को स्वीकार करते हैं, परन्तु जो इनके केवल *एक ही पक्ष को लेकर मानववाद की व्याख्या करते हैं,* वह इन्हे मान्य नही है, इसलिए वे इन सब मे उपलब्ध सामान्य विशेषता और मूल तत्व पर बल देते हुए कहते हैं, '···सब प्रकार का भेद होते हुए भी सामान्यत' इन सब मे मानव और उसके मूल्यो पर बल देने की प्रवृत्ति है। परिनिष्ठित धर्मों, दर्शनो की रक्षा के लिए आदर प्रदर्शित करते हुए अथवा मानव को मानव-मूल्यो के पुनर्निर्धारण के लिए, मानववाद पुन अग्रदूत बनकर आया है। दर्शन मानव की उपेक्षा नही कर सकता, उसे मानव को अपना मूलकेन्द्र बनाना ही पड़ेगा।···'[1]

योगिराज अरविन्द ने मानवता के सम्बन्ध मे गहन चिन्तन-मनन किया है। वे मानव-कल्याण और मानवतावाद के लिए आध्यात्मिकता पर सर्वाधिक बल देते हैं। मानवता का आदर्श स्थापित करते हुए श्री अरविंद मानवतावाद का विवेचन इस प्रकार करते हैं, '···मानवता का अध्यात्म-धर्म ही मानव भविष्य की आशा है। इससे हमारा अभिप्राय बौद्धिक मतवाद विश्वासो विश्वधर्म से नही है। कोई सार्वभौम धार्मिक-पद्धति न होने से मानव समाज को इस *विश्वास द्वारा एकता मे सफलता नही मिली। वास्तव मे आन्तरिक* तत्व एक ही है। इस सत्य की क्रमश: अधिकाधिक अनुभूति हो रही है कि एक गूढ-तत्व है, एक दिव्य-सत्य है, जिसकी दृष्टि मे हम सब एक हैं और जिस तत्व का पृथ्वी पर मानव-जाति ही सर्वोच्च प्रमाण है तथा मानव-जाति एव मानव-प्राणी ही वे साधन हैं, जिनके द्वारा वह इस संसार मे अभिव्यक्त होता है। इसके साथ-साथ इस बात की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई चेष्टा भी होगी कि उक्त तथ्य का लोगो को केवल ज्ञान ही न रहे, वरन् पृथ्वी पर उस दिव्य तत्व का साम्राज्य भी स्थापित हो। इस प्रकार अपने समकालीन लोगो के साथ एकत्व हमारे निखिल जीवन का प्रमुख सिद्धान्त बन जाएगा। इससे व्यक्ति को यह अनुभूति होगी कि उसके समकालीन लोगो के जीवन मे ही उसका

1 " .In spite of these differences, however, there is a common trend in all . the emphasis on man and his values. Whether as an apology for the classical religions and *philosophies and their defence or as a reassertion* of man and his values, humanism has come to the forefront again Man cannot be ignored by any philosophy, he has to be retained at its centre......'
—S Radhakrishnan & P.T. Raju (Eds)—The Concept of Man, P.15

अपना जीवन पूर्ण होता है। मानव जाति को यह अनुभूति होगी कि केवल व्यक्ति के पूर्ण और मुक्त जीवन के आधार पर ही उसकी पूर्णता और स्थायी सुख अवलम्बित हैं।'[1]

समाजवादी दर्शन के पोषक श्रीमती एलन राय तथा श्री शिवनारायण राय मानववाद को सामाजिक ढाचे की धुरी और जीवन की सृजनात्मकता का आधार-स्तम्भ मानते हैं। मानववाद मे अपना मत प्रकट करते हुए वे कहते हैं, '···मानववाद में सक्रियता होती है, यह मनुष्य की सृजनात्मकता का दर्शन है, चिन्तन है।···'[2] इस विचार को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं, '···मानववाद हमारा जीवन-दर्शन है। इसका सम्बन्ध मानव तक ही सीमित है।'[3] मानववाद की प्रेरणा को बतलाते हुए वे एक स्थल पर उल्लेख करते हैं, '··· मानववाद की प्रेरणा स्वतन्त्र नर-नारियों के सार्वभौमिक समाज के विकास मे सहयोग देना है —एक ऐसा समाज जिसमे व्यक्तिगत जीवन तथा आचरण एव सामाजिक सम्बन्धों और सस्थाओ मे सृजनात्मकता तथा आह्लादमय सहयोग का भाव हो।··'[4]

बीसवी शती के महान साम्यवादी विचारक तथा दार्शनिक प्रो० एम० एन० राय ने मानव को प्रमुखता प्रदान की और इन्होने मानववादी प्राचीन धारणाओ को त्यागकर नवीन समाज की स्थापना के लिए मानव-मूल्यो पर बल दिया और मानववाद के विषय मे लिखा, 'मानववाद इतिहास की ही भाति प्राचीन है। युग-युग में इसका मूल तत्व यह विश्वास रहा है कि कुछ विशेष मानव-मूल्य हैं जो अन्य सभी विचारो को पार कर जाते हैं और जीवन का चरमोद्देश्य मानव व्यक्तित्व का विकास है।'[5] अपने मत को स्पष्ट करते

1 Sri Aurobindo—The Ideal of Human Unity,' p 378
2 "... .Humanism implies action, it is a philosophy of man's creativeness. . .."
—Ellen Roy & S Roy—In Man's own image, p 13
3 ......Huamanism is the philosophy of life, of the life of man Humanism only goes up to the extent that concerns man's. life. ...."
—Ellen Roy & S Roy—In Man's own Image, p 24
4 वही पृ० 7
5. ......Humanism is as old as history The common feature of Humanism throughout the ages has been the belief that there are certain human values which transcends all other considerations, and to develop the human personality is the main purpose of life
—M N Roy —New Humanism, p 105

हुए वे आगे बताते हैं कि अब युग बदल गया है और प्राचीन मानववादी मूल्य भी बदल गये हैं, इसलिए वे मानववाद को नव-मानववाद का स्वरूप प्रदान करते हुए लिखते हैं, '...परन्तु आज वैज्ञानिक ज्ञान और इतिहास का गहन अध्ययन मानववाद को मानव-स्वभाव सम्बन्धी गलत धारणाओ के सम्बन्ध मे बताता है और इस प्रकार मानववाद को समस्त विरोधो और भ्रान्तियो से मुक्त करता है, अत हम इसे नव-मानववाद कहेगे।...'[1] एक अन्य स्थान पर प्रो० राय मानववाद की आवश्यकता बतलाते हुए उसके वास्तविक स्वरूप का चित्रण इन शब्दो मे करते हैं, '...आधुनिक सभ्यता का सास्कृतिक और नैतिक सकट समस्त ससार के अनुभूतिमय और बुद्धिमान मनुष्यो को मानववादी परम्परा की ओर उन्मुख कर रहा है। मानववादी पुनरुत्थान के आन्दोलन की प्रवृत्ति प्रतिदिन दृढतर होती जा रही है ...जनजीवन मे नैतिक मूल्यो का पुनरावर्तन अत्यन्त अनिवार्य है।'[2]

पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानो ने मानववाद को अपने अपने दृष्टिकोण से जैसा समझा, उसे प्रस्तुत किया। स्वभावत प्रत्येक व्यक्ति मे अपने वैयक्तिक विचारो पर अटल रहने, उनको ही उचित, तर्कसगत मानने का प्रच्छन्न पूर्वाग्रह होता है। इसीलिए उनके विचारो द्वारा पोषित परिभाषा मे और व्याख्याओ मे गुण-दोष, भाव-अभाव, अव्याप्ति-अतिव्याप्ति का अनुभव होता है। इन परिभाषाओ मे विद्वानो ने आन्तरिक, बाह्य, लौकिक और अलौकिक तत्वो का विवेचन किया है मानव, उसके व्यवहार और उसके जीवन-लक्ष्य को मानववाद का मूल तत्व माना है और उसका भौतिक, नैतिक एव आध्यात्मिक दृष्टि से चिन्तन मनन किया है। ये सभी मानववाद और मानवतावाद के आवश्यक और सृजक तत्व हैं, किसी की उपेक्षा सम्भव नही है, सबको ही समन्वित रूप मे स्वीकार और ग्रहण करने पर ही इस दर्शन या विचारधारा को एक सर्वग्राह्य, सर्वमान्य और व्यापक स्वरूप दिया जा सकता है।

दर्शन और चिन्तन की दो धाराएँ हमे वेदो के दो प्रमुख देवताओ वरुण और इन्द्र मे मिलती हैं। वरुण नीतिवादी, मर्यादावादी हैं और इन्द्र आनन्दवादी

1 " But today scientific knowledges as well as a careful reading of history enable Humanism to challenge the wrong nations about human nature and thus free itself from all contradictions and fallacies Therefore we call it New Humanism ..."

—M N Roy—New Humanism—p 105

2 M N Roy—Reason, Romanticism and Revolution—Vol I (Preface)—p 3

है। यज्ञ भी ग्रानन्द प्रधान थे, सुख-वैभव ग्रौर इच्छापूर्ति के लिए किये जाते थे। साधना, योग, दु ख सहिष्णुता का भाव उनमे नही होता था, यह सयम ग्रौर मर्यादावाद को प्रधानता देने वालों मे ही था। मानव-कल्याण ग्रौर विश्व-कल्याण के चिन्तको को भी इन दोनों धाराग्रो ने प्रभावित किया ग्रौर उन्होंने उसी प्रभाव विशेष के ग्रनुरूप मानववाद ग्रौर मानवतावाद को समभा ग्रौर उसका विवेचन किया। पश्चिम मे सुकरात, प्लेटो ग्ररस्तू ने जहां ग्राध्या-त्मिकता सयम ग्रौर मर्यादा पर बल दिया, वहाँ सुखवादी यूनानी दार्शनिक एरिस्टियस ग्रौर उसके ग्रनुयायी तथा एपीक्यूरस ग्रौर उसके ग्रनुयायी एव इंग्लैंड मे बेंथम तथा जान स्टुग्रर्ट मिल विख्यात सुखवादी हुए हैं। भारत मे सुखवाद के प्रचारक चार्वाक दार्शनिक हुए हैं, जिनका लक्ष्य कामनापूर्ति ही था। भारतीय विचारधारा में ग्रानन्द ग्रौर सुख के ग्रर्थ पाश्चात्य विचारधारा मे भिन्न हैं। सुख शरीर से सम्बन्धित है ग्रौर ग्रानन्द ग्रात्मा से। ग्रानन्द नित्य है, ग्रात्मा का स्वभाव ग्रौर लक्षण है। सुख ग्रनित्य है, दु ख का विपरीत भाव है, यह शारीरिक ग्रनुभूतियाँ हैं, ग्रात्मिक नही। यह क्षण क्षण मे परिवर्तित होता है।

कुछ लोगो ने कामनाग्रो की पूर्ति को सुख ग्रौर ग्रपूर्ति को दु ख माना है। मानव जीवन मे सुख-दु ख की भावनाएँ व्याप्त हैं, वह सभी प्रयत्न दु ख से मुक्ति प्राप्त करने के लिए करता है। दु ख ग्रौर बाधाएँ मानव को कल्याण ग्रौर क्षेम की ग्रोर निरन्तर बढाते रहते हैं। वह दु ख पीडा, ग्रधर्म का विनाश कर सुख समृद्धि का, ग्राशा का प्रसार करता है ग्रौर सबको इसका सदेश भी देता है। जो सुखद है—वही धर्म है, जो दु खद है वही ग्रधर्म है। ग्राध्या-त्मिकता को मानने वाले क्षणिक ग्रौर शारीरिक सुख को मान्यता नहीं देते, वे जीवन मे समता, निरपेक्षता, ग्रात्म-परिष्कार ग्रौर मोक्ष को महत्व देते हैं, धर्म ग्रौर मोक्ष चारों पुरुषार्थों मे श्रेष्ठ हैं। मानव-कल्याण ग्रौर मानव जीवन का चरम लक्ष्य उनके विचार से सुख दु ख को समान मानकर मोक्ष प्राप्ति ही है। सुखवाद के ग्रनुसार केवल ग्रर्थ ग्रौर काम पुरुषार्थ हैं, जीवन के ग्रन्तिम लक्ष्य हैं। स्थूल भेद से ये सुख के भौतिक या दैहिक, बौद्धिक ग्रौर ग्राध्यात्मिक रूप हैं। विद्वानो ने मानववाद ग्रौर मानवतावाद का विश्लेषण, उसका स्वरूप निर्धारण इसी ग्राधार पर किया है।

इतिहास के विकास ग्रौर परिवर्तन के साथ मानववाद का स्वरूप, उसकी परिभाषा भी बदलती रही है।[1] यूनानी दार्शनिकों ने मानववाद का मूलकेन्द्र मानव को ही माना है।[2] परन्तु वह ग्रस्पष्ट है। प्रो० पीटर चैने ने मानववाद

1 Ellen Roy & S Roy —In Man's own Imaga—p 5
2 S Radhakrishnan—An Idealist View of Life—p 64

की जो व्याख्या की है, वह बहुत स्पष्ट न होते हुए भी इतनी आकर्षक है कि किसी को अग्राह्य नहीं है। किन्तु वह वैसी ही अस्पष्ट है जैसे यूनानी सोफिस्ट प्रोटेगोरस की यह उक्ति कि 'मनुष्य ही सब चीजों का मापदण्ड है।' इस व्याख्या में यह दोष है कि कोई भी मनुष्य शब्द का ठीक अर्थ नहीं बतलाता, क्योंकि इसका अर्थ ज्ञानवान एवं विवेकी पुरुष और मूर्ख, सामान्य मनुष्य और असामान्य अथवा अवसामान्य व्यक्ति सब से हो सकता है, सब समान रूप से मानववादी दर्शन का प्रमाण हो सकते हैं।

विश्वकोषों में मानववाद को, मानव-कल्याण में अभिरुचि लेने वाली सामान्य भावना या मानव-जीवन की पूर्ण अनुभूति करने वाली पद्धति तथा एक विशेष शिक्षा-पद्धति बताया गया है। इनमें यह तो स्पष्ट है कि मानववाद का प्रत्येक स्थिति में मानव और मानवकल्याण से ही सम्बन्ध है। परन्तु वह मानवकल्याण किस प्रकार का है—भौतिक अथवा आध्यात्मिक। यदि उसे अलौकिक और गुणात्मक से अलग माना गया है तो वह भौतिक ही हो सकता है। इसके अतिरिक्त यदि वह जीवन के बाह्य (भौतिक) तृप्ति के पक्ष को ही मान्यता देता है तो वह अपूर्ण है। मानवजीवन की पूर्ण अनुभूति करने वाली व्याख्या ने अनुभूति की पद्धति को स्पष्ट नहीं किया। इसके दो अर्थ हो सकते हैं, क्या वह जीवन की मूल समस्याओं सम्बन्धी चिन्तन-मनन है अथवा क्षणिक इच्छाओं की पूर्ति है। मानववाद एक सवग्राह्य, सामान्य दर्शन हो सकता है, वह किसी एक मत, विचार अथवा सम्प्रदाय के पूर्वाग्रह को लेकर नहीं चल सकता। इससे हम ये बातें ज्ञात होती हैं कि मानव, उसका जीवन और उसका कल्याण मानववाद के अनिवार्य तत्व हैं।

इस दर्शन को कुछ विद्वानों ने एक ऐसी शिक्षा-पद्धति माना है जो सांस्कृतिक प्रगति में सहायक होती है। मानववाद के सम्बन्ध में इस प्रकार का विचार योरोप में होने वाले पुनर्जागरण काल के शिक्षा पद्धति सम्बन्धी परिवर्तन से आया, यह एक विशेष मतवाद से प्रभावित थी तथा मानववाद की तरह मुक्त, बन्धन रहित न होकर परम्परागत रूढ़ि और कट्टर मतवाद से प्रभावित थी।[1] इसलिए ऐसी संकीर्ण भावना मानववाद को स्वीकार्य न होने से यह मानववाद का लक्षण नहीं हो सकती। इतना अवश्य कह सकते हैं कि शिक्षा और संस्कृति का विकास मानव-कल्याण के आवश्यक अंग हैं।

प्रो० पैरी ने भी शिक्षा सम्बन्धी तत्व पर अपनी परिभाषा में प्रकाश डाला है। परन्तु वह इस बात को किसी सीमा तक स्पष्ट करने में सफल हो सके हैं कोई भी ऐसा माध्यम, सम्बन्ध, स्थिति अथवा क्रिया, जो मानवीय हो, जो

1 Jacques Maritain—True Humanism—p 15

उदार-भावमूलक हो, जो हमारे ज्ञान का विस्तार कर सके, हमारी विचार-शक्ति को सन्तुलित और व्यापक बना सके, सहानुभूति जागृत कर सके, मानव-गौरव को प्रेरित कर सके और मानवोचित सौहार्द उत्पन्न कर सके तथा मानव की बहुमुखी उन्नति, बाह्य और आन्तरिक विकास, परिष्कार और हित मे सहायक हो,[2] इसकी परिधि में आता है। इसके विचार से मानववाद मानव-जीवन और मानव-कल्याण का एक समन्वयात्मक रूप है, जो विकृति को सुकृति मे, दोष को गुण मे परिवर्तित कर देता है, वह मानव को मानवोचित गुणो से सम्पन्न करने का प्रयत्न करता है। वे भौतिक समृद्धि को आध्यात्मिक समृद्धि का साधन मानते हैं। प्रो० पेरी की परिभाषा पीटर चैंने तथा विश्वकोषो मे दी गई परिभाषाओ से इस दृष्टि से अधिक व्यापक, स्पष्ट और न्यायसगत तो है ही, साथ ही मानववाद के स्वरूप को भी स्पष्ट करती है। वे मानव के बहुमुखी विकास, सिद्धियो, सन्तुलित जीवन और मानव को श्रेष्ठ बनाने वाले प्रेम, करुणा, सौहार्द, समानता के गुणो का भी मानववाद मे बताकर उसकी अपूर्णता को दूर करते हैं।

अपनी मानववाद की परिभाषा मे प्रो० कालरिस लेमान्ट भौतिकवाद को मानववाद का आवश्यक अग बताते हुए मानव मे सृजनात्मक शक्तियो के विकास पर बल देते हुए विध्वसात्मकता की आलोचना करते हैं। इनकी दृष्टि से मानववाद समाज म पारस्परिक कल्याण और सद्भावना सम्बन्धी समझौता है। भौतिकवाद धर्म का विरोध करता है। योरोप मे पुनर्जागरण काल मे मनुष्य को अपना व्यक्तित्व चारो ओर विकसित करने का जो आदर्श प्रतिष्ठित था, वह भौतिकवादी दृष्टिकोण से प्रभावित था। प्रो० लेमान्ट, प्रो० पैरी की भाति धर्म और अलौकिकता को कोई स्थान नही देते।

प्रो० लेमान्ट ने मानव को केन्द्र मानने और सृजनात्मकता पर बहुत बल दिया है, जो प्रो० पीटर चैंने के विचार से मिलता है। वास्तव मे दार्शनिक चिन्तन का विषय स्वय मनुष्य है, वह मनुष्य, जो मूल्यो का वाहक और सृष्टा है, जैसा कि कवि पोप ने कहा है, मानव जाति के अध्ययन का उचित विषय मनुष्य है। इसी प्रकार दार्शनिक अध्ययन का विषय मनुष्य है, दर्शन सास्कृतिक अनुभव के विश्लेपण, व्याख्या और मूल्याकन का प्रयत्न है। मनुष्य को आत्म-ज्ञान सम्पादित करना चाहिए, ऐसा विचारक लोग प्राचीन-काल से कहते आए हैं, यह शिक्षा उपनिषदो मे और यूनानी विचारक सुकरात के दर्शन मे भी मिलती है। मानववाद को मानव-केन्द्रित कहने का एक और अर्थ भी निकलता है कि इस जीवन दर्शन मे परलोक और पारलौकिक शक्तियो के लिए स्थान नही है। हम मनुष्य से ऊँची किसी सत्ता मे विश्वास नही रखते। ऐसा मानववाद के

2 Ralph Barton Perry—The Humanity of Man—p 55

प्रकृतिवादी विचारको ने माना है जो परलोक को नही मानते । प्रकृतिवाद प्राय भौतिकवाद का पर्यायवाची शब्द बन गया है । परन्तु भौतिक-विज्ञान मानव-जीवन का, उसकी अनुभूति का सफल अध्ययन नही कर सकता । मानवीय सत्य इनकी पकड मे नही आ सकते । इसलिए मानवीय जीवन तथा अनुभूति के प्रति भौतिकवादी दृष्टिकोण समीचीन नही है । प्रो० लेमान्ट ने सृजनात्मकता, स्वतन्त्रता और मानव मानव मे मैत्री-भावना को मानववाद मे स्थान देकर इसका स्वरूप स्पष्ट करने मे बहुत सहायता दी है ।

डा० अलबर्ट श्वित्जर ने प्राणीमात्र की समानता को महत्व देकर मानववाद के मूलभाव को स्पर्श किया है । इस समानता की भावना के लिए वे नैतिक गुणो का विकास और उनका पोषण अनिवार्य मानते हैं । इस विचार से मिलता-जुलता श्री अब्राहम का ईश्वरीय-गुणो की स्थापना का मत भी मानववाद मे अलौकिक अथवा दैवी विशेषताओ का सकेत करता है ।

विलियम जेम्स ने फलवाद अथवा व्यवहारवाद दर्शन की स्थापना करते हुए मानववाद को सत्य, वास्तविकता के निकट माना । मानव जीवन मे प्रयोजन से अर्थ केवल उस स्वार्थ से नही है जिसका सम्बन्ध उसके अस्तित्व तथा सुरक्षा से है अपितु मनुष्य के कतिपय आत्मिक या आध्यात्मिक प्रयोजन से भी है । ससार म सत्य के फल, परिणाम और व्यवहार को मानव की कसौटी पर कस कर देखा जाता है, प्रत्येक चिन्तन, दर्शन अथवा कार्य का सम्बन्ध मानव से है ।[1] शिलर भी इसस सहमत है, प्रत्येक बात मे सत्य और वास्तविकता की खोज मानव सत्य की उपलब्धि के लिए की जाती है । सत्य की खोज करना मानववाद का गुण है । सत्य की खोज अनुभव द्वारा व्यावहारिक रूप ग्रहण कर लेती है । प्रो० जेम्स कहते हैं, व्यवहारवाद के अनुसार सत्य को व्यावहारिक जीवन में देखा-परखा जाता है और अनुभव द्वारा किसी सत्य को प्रमाणित किया जाता है । सत्य से आशानुरूप फल प्राप्ति होने पर ही वह सत्य है ।[2] मानववाद इसीलिए सब से महान और श्रेष्ठ सत्य है क्योकि इसका व्यावहारिक फल अवश्य ही प्राप्त होता है ।

शिलर और जेम्स के मतों मे काफी साम्य है । शिलर मानव को लेकर चले, जेम्स मानव निहित सत्य अथवा उसके व्यावहारिक रूप से प्राप्त होने वाले फल को । शिलर ने मानव से अर्थ मानव-जाति से लिया है । इससे ज्ञान होता है कि सम्पूण मानव-जाति ही मानवीय वस्तु-बोध का प्रतिमान हो सकती है ।

1 J H Muirhead (Ed)— Contemporary British Philosophy—(Why Humanism ?— F C S Schiller)—p 387

2 Frank N Magill (Ed)— Masterpieces of World Philosophy —p 787

शिलर ने अपने मानववाद मे निम्न वक्तव्यो पर बल दिया ।[1] (क) मनुष्य का व्यावहारिक जीवन या व्यवहार मुख्य है और चिन्तन गौण । (ख) विशुद्ध बौद्धिकता अथवा विशुद्ध चिन्तन का विशेष महत्व नही है, समस्त चिन्तन व्यावहारिक प्रयोजनो की पूर्ति के लिए होता है । (ग) ज्ञान के क्षेत्र म कृति शक्ति का विशेष-स्थान होता है । इस प्रकार समस्त सच्चा ज्ञान उपयोगी होना है और निरुपयोगी ज्ञान मिथ्या होता है । (घ) जर्मन दार्शनिक काट ने व्यावहारिक बुद्धि की मुख्यता का उल्लेख किया है, शिलर उसे मानते हुए श्रेय की धारणा को प्रधान तथा सत्य और यथार्थ की धारणाओं को गौण मानते हैं । शिलर के मानववाद मे व्यावहारिक श्रेय को मूलतत्व कहा जा सकता है । हमे व्यावहारिक जीवन की श्रेष्ठता द्वारा श्रेय का प्रसार मानव-कल्याण के लिए करना चाहिए ।

फ्रेंच विचारक जॉक मॉरिता आन्तरिक मानवीय गुणों का विकास करने पर बल देते हुए भौतिक जीवन के आनन्द को क्षुद्र मानते हैं और त्यागमय वीरोचित जीवन की कामना को मानववाद मे आवश्यक बतलाते हैं ।[2] मानववाद मे धर्म और ईश्वर का स्थान प्रमुख है । इसके साथ ही वे नैतिक और सामाजिक लक्ष्यो की पूर्ति को अनिवार्य मानते हैं । अन्य पाश्चात्य विचारकों की भाति उनका मानववाद मानव केन्द्रित और एकागी नहीं है ।[3] जाक मॉरिता, डा० श्विट्ज़र, प्रा० अब्राहम और प्रो० पेरी के मतो मे मानववाद के सम्बन्ध मे बहुत समानता है ।

सार्त्र मानववाद मे मानव अस्तित्व को ही महत्व देते हैं । वे इसके लिए पूर्ण व्यक्ति-स्वातन्त्र्य आवश्यक मानते हैं, मानव स्वतन्त्र है, उस पर किसी प्रकार का कृत्रिम बन्धन नही होना चाहिए, वह अपने सम्बन्ध मे स्वय निर्णय कर सकता है, किसी का उसे उपदेश देने तथा निर्देशित करने का अधिकार नही है। मानव-कल्याण किसी मत, सम्प्रदाय, सिद्धान्त की स्थापना द्वारा नही हो सकता । उसके अस्तित्व का विकास ही उसका कल्याण है । मानववाद के मतवाद मुक्त और सम्प्रदाय रहित होने का विचार सार्त्र और प्रो० पेरी में समान है । स्वतन्त्रता का पक्ष कारलिस लेमान्ट भी लेते हैं, परन्तु वह इसको भौतिकता से मुक्त नही मानते । सार्त्र के अस्तित्ववाद मे भी वही अभाव है जो पीटर चेने मे है, मानववाद का मानव केन्द्रित होकर रह जाना इसकी व्यापकता को कम कर देता है । स्व-केन्द्रित आत्मनिष्ठा मानवीय गुणा का विकास रोक देती है ।

1 डा० देवराज—संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० 15
2 वही, पृ० 17
3 Jacques Maritain—True Humanism—p XIV

पाश्चात्य विचारको के मतो का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि मानववाद विषयक उनका मूल-भाव नैतिकता ही है। वह नैतिकता जो ऐहिक जीवन, भौतिकवाद तथा सासारिक सुख तक सीमित है तथा जान स्टुअर्ट मिल के मत को पुष्ट करती है जो प्रत्येक वस्तु की उपयोगिता या भौतिक दृष्टि से ही मूल्याकन करती है,[1] आध्यात्मिकता अथवा पारलौकिकता के लिए उसमे कोई स्थान नही है।

महात्मा गाधी के मानवतावादी विचारो मे भी नैतिक-दर्शन प्रमुख है किन्तु वह आध्यात्मिकतायुक्त है। वे आत्म-प्रसार और मानव-प्रेम द्वारा ही विश्वकल्याण मानते हैं। मानवतावाद के सम्बन्ध मे गाधीजी बुराई को भी अच्छाई मे परिवर्तित कर देने का विश्वास रखते है, विश्व-मैत्री भावना ही उनका एकमात्र साध्य है।[2] उनके विचार से सब लोग ईश्वर की दृष्टि मे उसी प्रकार समान हैं जिस प्रकार पिता के लिए सन्तान मे भेदभाव न होकर एक सा ही स्नेह-भाव होता है।

मानवतावाद के लिए रवीन्द्रनाथ टैगोर ने मानवीय-धर्म का पालन आवश्यक माना है। मानव ग्रह और विकार ही इसमे बाधक होते हैं। मानव-धर्म सबके लिए समान ग्राह्य है, वह भेदभाव और विकार-रहित है तथा जीवन के चिरतन, शाश्वत, सृजनात्मक मूल्यों को ही स्वीकार करता है। रवीन्द्रनाथ के मानवतावादी विचारो मे सबसे महत्वपूर्ण स्थान है समष्टि-मानव के मानव-धर्म के उदात्त रूप का।[3] व्यक्ति-मानव सीमाओ मे बधा हुआ है, इसका विचार, चिन्तन, सत्य उसी स्थिति मे ग्राह्य है जब वह व्यापक रूप मे समष्टि-मानव के अनुकूल हो। समष्टि-मानव प्राणीमात्र के साथ तादात्म्य स्थापित कर स्वार्थ-बद्ध सकीर्णताओ से ऊपर उठ जाता है।

डा० राधाकृष्णन ने मानवतावाद मे उन तत्वो का खण्डन किया है जो अखण्डता, अभिन्नता और एकता के विरोधी हैं। मानव-मानव म पारस्परिक वैमनस्य, फूट, मतभेद को दूर कर उसे एक विराट् रूप प्रदान करना मानवतावाद की सिद्धि है। मानव के रूप मे मानव के प्रति आदर रहे। महात्मा गांधी और डा० राधाकृष्णन की व्याख्याओ का विषय-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, इसमे मानववाद और मानवतावाद का रूप बिल्कुल अस्पष्ट हो गया है। ये धर्म-सगत एव धर्महीन दोनो को मान्यता देते हैं। इसमे यह समस्या आती है कि मानवतावाद किसको अधिक ग्राह्य माने, दोनो को स्वीकार करन स विचार का रूप तो अस्पष्ट होता ही है, वह विकृत भी हो जाता है। क्या दैवी-शक्ति

1 Hector Hawton (Ed.)— Reason in Action—p 133
2 M K Gandhi—All Men are Brothers—p.121
3 डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी—मृत्युजय रवीन्द्र, पृ० 236-237

ग्रौर मानवीय शक्ति समान हैं, धार्मिक सिद्धान्तों की दृष्टि से ऐसा नहीं है, लौकिक एवं अलौकिक में भारतीय ही नहीं, पाश्चात्य विद्वानों ने भी अन्तर माना है। डॉ० राधाकृष्णन एक स्थान पर मानववाद को बुद्धिवादियों का धर्म बतलाते हैं[1], उसे सामान्य-स्तर पर ले आते हैं। साथ ही वे असामान्य अवस्था का भी उल्लेख करते हैं, मनुष्य में वह श्रेष्ठ तत्त्व बताते हैं जो उसे अलौकिक की ओर ले जाता है।[2] बुद्धिवाद और आत्मवाद अथवा भौतिकता और आध्यात्मिकता दोनों का एक साथ पालन नहीं हो सकता। डॉ० राधाकृष्णन के मत में मानवहित के लिए बाह्य तत्त्वों की अपेक्षा आन्तरिक तत्त्वों और उनकी एकता पर अधिक बल है। अन्त प्रेरणा का जीवन-कल्याण में बहुत महत्त्व है। राधाकृष्णन उसी धर्म और मत को मान्यता देते हैं जो मानव के प्रति आदर रखता है।

पी० टी० राजू के विचार से मानव-मूल्यों की स्थापना ही मानववाद है और चिन्तकों के अध्ययन का विषय भी मानव ही है। श्री राजू की परिभाषा में दो बातों का अभाव है कि कौन-से मानव-मूल्यों की स्थापना मानववाद करता है और वह किस प्रकार का मानव-अध्ययन करता है।

आध्यात्मिक शक्तियों का विकास अरविन्द के विचार में मानवतावाद का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। समस्त ब्रह्माण्ड में एकात्म-भाव का अनुभव करके ही हम सच्चे मानवतावाद की प्रतिष्ठा कर सकते हैं। अरविन्द का मानवतावाद अलौकिक सत्ता से प्रभावित और सम्बद्ध होते हुए भी भौतिक संसार का तिरस्कार नहीं करता, किन्तु इसे साध्य नहीं मानता। अरविन्द मानवतावाद के विश्व-रूप का वर्णन करते हैं जो सभी प्रकार के भेदभावों और इनको उत्पन्न करने वाले कारण जाति, समाज, पद, वर्ग, वर्ण का घोर विरोध ही नहीं करता, मानव-जाति के विकास में बाधा उत्पन्न करने वाली विषमताओं के विरुद्ध संघर्ष भी करता है।[3] अरविन्द आध्यात्मिकता द्वारा समस्त मानव-समाज को एक सूत्र में ग्रन्थित देखने के अभिलाषी हैं। अरविन्द का मानवतावाद अत्यन्त

1 Dr S Radhakrishnan—Eastern Religion and Western Thought—p 16

2 "True Humanism tells us that there is something more in man than is apparent in his ordinary conciousness, something which frames ideals and thoughts, a finer spiritual presence, which makes him dissatisfied with mere earthly pursuits "
वही, पृ० 25

3 Sri Aurobindo—The Ideal of Human Unity—p 341

व्यापक है, वह आन्तरिक-विकास को बाह्य विकास से अधिक महत्त्व देता है तथा मानव-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर मोक्ष, निर्वाण, कैवल्य के बाद की स्थिति का भी चिन्तन करता है।

प्रो० एम० एन० राय, श्रीमती ऐलन राय और प्रो० शिवनारायण राय मानव-कल्याण के लिए साम्यवादी सिद्धांतो की स्थापना आवश्यक बताते हैं। वे पाश्चात्य दार्शनिको, समाज-चिन्तको की भाति मानव और समाज के नैतिक और भौतिक कल्याण को अनिवार्य बतलाते हैं और इसीके प्रसार द्वारा सार्वभौमिक समता, एकता, पारस्परिक मेल, सह-अस्तित्व को सम्भव बताते हैं। प्रो० कारलिस लेमाट तथा सार्त्र के विचार इनके मानववाद के अधिक निकट है। प्रो० राय के समाज-कल्याण मे प्रजातत्र की श्रेष्ठ शासन व्यवस्था का विचार भी है। प्रो० राय का मानववाद, नव-मानववाद है जो योरोपीय मध्यकालीन पुनर्जागरण की भाँति समाज, आर्थिक-व्यवस्था, नैतिक आचार-विचार की फिर से नव-स्थापना चाहता है और तार्किकता, व्यक्तिवाद, सार्वभौमिकता को प्रजातत्र की स्थापना के लिए अनिवार्य मानता है। समाज मे एकता के लिए नैतिक परिष्कार तथा सामूहिक गौरव के लिए वैयक्तिक सकीर्णता का परित्याग मानववाद का कायाकल्प कर सकता है।[1] प्रो० राय के नव-मानववाद मे सर्वांगीण परिवर्तन द्वारा नव-मानव-मूल्यो की स्थापना करके सार्वभौमिक मगल की कामना की गई है।

मानववाद मे सभी परिभाषाओ और मतो के विवेचन एव विश्लेषण द्वारा मानव-कल्याण एव सार्वभौमिक मगल के लिए दो तथ्य उपलब्ध होते है—भौतिक साधन और आध्यात्मिक साधन। पाश्चात्य विद्वान मानव को केन्द्र मानकर, अलौकिक-सत्ता अथवा तत्वो को अस्वीकार कर, मानववादी विचारधारा का विवेचन करते हैं। मनुष्य ही सत्य है क्योकि वह अस्तित्ववान् है, इसलिए वही यथार्थ है। भारतीय मत समस्त ब्रह्माड को, अलौकिक सत्ता को, आत्मा को प्रधान मानकर सार्वभौमिक मगल की कामना का विचार प्रस्तुत करता है। इससे दो अर्थ और भी निकलते हैं, पहली विचारधारा धर्म-निरपेक्ष है और दूसरी धर्म-सापेक्ष। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि मानववाद एक मत अथवा सम्प्रदाय विशेष न होकर मानव और ससार को लेकर चिन्तन करने वाले लोगो का दृष्टिकोण है, एक जीवन-दर्शन है।

भौतिकवादी दृष्टिकोण से मानव-कल्याण मनुष्य को ससार के इस जीवन मे अधिकतम रस लेने और उसका उपयोग करने के लिए प्रेरित करता है। *भारतीय दृष्टिकोण से इस भावना मे सृजनात्मकता, औदात्य, त्याग और* विराट् तत्व का सर्वथा अभाव है एव तुच्छभाव और क्षुद्रता का आभास होता

1 M N Roy—New Humanism—p 45

है तथा इसमे स्थिरता, शाश्वत, सनातन लोक-कल्याण की श्रेष्ठता नही है। नैतिकता, स्वतन्त्रता, प्रजातन्त्र, सामाजिक समता, शोषण से मुक्ति, एक दूसरे के प्रति मैत्री-भावना, भ्रातृत्व, मन -परिष्कार, सयम, औदात्य, त्याग-भावना, सभी इस ओर सकेत करते हैं कि मनुष्य ही मनुष्य के कल्याण मे सहायक हो सकता है, इस पवित्र ध्येय की पूर्ति कर सकता है। मनुष्य का प्रथम कर्तव्य है कि वे निश्चल भाव से मानवता का समादर करते हुए एक दूसरे की रक्षा और उन्नति मे सहायक हो। यही मानव धर्म और मानवीयता है। भौतिक और आध्यात्मिक विकास द्वारा 'सर्वात्म भूतेषु' का भाव भी इसी मे निहित है। मानवतावाद मे मानव प्राणीमात्र को आत्मदृष्टि से देखता हुआ अनैतिक व्यवहार नही करता, अपितु सदाचार-मूलक सज्जनता, सहिष्णुता, स्नेह, सौहार्द, सरलता आदि सद्गुण प्रकट करता है, जिसम प्राणीमात्र को परितोष होता है।

निष्कर्षत : मानववाद वह जीवन-दर्शन है जो लोकमगल की भावना का एव भेदभाव, पूर्वाग्रह, दुराग्रह रहित औदात्य और त्याग का दिव्य सदेश देता है तथा मानव के लोक-परलोक, अन्त -बाह्य परिष्कार द्वारा उसे मानवोचित गुणो से युक्त करके पूण विकास की ओर अग्रसर करता है।

मानवतावाद

परिचय : परिभाषा : विश्लेषण

मानववाद के साथ साथ सार्वभौमिक कल्याण और प्राणीमात्र के हित-सवर्द्धन की अभिव्यक्ति के लिए एक और शब्दावली का भी प्रयोग किया जाता है, वह है मानवतावाद। परिभाषिक विचार और स्वरूप एव प्रक्रिया की दृष्टि से इन दोनो मे अन्तर है। इस अन्तर पर विस्तार मे विचार करने से पूर्व मानवतावाद का विश्लेषण करना आवश्यक है। मानववाद सामूहिक रूप से एक साथ मानवजाति के कल्याण का चिन्तन करता है तथा उसे समष्टि रूप मे प्रतिपादित करता है और उसके भौतिक सवर्द्धन पर बल देता है, इसके विपरीत मानवतावाद मानव, व्यष्टि को, अपना प्रतिपाद्य बनाकर विश्व कल्याण एव जीवमात्र की हित कामना करता है तथा वह मानव को आदर्श बनाने और उसके मानवीय-गुणो के विकास पर बल देता है, क्योकि यह मानव के समस्त आन्तरिक सघर्ष समाप्त करना आवश्यक समझता है। मानवतावाद की सबसे बडी विशेषता है मानव का उत्थान करना तथा उसका आदर्श रूप समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर उसे अनुकरणीय बनाना। समाज म प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाले अवतार, सन्त, महात्मा, योगी, यति, समाज-सुधारक, श्रेष्ठ साहित्यकार सभी

श्रेष्ठ आदर्श मानव थे और समाज के लिए अनुकरणीय भी थे। अतः 'मानवतावाद की विचारधारा मानवीय-गुण-सवर्द्धन का चिन्तन है और नैतिक अर्थ मे धर्म शास्त्रीय भाव से बिल्कुल भिन्न है। मानवतावाद वास्तव मे मानवीय नियमो और सिद्धान्तो का उदात्त अध्ययन है।'[1]

श्री क्रेन ब्रिटन मानवतावाद की विशेषता बताते हुए लिखते है कि मानवतावाद के विचार मे अन्य किसी तत्व की अपेक्षा नैतिक भावना अधिक है। पश्चिम मे इसका आधार ईसाई नैतिक नियम हैं, जो कर्मकाण्ड तथा बाह्याडम्बर का विरोध करते हैं। मानव दूसरे लोगो की पीड़ा के प्रति सहानुभूति रखता है। इस सहानुभूति मे वही भाव है जो सन्त लोग ससार के पीडितो, निबलो और विषम परिस्थितियो मे फँसे लोगो के प्रति रखते हैं।[2] ब्रिटन के इस नैतिक आचरण सम्बन्धी विचार का समर्थन कारलिस लेमाट भी करते है। वास्तव मे मानव मे रहनेवाले दया, दान, शील, सौजन्य, क्षमा आदि के समवाय रूप लोकोपकारक धर्म को 'मानवता' कहा जाता है, भारतीय विचारधारा मे मनु ने भी इनका उल्लेख किया है, धृत्ति, क्षमा, दया, अचौर्य, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध ये धर्म के दस लक्षण हैं।[3] इसके विपरीत धर्म को 'पशुता' कहा जाता है। मानव मे सत्वगुण की प्रधानता होने से त्याग, तप, सत्य, सदाचार, परोपकार और अहिंसा आदि शम-दम ये गुण स्वभावत पाये जाते हैं।

मानवता गुण सम्पन्न व्यक्ति सर्वथा, सिद्ध सकल्प, सर्व-सुहृद, समदर्शी और सर्व-हितैषी होता है और 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के अनुसार प्राणीमात्र को अपना समझ कर उन पर दया और प्रेमभाव रखता है।

मानवतावाद के अनुसार मानवीयता को आचार विचार का अखण्ड भाग सिद्ध किया जाता है जिसे तार्किको ने मानव-स्वभाव का विशेष गुण स्नेहभाव बताया है।[4] हाब्स ने इसे कल्पना-प्रसूत अनुभूति मानते हुए कहा है कि ये हमारे विपाद अथवा पर पीडा अनुभूति से उत्पन्न होती हैं।[5] कुछ भी हो, इस सहानुभूति की एक विशेषता है कि इसमे हम दूसरो से एकता, तादात्म्य, सहभाव का अनुभव करते हैं, क्योंकि नैसर्गिक रूप से मानव-स्वभाव मे दूसरो के प्रति सहानुभूति है।

1 Encyclopaedia of Religion and Ethics—Vol VI—p 836
2 Crane Brinton—A History of Western Morals—p 308
3 धृति क्षमा दमो स्तेय शौचमिन्द्रिय निग्रह ।
धीर्विद्या सत्यक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।।—मनुस्मृति 6-92
4 Encyclopaedia of Religion and Ethics—Vol VI—p 836
5 Ibid—p 836

मानवतावाद की सबसे बड़ी विशेषता आन्तरिक अनुभूति है जो मानव विकास का एक अंग है। मानवतावादी से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जिसने अन्त स्थित उस चेतना का अनुभव कर लिया है जो प्राणीमात्र से हमारा सम्बन्ध स्थापित करती है और मानवतावाद उसका उद्घोष है।[1]

कारलिस लेमाट मानवतावाद के सम्बन्ध मे लिखते हैं कि मानवता के कल्याण के लिए किए जाने वाले प्रयत्नो को 'मानवतावाद' कहा जाता है, किन्तु शनै शनै इस शब्दावली का अर्थ उपकारी लोकानुराग और सुधार द्वारा शारीरिक अत्याचार को रोकने से लिया जाने लगा।[2]

प्रो० राल्फ बार्टन पेरी के अनुसार मानवतावाद एक ऐसी प्रवृत्ति है जिसमे जीवन की आवश्यकताओ और पवित्रता पर बल दिया जाता है।[3]

प्रो० अर्बन मानवतावाद का सार बताते हुए कहते है कि 'यह सहनशीलता और सहानुभूति का विस्तार है।'[4] इसमे गम्भीर मानवीय अनुभूति होती है। इस बात का स्पष्टीकरण करते हुए वे आगे लिखते हैं कि मानवतावाद वह भाव है जो जड और चेतन तथा मानव और पशु मे जीवन-मूल्यो की अनुभूति के दृष्टिकोण से अन्तर बताता है।[5]

एक अन्य धारणा के अनुसार मानवतावाद वह विचारधारा है जो इस ब्रह्माण्ड मे स्थित सभी प्राणियो के अधिकारो का समान सम्मान करने पर बल देती है।[6] वह निरपेक्ष, भेदभाव-रहित और पवित्र जीवन को मानवतावाद का मूल्य मानती है।

भारतीय विचारकों मे रवीन्द्रनाथ टैगोर ने मानवतावाद सम्बन्धी विचार अभिव्यक्त करते हुए कहा है कि दैवी सत्य की पूर्णता मे मानवीयता एक विशेष साधन है[7] और मेरा धर्म ही मानव-धर्म है जिसमे अन्तर (ब्रह्म) को मानवता मे प्रदर्शित किया जाता है।[8]

डा० राधाकृष्णन के मतानुसार मानवतावाद का चरम लक्ष्य सार्वभौमिक समन्वय उत्पन्न करना है। प्राणियो के सम्बन्धो मे घनिष्ठता उत्पन्न करना है।[9] इसके अतिरिक्त हमे मानवात्मा मे निष्ठा और विश्वास रखना चाहिए।

1 Encyclopaedia of Religion and Ethics—Vol VI—p 836
2 Corliss Lamont—Humanism As A Philosophy—p. 84
3 Ralph Barton Perry—The Humanity of Man—p 53
4 William Marshal Urban—Humanity and Deity—p 394
5 वही, पृ० 394
6 Vergilius Ferm (Ed)—Encyclopaedia of Religion—p 349
7 Rabindranath Tagore—Creative Unity—p 80
8 Rabindranath Tagore—Religion of Man—p 96
9 S Radhakrishnan—An Idealist View of Life—p 62—63

वही आत्मा मानव-प्रगति की प्रेरणा दे सकती है जिसमे करुणा, सहिष्णुता और त्याग की भावना हो।[1]

मानव-कल्याण की पूर्णता के लिए डॉ० राधाकृष्णन सच्चे मानवतावाद का अकन इन शब्दो मे करते हैं, 'सच्चा मानवतावाद हमे बताता है कि हमे मनुष्य मे साधारण अवस्था मे जो कुछ प्रत्यक्ष दिखाई देता है उससे भी कुछ अधिक श्रेष्ठ तत्व उसमे है जो उसके विचार तथा आदर्श का निर्माण करता है। *उसमे एक श्रेष्ठ आत्मा का निवास है जो उसे भौतिक वस्तुओ,* जिनसे उसकी सन्तुष्टि नही होती, विमुख करता है।'[2] वास्तव मे वे मानव-कल्याण और सार्वभौमिक कल्याण के लिए आध्यात्मिकता का विकास आवश्यक मानते है, क्योकि भौतिक-समृद्धि अस्थिर होने के कारण मानव मे सघर्ष उत्पन्न करती है। इसलिए वे कहते है कि, 'विश्व की आध्यात्मिक एकता की उपेक्षा और धार्मिक अनुभूति को अस्वीकार करना दार्शनिक दृष्टि से अनुचित है, नैतिक विचार से असुरक्षित तथा सामाजिक दृष्टि से भयकर है। जहाँ ईश्वरीय भावना है वहाँ एकता और समता है।'[3]

योगिराज अरविन्द विश्व कल्याण तथा मानव-हित को एक-दूसरे के प्रति सहानुभूतिपूर्ण भाव और पारस्परिक एकता मे मानते हैं। वे इस भाव को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—'यह उन तथ्यो पर आधृत है जो केवल मानव की मानवता को मान्यता देते हैं और किसी प्रकार की शारीरिक भेद एव जन्म, पद, वर्ग, रग, सम्प्रदाय, राष्ट्रीयता की सामाजिक परम्परा को नही मानते, जो *मानवता को खण्डित करती है। मानवतावाद इन अमानवीय* बातो को समाप्त करने के लिए सहानुभूति और उदारता के साधन प्रदान करता है।[4]

भारतीय विद्वान् श्री गोखले मानव की पूर्णता एव उसके व्यक्तित्व विकास को मानवतावाद का आवश्यक साधन मानते हैं। मनुष्य का लक्ष्य पूर्णता प्राप्त करना है, यह भारतीय दर्शन और जीवन का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है। वे लिखते हैं, 'मनुष्य उसी स्थिति मे पूर्णता प्राप्त कर सकता है जब वह स्वार्थ का परित्याग कर अपनी वृत्तियो को सम्पूर्ण ससार की ओर उन्मुख कर दगा तथा कल्याणमयी आत्मा के समान अपनी नैतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियो

1 S Radhakrisnan & P T Raju (Eds)—The Concept of Man —p 12—13
2 Dr S Radhakrishnan—Eastern Religion and Western Thought—p 25
3 Dr S Radhakrishnan—Recovery of Faith—p 197—198
4 Sri Aurobindo—The Ideal of Humanity—p 341

को ससार का कल्याण करने मे लगा देगा। विकार तथा अज्ञान का लोप हो जाने पर समस्त विश्व के साथ एकात्मता अनुभव करने का भाव जब मनुष्य मे उत्पन्न हो जाता है, तभी वह पूर्णता की ओर अग्रसर होता है।'[1]

इस प्रकार भारतीय तथा पाश्चात्य दोनो ही वर्गों के विद्वानों ने मानवतावाद को मानव-कल्याण का ही नही, प्राणीमात्र के कल्याण का प्रतिपादक जीवन-दर्शन माना है।

पाश्चात्य विद्वानो ने जहाँ नैतिकता पर बल दिया है, वहाँ भारतीय विद्वानो ने इसक साथ आध्यात्मिक विकास को भी महत्त्व दिया है। भारतीय विचारको के मतानुसार बाह्य और व्यावहारिक आचरण के परिष्कारार्थ सर्वप्रथम अन्त -परिष्कृति आवश्यक है। वाल्टर लिपमेन आन्तरिक विकास को आवश्यक मानते है, क्योकि तब सच्ची अन्त दृष्टि कल्याणकारी ही नही होती अपितु वह व्यावहारिक शुभ आचरण के लिए मार्ग दर्शक भी सिद्ध होती है।[2] शुभ का लक्षण सर्वकल्याण है। यूनानी नीतिज्ञो ने कहा है कि शुभ और श्रेष्ठ वही है जो सबका समान रूप से लक्ष्य हो।'[3] हम इसका अर्थ यह भी ले सकते हैं कि शुभ वह है जिस मनुष्य करने की कामना करता है यदि वह इस बात स अवगत है कि वह क्या कर रहा है। मानव के पास दो शक्तियाँ प्रधान है—बुद्धि की और हृदय की, एक विचार, विवेक, ज्ञान की और दूसरी भाव, अनुभूति और सद्भावना की। मानव के शुभ प्राप्ति और सम्यक् विकास के लिए विचार और भाव का समान उन्नयन आवश्यक है। विवेकी और सदाशयी मनुष्य वही है जो व्यक्ति और व्यक्ति के बीच के सारे विरोध और सारी बाधाएँ दूर कर दे। यही शुभ का मानवतावादी लक्ष्य है।

मानवतावाद परिष्कृत जीवन मूल्यों का प्रसार, अभिवर्द्धन और उन्नयन करता है, यही मानवीयता का मूल केन्द्र है, उसका स्रोत है। इन मूल्यो की स्थापना ही, इनकी व्यवस्था, बोध एव स्वीकृति ही, मानव-गौरव और उसके शुभ रूप की परिचायक है। यदि हम अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियो का द्वार सब छोटे बडे के लिए समान रूप से खोल दें तो यह उदात्त रूप वरदान स्वरूप होगा।[4]

मानवतावाद मानवीयता का वह जागरूक एव व्यवस्थित रूप है, जो हमारे अन्त -बाह्य गुणो मे सामजस्य कर हमारी आत्मस्फीति म सहायक होता है। हमारी महानुभूति की भावना विच्छिन्न होने के कारण उसका समुचित सदुपयोग

1 B G Gokhale—Indian Thought Through the Ages—p 213
2 Walter Lippmann— A Preface to Morals—p 229
3 वही पृ॰ 319
4 William Marshal Urban—Humanity and Deity—p 395

वही आत्मा मानव-प्रगति की प्रेरणा दे सकती है जिसमे करुणा, सहिष्णुता और त्याग की भावना हो।[1]

मानव-कल्याण की पूर्णता के लिए डॉ० राधाकृष्णन सच्चे मानवतावाद का अंकन इन शब्दो मे करते हैं, 'सच्चा मानवतावाद हमे बताता है कि हमे मनुष्य में साधारण अवस्था मे जो कुछ प्रत्यक्ष दिखाई देता है, उससे भी कुछ अधिक श्रेष्ठ तत्व उसमे है जो उसके विचार तथा आदर्श का निर्माण करता है। उसमें एक श्रेष्ठ आत्मा का निवास है जो उसे भौतिक वस्तुओ, जिनसे उसकी सन्तुष्टि नही होती, विमुख करता है।'[2] वास्तव मे वे मानव-कल्याण और सार्वभौमिक कल्याण के लिए आध्यात्मिकता का विकास आवश्यक मानते हैं, क्योकि भौतिक-समृद्धि अस्थिर होने के कारण मानव मे सघर्ष उत्पन्न करती है। इसलिए वे कहते हैं कि, 'विश्व की आध्यात्मिक एकता की उपेक्षा और धार्मिक अनुभूति को अस्वीकार करना दार्शनिक दृष्टि से अनुचित है, नैतिक विचार से असुरक्षित तथा सामाजिक दृष्टि से भयकर है। जहाँ ईश्वरीय भावना है वहाँ एकता और समता है।'[3]

योगिराज अरविन्द विश्व-कल्याण तथा मानव-हित को एक-दूसरे के प्रति सहानुभूतिपूर्ण भाव और पारस्परिक एकता मे मानते हैं। वे इस भाव को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—'यह उन तथ्यो पर आधृत है जो केवल मानव की मानवता को मान्यता देते हैं और किसी प्रकार की शारीरिक भेद एव जन्म, पद, वर्ग, रग, सम्प्रदाय, राष्ट्रीयता की सामाजिक परम्परा को नही मानते, जो मानवता को खण्डित करती है। मानवतावाद इन अमानवीय बातो को समाप्त करने के लिए सहानुभूति और उदारता के साधन प्रदान करता है।[4]

भारतीय विद्वान् श्री गोखले मानव की पूर्णता एव उसके व्यक्तित्व विकास को मानवतावाद का आवश्यक साधन मानते हैं। मनुष्य का लक्ष्य पूर्णता प्राप्त करना है, यह भारतीय दर्शन और जीवन का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है। वे लिखते हैं, 'मनुष्य उसी स्थिति मे पूर्णता प्राप्त कर सकता है जब वह स्वार्थ का परित्याग कर अपनी वृत्तियो को सम्पूर्ण ससार की ओर उन्मुख कर देगा तथा कल्याणमयी आत्मा के समान अपनी नैतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियो

1 S Radhakrisnan & P T Raju (Eds)—The Concept of Man —p 12—13
2 Dr S Radhakrishnan—Eastern Religion and Western Thought—p 25
3 Dr S Radhakrishnan—Recovery of Faith—p 197—198
4 Sri Aurobindo—The Ideal of Humanity—p 341

को ससार का कल्याण करने मे लगा देगा। विकार तथा अज्ञान का लोप हो जाने पर समस्त विश्व के साथ एकात्मता अनुभव करने का भाव जब मनुष्य मे उत्पन्न हो जाता है, तभी वह पूर्णता की ओर अग्रसर होता है।'[1]

इस प्रकार भारतीय तथा पाश्चात्य दोनो ही वर्गों के विद्वानो ने मानवतावाद को मानव-कल्याण का ही नही, प्राणीमात्र के कल्याण का प्रतिपादक जीवन-दर्शन माना है।

पाश्चात्य विद्वानो ने जहाँ नैतिकता पर बल दिया है, वहाँ भारतीय विद्वानो ने इसके साथ आध्यात्मिक विकास को भी महत्त्व दिया है। भारतीय *विचारकों के मतानुसार वाह्य और व्यावहारिक आचरण के परिष्कारार्थ* सर्वप्रथम अन्त -परिष्कृति आवश्यक है। वाल्टर लिपमेन आन्तरिक विकास को आवश्यक मानते हैं क्योकि एक सच्ची अन्त दृष्टि कल्याणकारी ही नही होती अपितु वह व्यावहारिक शुभ आचरण के लिए मार्ग दर्शक भी सिद्ध होती है।[2] शुभ का लक्षण सर्वकल्याण है। यूनानी नीतिज्ञो ने कहा है कि शुभ और श्रेष्ठ वही है जो सबका समान रूप से लक्ष्य हो।'[3] हम इसका अर्थ यह भी ले सकते हैं कि शुभ वह है जिस मनुष्य करने की कामना करता है यदि वह इस बात स अवगत है कि वह क्या कर रहा है। मानव के पास दो शक्तियाँ प्रधान हैं—बुद्धि की और हृदय की, एक विचार, विवेक ज्ञान की और दूसरी भाव, अनुभूति और सद्भावना की। मानव के शुभ प्राप्ति और सम्यक् विकास के लिए विचार और भाव का समान उन्नयन आवश्यक है। विवेकी और सदाशयी मनुष्य वही है जो व्यक्ति और व्यक्ति के बीच के सारे विरोध और सारी बाधाएँ दूर कर दे। यही शुभ का मानवतावादी लक्ष्य है।

मानवतावाद परिष्कृत जीवन-मूल्यों का प्रसार, अभिवर्द्धन और उन्नयन करता है, यही मानवीयता का मूल केन्द्र है, उसका स्रोत है। इन मूल्यो की स्थापना ही, इनकी व्यवस्था, बोध एव स्वीकृति ही, मानव-गौरव और उसके शुभ रूप की परिचायक है। यदि हम अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियो का द्वार सब छोटे बडे के लिए समान रूप से खोल दें तो यह उदात्त रूप वरदान स्वरूप होगा।[4]

मानवतावाद मानवीयता का वह जागरूक एव व्यवस्थित रूप है, जो हमारे अन्त -वाह्य गुणो म सामजस्य कर हमारी आत्मस्फीति म सहायक होता है। हमारी सहानुभूति की भावना विच्छिन्न होने के कारण उसका समुचित सदुपयोग

1 B G Gokhale—Indian Thought Through the Ages—p 213
2 Walter Lippmann— A Preface to Morals—p 229
3 वही पृ॰ 319
4 William Marshal Urban—Humanity and Deity—p 395

नही हो पाता, मानवतावाद इसी को एकसूत्रित एव केन्द्रित करने मे सहायक होता है ।[1] इसीलिए प्राय सभी युगो में प्राणियो के प्रति स्नेह, सद्व्यवहार का कर्त्तव्य, सदैव उच्च उपदेशो का एक भाव रहा है। इस प्रकार का मानवतावाद केवल एक नैतिकता और आचरण सम्बन्धी विचारधारा ही नही है, वह एक व्यापक आदर्श है, जो जीवन सम्बन्ध पर आधृत है तथा सभी प्राणियो के प्रति बन्धुत्व और समानता का प्रसार करता है ।[2] मानवतावाद निषेधात्मक और समाज विरक्त विचारधारा न होकर मैत्रीभाव का प्रसारक है और जीवन मे सुन्दर और सत्य की स्थापना मे सहायक होता है ।

मानवतावाद का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है सभी प्राणियों म समानता की भावना । यह बताता है कि मानव और अन्य प्राणियो मे केवल कोटि का अन्तर है, जातिभेद अथवा प्राकृतिक विभेद नही है । अत हम केवल मनुष्य को ही लक्ष्य नही मानेंगे और न ही पशु-प्राणियो का तिरस्कार करेंगे, क्योकि यह पशुओं की पीडा के प्रति सहानुभूति एव सेवा भाव को भी मान्यता देता है[3] और सभी प्राणियो के प्रति, कीडी स कुजर तक, स्नेह-भाव तथा सद्व्यवहार का प्रतिपादन करता है ।

इस विचारधारा को मानवतावाद इसीलिए कहा गया कि समस्त प्राणियो मे मानव ही सर्वाधिक समर्थ है, अत सब प्राणियो की रक्षा का भार भी उसी पर है । पश्चिम मे पशुओ-सम्बन्धी मानवतावाद के सर्वप्रसिद्ध विचारक डा० अलबर्ट श्विटजर हैं । वे कहते हैं कि हमे किसी जीव का प्राण लेने का कोई अधिकार नही है । प्राय हम अपने दैनिक व्यवहार मे पालतू तथा अन्य जीवो का प्राण हरण करते हैं, यह हिंसा भाव हमारा नैतिक पतन करता है ।[4]

यदि मानव निरीह पशु पक्षियो के प्रति दया-भाव रखे और किसी को हानि न पहुँचाए तो यह एक महान कार्य होगा । हमे सभ्य और सुसस्कृत होने के लिए उन बातो का विरोध करना चाहिए जो मानवता का विरोध एव उल्लघन करती हैं । मानवतावादी नैतिकता तभी पूर्ण होगी जब हम सब प्राणियो के प्रति दया-भाव रखेंगे ।[5]

1 Encyclopaedia of Religion and Ethics—Vol VI—p 836
2 Encyclodaedia of Social Sciences—p 544
3 Crane Brinton— A History of Western Morals—p. 309
4 Jacques Feschotte— Albert Schweitzer An Introduction—p 126—127
5 Jacques Feschotte—Albert Schweitzer : An Introduction—p 127

मानवतावाद पशुओं के अस्तित्व को मान्यता देता है और उनके स्वतन्त्रता के अधिकार को भी मानता है। पशु भी परतन्त्र होकर मानव की भांति दुःख का अनुभव करता है। मानवतावाद की मूल मान्यता इस बात का विरोध करती है कि हमें पशु की अपेक्षा मनुष्य की सहायता में प्राथमिकता देनी चाहिए,[1] क्योंकि मानवता और मानवीयता निष्पक्षता पर आधृत हैं।

वास्तव में सार्वभौमिक मंगल इसी में है कि हम जीवन के प्रति आदर एवं श्रद्धा रखें और सर्वत्र समन्वय का प्रसार करें। इस सामंजस्य का प्रसार तथा स्थापना एवं आत्मीयता की भावना आध्यात्मिक सम्बन्धों द्वारा उत्पन्न हो सकती है। ईश्वर रहस्यमय, अनन्त है, हम उसको समझने में असमर्थ है, इसलिए हमें उस रहस्यमय सत्ता के प्रति समर्पण कर देना चाहिए और उसका एक ही मार्ग है कि हम उसकी सृष्टि की सेवा करें, उसके कल्याण के लिए अपने को अर्पित कर दें, केवल यही सार्वभौमिक नैतिकता हो सकती है जो प्राणीमात्र को अपने में आत्मसात् कर लेती है और ईश्वर की परम सत्ता को अभिव्यक्त करती है। डा० श्विट्ज़र कहते हैं, 'प्राणी के प्रति आदर भाव द्वारा हम ईश्वर की उपासना का सरल, सहज, श्रेष्ठ और सजीव मार्ग प्राप्त कर लेते हैं।'[2]

मानवतावाद से आशय उस नैतिक दर्शन से है जिसका प्रतिपाद्य सार्वभौमिक कल्याण है। इस प्रकार मानवतावाद स्वतन्त्र-भाव से जीवन को उदात्त रूप में अनुभव करने वाली विचारधारा और उन्नयनोन्मुख दृष्टिकोण है जो विश्व को सर्वत्र कल्याणपरक दृष्टि से देखता है। यह मानव-जीवन का नैतिक और प्राणी-गौरव की स्थापना का, सार्वभौमिक आदर्श प्रतिष्ठित करता है अतः मानवतावाद अनन्त विश्वास, श्रद्धा, आदर और नैतिक-मूल्य युक्त भावों द्वारा प्राणीमात्र के कल्याण सम्बन्धी सिद्धान्तों की व्याख्या और सार्वभौमिक जीवन आदर्श की स्थापना करने वाला विश्व-दर्शन है जिसके मूल में विश्वात्मा की चेतना का उदात्त भाव निहित है।

मानववाद तथा मानवतावाद—साम्य वैषम्य

शुभ, शिव और आनन्द की स्थापना के लिए मानव सदैव प्रयत्नशील रहा है तथा यही उसका चरम लक्ष्य है। इस प्रयत्न का रूप मानव अपनी भावना, प्रवृत्ति, संस्कार एवं विवेक के अनुसार निर्धारित करता है और जीवन के आदर्श निश्चित करता है। सामान्यतया वही प्रयत्न श्रेष्ठ और उत्तम स्वीकार किया जाता है जिसमें दूसरों को हानि पहुँचाये बिना अपनी कार्य-सिद्धि एवं लक्ष्यपूर्ति हो जाय।

1 Encyclopaedia of Religions and Ethics—Vol VI—p 838
2 Jacques Feschotte—Albert Schweitzer · An Introduction—p 130

विश्व इतिहास की कहानी भी मानव के उन अनेक प्रयत्नों से ही बनी है जिन्होने मानव को मानव के अधिक निकट लाने का प्रयत्न किया तथा जिस रीति स वह प्रयत्न किया गया उसके अनुरूप ही उसके परिणाम निकले ।[1]

सार्वभौमिक कल्याण के लिए मानवतावाद तथा मानववादी विचारधाराए पल्लवित हुईं । दोनो विचारधाराओ की प्रक्रिया मे अन्तर होने पर भी लक्ष्य मे प्राय किसी सीमा तक समानता मिलती है किन्तु अन्तिम उपलब्धि मे अन्तर है क्योकि मानववाद मे जहाँ अनेक अनुबन्ध और विचारो का मतभेद है, मानवतावाद मे ऐसा कोई मतभेद नही है, विश्वकल्याण के सभी तत्व उसे सहज स्वीकार्य हैं । स्पष्टीकरण के लिए दोनो विचारधाराओ के साम्य-वैषम्य पर विचार करना आवश्यक है क्योकि नाम एव भाव साम्य से भ्रान्ति उत्पन्न हो सकती है ।

कारलिस लेमाण्ट न मानववाद के निम्नलिखित लक्षण और उसकी मान्यताएँ बताई हैं—[2]

1 मानववाद एक ऐसे नैसर्गिक विश्व सृष्टि शास्त्र मे विश्वास करता है जो पारलौकिकता को मान्यता नही देता और केवल प्रत्यक्ष जगत को ही सत्य स्वीकार करता है । वह उस निरन्तर परिवर्तनशील घटनाक्रम को भी मानता है जो किसी अदृश्य शक्ति से परिचालित नही है ।

2 वैज्ञानिक तथ्यो के अनुसार मनुष्य एक विकसनशील प्राणी है और विशाल सृष्टि का एक अश है जिसका मृत्यु के पश्चात् कोई अस्तित्व नही है । इसलिए मनुष्य का सम्बन्ध केवल इसी ससार से है अन्य किसी काल्पनिक लोक से नही ।

3 मानव मे स्वाभाविक चिन्तन शक्ति और बौद्धिकता है ।

4 मनुष्य स्वय अपनी समस्त समस्याओ को सुलझाने मे समर्थ है ।

5 दैववाद, नियतिवाद अथवा भाग्यवाद के सिद्धान्तो और विचारो के विपरीत मानववाद का विश्वास है कि मनुष्यो म सृजनात्मक-क्रिया की स्वतन्त्र शक्ति है और वही अपने भाग्य का विधाता है ।

6 मानववाद एक एम आधार अथवा नैतिक शास्त्र मे विश्वास रखता है जिम पर इस ससार क समस्त मानव मूल्य आधृत हैं । वह इस ससार मे राष्ट्र, जाति तथा धर्म का विचार किए बिना समस्त मानव जाति की आर्थिक, सास्कृतिक, नैतिक तथा भौतिक समृद्धि एव स्वतन्त्रता और प्रगति के प्रति प्रबल निष्ठा रखता है ।

7 यह कला और सौन्दर्य-चतना म विश्वास रखता है ।

1 Wilhelm Wundt—Elements of Folk Psychology—p 478
2 Corliss Lamont—Humanism As A Philosophy—p 19

8 यह सार्वभौमिक समृद्धि, स्वतन्त्रता, प्रजातन्त्र और शान्ति स्थापना मे विश्वास रखता है।

टी० एस० इलियट ने भी मानववाद के आठ लक्षण दिए हैं और उन्होंने मानववाद के विधामूलक रूप को प्रमुख माना है। वे भी मानववाद की भाँति मानव नैतिकता और एक सूत्रता का अधिक महत्व देते हैं। ये लक्षण निम्न हैं—[1]

1 मानववाद दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन नहीं करता, 'तर्क' की अपेक्षा इसका सम्बन्ध 'सहज बुद्धि' से अधिक है।

2 मानववाद कट्टरता का विरोधी और उदारता, सहिष्णुता, सन्तुलन तथा सयम का प्रेरक है।

3 ससार मे जैसे सकीर्णता, हठवादिता और कट्टरता होती है वैसे ही उदारता, सहिष्णुता तथा सयम का महत्व है, किन्तु मानव-मूल्यो का प्रतिपादन अनिवार्य है।

4 मानववाद किसी का प्रत्याख्यान नही करता। वह सस्कारशीलता और सद्भावना के द्वारा मानव मन को प्रेरित करने का प्रयास करता है।

5 मानववाद दर्शन और धर्मशास्त्र की कसौटी सभ्यता को मानता है तथा काई अन्य निश्चित सिद्धान्त नही मानता।

6 मानव की एक यह कोटि होती है जिसके लिए मानवीयता अपने आप मे पर्याप्त होती है। इस मानव-कोटि का अपना पृथक मूल्य होता है।

7 मानववाद का उपयोग धर्म और दर्शन के स्थानापन्न रूप मे नही होता। सार्वजनिक मूल्य ही मानववाद है। हर पक्ष के लोग अच्छे हो सकते हैं—यह मानववादी मान्यता है।

8 मानववाद मे विश्वास रखने वालो को सूत्र मे बाँधने वाली शक्ति सस्कृति है।

लेमाण्ट तथा इलियट के मानववादी विचारो मे एक बात अत्यन्त स्पष्ट है कि जहाँ लेमाण्ट का दृष्टिकोण भौतिकवादी है, वहाँ इलियट का विचार आत्यतिक कल्याण से समन्वित नैतिकतावादी है। इनम से एक वस्तुवाद का प्रतिपादक है तो दूसरा मानव गुण-समृद्धि और जीवन आदर्श का स्थापक है। दोनो ने मानव और मानव-मूल्यो को समान रूप से महत्व दिया है। दोनो सकीर्णता, हठवादिता, कट्टरता, रूढि और परतन्त्रता का विरोध कर उदात्त स्वतन्त्र मानव-जीवन की व्याख्या करते हैं। लेमाण्ट ने मानववाद को विचार-दर्शन माना है। इलियट ने सहज धर्म द्वारा गुण-विवेचन किया है। दोनो ही

1 T S Eliot—Selected Essays (Second Thought about Humanism)—p 488

मानववाद को किसी शुद्ध सैद्धान्तिक तथा विशिष्ट विचारधारा से मुक्त मानते है और प्रत्येक पक्ष को सौहार्दपूर्वक देखते हैं। मानववाद की यह एक बडी विशेषता है कि वह कटु आलोचना की ध्वंसात्मक प्रवृत्ति से दूर है। उसमे विरोधी विचारधारा के लिए भी घृणा नही है। मानवतावाद क दो प्रमुख लक्षण हैं, प्राणीमात्र के कल्याण की कामना और विरोधी वादो के प्रति तटस्थता। यही तटस्थता मानववाद और मानवतावाद के मूल्यो की स्थापना करती है।

मानववाद और मानवतावाद दोनो ही विचारधाराएँ मानव-कल्याण की इच्छुक हैं, वे स्वतन्त्रता और समानता का प्रतिपादन करती हैं तथा एकता, एकसूत्रता, समन्वय, सामजस्य और सन्तुलन को स्वीकार करती है।

सार्वभौमिक कल्याण का साधन मानव है, क्योंकि वही प्रबुद्ध है तथा एकमात्र वही एसा प्राणी है जिस अपने कार्यों का ज्ञान और अनुभूति हो सकती है, इसलिए मानव का सर्वोपरि महत्व है किन्तु मानवतावाद के अनुसार अन्य प्राणियो को उपेक्षित नही किया जा सकता।

दोनो ही विचारधाराएँ सहानुभूति, सहिष्णुता एव परमार्थ का महत्व मानती हैं इसीलिए य आशावादी है। ये सद्भाव की उन्नायिका तथा प्रसारिका हैं।

इनमे सृजनात्मक प्रवृत्ति के गुण समान रूप से मिलते हैं, जो जीवन म आस्था उत्पन्न कर सत्य, शिव और सुन्दर की स्थापना करते हैं। रूढि परम्परागत नियम एव अन्धविश्वास के विरोधी भाव तथा जीवनोत्थान के प्रयत्न भी इन दोनो मे समान रूप स उपलब्ध होते हैं।

ससार मे प्रकीर्ण विच्छिन्नता को दूर करना इनका समान साध्य है। सघर्ष और प्रतिद्वन्द्विता द्वारा फैली बुराई, द्वेष, ईर्ष्या, हिंसात्मक प्रवृत्ति, घृणा तथा शोषण का विरोध भी ये करती हैं।

मनुष्यत्व का स्वरूप क्या है ? बाह्य रूप स धर्म, आचार, परम्परा, वश वैशिष्ट्य, वर्ग मनोवृत्ति का भेद होते हुए भी वास्तव म मनुष्य सवत्र एक है। विश्वव्यापी सस्कृति की स्थापना करना ही समस्त मानव-जाति का सर्वप्रथम और सवश्रष्ठ कतव्य है। इस प्रकार दोनो ही विचारधाराएँ मानव को सकीणताओ स मुक्त करने के लिए वैचारिक क्रान्ति का समर्थन करती हैं।

इन कुछ समानताओ के हाते हुए भी मानवतावाद और मानववाद मे विचार तथा प्रक्रिया सम्बन्धी पर्याप्त अन्तर हैं, जिससे विचारधारा म सैद्धान्तिक अन्तर आ जाते हैं और स्वरूप भिन्नता हो जाती है। अत इन दोनो विचार धाराओ पर भेद और अन्तर की दृष्टि से विचार करना भी आवश्यक है।

मानवतावाद की भावना आदि मानव से चली आ रही है क्योंकि इसका सम्बन्ध मानव के सहज स्वाभाविक गुणों और विकास से है। इसका ऐतिहासिक आधार भी है। आदि मानव असभ्य और जगली था किन्तु उसमे अपने

दल के लोगो तथा अपने पालतू पशुओ के प्रति स्नेह और ममता तथा दूसरो के प्रति घृणा और हिंसा थी। एक दल हो जाने पर वे दूसरो को अपना मित्र समझते थे। इसके विपरीत मानववाद एक विशेष युग मे मानव-कल्याण के लिए चलाया गया आन्दोलन है, जिसके लिए विशेष शिक्षा पर बल भी दिया गया, किन्तु मानवतावाद सहज रूप म मानव-अनुभूति के रूप मे स्वय पल्लवित होता रहा। इस प्रकार मानवतावाद एक सामान्य कर्तव्य की भावना तथा सहज धर्म से सम्बद्ध है तो मानववाद मानव-कल्याण की एक विशिष्ट प्रणाली और विचारधारा है।

मानवतावाद मे भावुकता एव सहज आर्द्रता है जबकि मानववाद मे बुद्धि का प्राधान्य है। क्योंकि मानवतावादी आदर्श पर आश्रित होता है और मानववादी यथार्थ को मान्यता देता है।

मानवतावाद सामान्य मानव के लिए सामान्य कर्तव्य एव धर्म है। इसमे साधारण व्यक्तियो के लिए सहज-ग्राह्य साधारण बातें और नियम हैं जिनको समझना तथा जिनका पालन एव अनुकरण अत्यन्त सरल है। वास्तव मे मानवतावाद सरल और समन्वयात्मक जीवन व्यतीत करने का सहज मार्ग है जिसके नियम और विचार रूढिबद्ध, कठिन विधि निषेध युक्त नही हैं। मानववाद एक विशेष ज्ञान-पद्धति है जिसका सम्बन्ध प्रतिभाशालियो से है। बौद्धिकता और तार्किकता के कारण मानववाद, मानवतावाद की भाति व्यापक नही बन सका।

मानववाद की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है कि वह मानव को पूर्ण और समर्थ मानता है। उसके अनुसार मानव ही इस सृष्टि का केन्द्र और सृजनशील प्राणी है, जबकि मानवतावाद का विषय समस्त सृष्टि और प्राणीमात्र है।

इस प्रकार मानवतावाद एक ऐसी नैतिक भावना है जो मानवीयता और उसके विकास पर बल देती है। अनुकम्पा और करुणा मानव स्वभाव के अभिन्न अग हैं। प्राणीमात्र की रक्षा मे समभाव मानवतावाद की एक विशेषता है। मानवतावाद दया, समता, ममता, न्याय, एकता, प्रीति, सत्य अहिंसा, कल्याण बुद्धि, भ्रातृत्व पर बल देता है। मानवतावाद जहाँ अन्तर्परिष्कार और अन्त प्रेरणा द्वारा मानव का विकास कर कल्याण-तत्व का उद्भूत करता है, वहाँ मानववाद केवल बाह्य सुख-समृद्धि और बाह्य-प्रेरणा को महत्व देता है।

वास्तव मे मानववाद भौतिकवादी एव नास्तिक भावनायुक्त ऐहिक समृद्धि का विचार-दर्शन है तथा मानवतावाद आत्मवादी एव आस्तिक विचारधारा है। मानवतावाद मे आन्तरिक कल्याण और आत्मस्फीति के कारण यह अलौकिक कहे जाने वाले धर्म का ही लौकिकीकरण प्रतीत होता है। मानवतावाद का यह विश्वास है कि प्राकृतिक मानव स्वत पूर्ण है, इसलिए मानवीय मूल्य

हमारे लिए महत्वपूर्ण हैं। इसके लिए बाह्य आचरण के परिष्कार से काम नही चलता, मानव को अन्त परिष्कार द्वारा अपनी आत्मा को शुद्ध करके और अपना सुधार कर प्राणीमात्र के साथ अपना सम्बन्ध उत्तम बनाना चाहिए, क्योंकि विश्व के सब सम्बन्धों के मूल म आत्मा ही है। मानववाद किसी आध्यात्मिक एव अलौकिक शक्ति को स्वीकार नही करता क्योंकि वह तर्क और बुद्धि के आधार को ही मान्यता देता है। मानवतावाद की एक विशेषता है कि वह परम्परा, रूढि, अन्धविश्वास, हठवादिता, पूर्वाग्रह, सकीर्णता, साम्प्रदायिकता, बाह्याडम्बर तथा सकुचित विधि-निषेध का विरोधी है क्योंकि यह पक्षपातहीन भावना का सामजस्यपूर्ण पोषण करता है।

मानववाद और मानवतावाद मे एक आधारभूत प्रक्रिया-सम्बन्धी भेद भी है। मानववाद समस्त समाज का आदर्श स्थापित कर मानवकल्याण करता है, किन्तु मानवतावाद वैयक्तिक आदर्श की स्थापना द्वारा विश्वकल्याण करना चाहता है। एक मे समाज के आदर्श द्वारा कल्याण का भाव है तो दूसरे मे व्यक्ति के नैतिक विकास द्वारा कल्याण की प्रेरणा है। वास्तव मे मानववाद सामाजिक हित-चिन्तन से प्रभावित और इहलौकिक भौतिक द्वन्द्वात्मक जीवन दर्शन है।

भारतीय अध्यात्मवाद की झलक मानवतावाद मे व्यक्ति आदर्श, कल्याण और विकास द्वारा समष्टि भावना मे मिलती है। समष्टि भाव आत्मिक साहचर्य, गहन नैकट्य की अनुभूति द्वारा पारस्परिक एकता को बढाता है। उसमे आन्तरिक एकसूत्रता का भाव होने से स्थायित्व होता है। आत्म-प्रसार से मानव एक दूसरे से अनुस्यूत हो सकते हैं। शरीर प्रसार द्वारा नही है क्यो कि वह परिसीमित है। आत्मा अखड और आत्मसात् योग्य होने से शरीर से अधिक स्थायी है। शरीर की भिन्न-रूपता से भेद बुद्धि और सघर्ष उत्पन्न होता है। मानवतावाद एकरूपता, सत्य, शाश्वत तत्व से प्रभावित होने के कारण अधिक सबल है।

मानवतावाद जीवन की साधारण आवश्यकताओ, सामान्य जीवन-मूल्यो को अधिक महत्व देता है उनके व्यावहारिक स्वरूप का भी चिन्तन करता है, किन्तु मानववाद सैद्धान्तिक मूल्य, कारण कार्य रूप को प्रमुख मानता है, उसका चिन्तन वैज्ञानिक पद्धति से निर्धारित प्रणाली पर चलता है। मानवतावाद मे मानव की सहज स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ और भाव तत्व प्रमुख होता है।

मानववाद सुखी को अधिक सुखी बनाने के लिए चिन्तन करता है किन्तु मानवतावाद दुखी के दुख को दूर करने को प्राथमिकता देता है।

मानवतावाद को मानववाद की भाँति प्रजातान्त्रिक समवाद का पर्याय समझने की भ्रान्ति म नही पडना चाहिये। समानता का तत्व और भाव अनेक सामाजिक विचार पद्धतियो मे मिलता है। आधुनिक काल मे इसने भारी मोड

लिया, जीव-दया और कल्याण की विचारधारा समाजवाद की विचारधारा मे आविर्भूत हुई ।

इस प्रकार मानववाद और मानवतावाद म बाह्य और अन्त भेद हैं जो इसके प्रतिपादित रूप मे अन्तर स्पष्ट करते हैं । यद्यपि दोनो विचारधाराओं मे साम्य भी मिलता है किन्तु मूलभूत मान्यताएँ अलग अलग हैं । बौद्धिकता भावुकता को मान्यता नहीं देती और भाव, बुद्धि और तर्क को स्वीकार नही करता । मानवतावाद सर्वग्राह्य भावना है, उसम बौद्धिकता की दृष्टि से उन विचारो को मान्यता दी जाती है जो मानव-कल्याण मे बाधक नहीं होते । मानववादी विचारधारा सेवा-भाव, उदारता, सहज-बुद्धि को तथा उन तत्वो को श्रेयस्कर बताती है जो मानव-जीवन की विच्छिन्नता दूर करते हैं । मानवतावाद बाह्य तत्वो की अपेक्षा सद्‌गुणो का उन्नयन और परिष्कार कर, बाह्य विकास के साथ आन्तरिक-विकास भी करता है ।

हम निश्चित रूप से नही जान सकते कि सत्य क्या है, किन्तु जीवन निश्चित रूप से अस्तित्ववान वस्तु है, इसलिए हमें जीवन-कल्याण के लिए सचेत रहना चाहिए । मानवतावाद की मान्यता है कि यह ससार ही हमारा क्रिया क्षेत्र है और मानवीयता की पूर्णता हमारा आदर्श है । इसके लिए नैतिक आधारों की दृढता और विकास आवश्यक है, क्योंकि नैतिकता एक शाश्वत निरुपाधिक आवश्यकता है, उसके लिए कोई शर्तें अथवा विशेष परिस्थितियाँ स्वीकार नही की जा सकती । साथ ही नैतिक उत्तरदायित्व की हमारी चेतना किसी भी अन्य अनुभव से सर्वथा भिन्न, चरम और स्वत स्पष्ट अनुभव है । नैसर्गिक रूप से सभी बौद्धिक प्राणियों मे कर्तव्य की भावना समान है । किन्तु नैतिक उत्तरदायित्व के पालन से विश्व मे एकता और निकटता बढ जाती है ।

मानव-मूल्यों द्वारा मानवतावाद ससार का सुधार ही नही करना चाहता, उसे आदर्श भी बनाना चाहता है । यदि मानववादी व्यक्तित्व के विकास को ही जीवन का मुख्य ध्येय समझते हैं तो हमारे व्यक्तित्व को केवल शारीरिक समृद्धि, आर्थिक सवर्द्धन, मानसिक शिक्षा अथवा सवेदनशील अन्त करण तक ही सीमित नहीं किया जा सकता । हमम जितना ऊँचा उठने की सम्भावनाए हैं उतना ऊँचा हम तब तक नहीं उठ सकते जब तक आत्मा के गहरे स्रोतो मे प्रेरणा ग्रहण न करें । मानवतावाद एक नियन्त्रित *अनुशासनमय जीवन चाहता* है, वह समग्रता एव समस्वरता पर बल देता है । मानवतावाद भौतिक आवेगों और कामनाओं के उद्दाम वेग को नियत्रित करने की नैतिक इच्छा का सार है । मानव जीवन मे नैतिक नियत्रण और प्रतिबन्ध शान्ति, सतोप, व्यवस्था और स्थायित्व के लिए होते हैं । ये मानव प्रगति का रोकने के लिए नहीं अपितु सतुलित, शिष्ट भावना द्वारा जीवन को गतिशीलता देते हैं ।

भारतीय मानवतावादी धारा

भारतीय चिन्तन और विचारधारा का प्रतिपाद्य सदैव ही समन्वयवादी रहा है और यही भावना भारतीय संस्कृति को पल्लवित करती रही है। यद्यपि भारत में अनेक धर्म और दर्शन विषयक परम्पराओं का जन्म हुआ तथापि इनके तीन मुख्य स्रोत माने जा सकते हैं—वैदिक, जैन और बौद्ध परम्परा। इन सभी परम्पराओं का मुख्य लक्ष्य आध्यात्मिक विकास द्वारा 'स्व' और 'पर' कल्याण रहा है और लौकिक तथा लोकोत्तर दोनों पक्षों पर समान रूप से बल दिया गया है। किसी भी धर्म तथा दर्शन की व्याख्या करते समय हमारे सामने दो बातें आती हैं— 1 जीवन के प्रति दृष्टिकोण तथा 2 जीवन का व्यावहारिक रूप। जीवन के प्रति दृष्टिकोण को साधारणतया दर्शनशास्त्र के अन्तर्गत लिया जाता है। यूरोप में धर्म और दर्शन के क्षेत्र भिन्न हैं किन्तु भारत में दर्शन को मुक्ति-दर्शन कहा गया है। इसमें भी वैयक्तिक जीवन-पद्धति और सामाजिक जीवन-पद्धति को ध्यान में रखा गया है, साथ ही जीवन के स्वरूप और लक्ष्य दोनों का विवेचन किया गया है।

वैदिक विचारधारा

भारतीय चिन्तन का प्राचीनतम रूप वेदों में उपलब्ध होता है। ज्ञान-स्वरूप होते हुए भी वेद, वेदान्तसूत्र की भाँति दार्शनिक ग्रन्थ ही नहीं हैं जिनमें केवल आध्यात्मिक चिन्तन का समावेश हो वरन् इनमें ज्ञान की भावना से लौकिक तथा अलौकिक सभी विषयों का वर्णन है। इनमें कर्म का उदात्त स्वरूप प्रतिपादित किया गया है। धार्मिक आचरण, कायिक, वाचिक और मानसिक पवित्रता सभी के लिए नियम बताए गये हैं[1] जिनका लक्ष्य मानव के लिए परम-पद की प्राप्ति और विश्व-कल्याण है। वैदिक विचारधारा में यद्यपि देववाद तथा यज्ञ अनुष्ठान का विस्तृत विवेचन है, तथापि वैदिक साहित्य का एक उच्चतम नैतिक महत्व भी है, जिसे न दैवी विश्वास के अवलम्ब की अपेक्षा है, न याज्ञिक निष्ठा की।[2]

वैदिक युग के मनीषियों और अलौकिक द्रष्टाओं की वाणी में हम धर्म की मूल प्रेरणाओं का स्फुरण मिलता है—धर्म का वह भव्य स्वरूप, जो सार्वदेशिक और सार्वकालिक नैतिकता से सम्पन्न है। धर्म का उदात्त एवं व्यापक रूप मानवमात्र के शुभ का आकांक्षी है—

> ध्रुवा भूमिं पृथिवी धर्मणा धृताम्
> शिवा स्योनामनु चरेम विश्वहा।[3]

1 उमेश मिश्र—भारतीय-दर्शन, पृ० 28
2 पं० रामगोविन्द त्रिवेदी—वैदिक-साहित्य, पृ० 45
3 अथ० वेद, 12 1

'यह ध्रुव और अचल भूमि, यह पृथ्वी, जो धर्म द्वारा धारण की गई है, हम उस शिव सुख दायिनी भूमि पर विश्वान्त विचरण करें। इसीलिए वैदिक ऋषियो ने धर्म का जीवन यात्रा के लिए उपयोगी बताते हुए कहा है 'सुगा ऋतस्य पन्था'[1] धर्म का मार्ग सुख से गमन करने योग्य है। धर्म मानव को दुख से मुक्त करता है।

मानवतावादी विचारधारा का प्रमुख आधार समभाव है। ऋगवेद मे इस अभिप्राय को एक व्यापक भावना के रूप मे प्रतिपादित किया है, उसे जीवन-दर्शन का रूप दिया है, 'तुम्हारी मन्त्रणा मे, समितियो मे, विचारो मे और चिन्तन मे समानता हो, सद्भावना हो, वैषम्य और दुर्भावना न हो। तुम्हारे अभिप्रायो मे, तुम्हारे हृदयो (अथवा भावनाओ) मे और तुम्हारे मनो मे एकता की भावना रहनी चाहिए, जिससे तुम्हारी साधिक और सामुदायिक शक्ति का विकास हो सके।'[2] मनुष्य को अमृत पुत्र बताकर इस भावना को स्पष्ट किया गया है जिसके अनुसार सब समान हैं, कोई छोटा-बडा नही है।[3] यजुर्वेद मे इस विचार को समस्त वर्णों के प्रति समानता और सामाजिक समन्वय मे निहित मानते हुए कहा गया है, 'भगवान मुझे ऐसा बनाइए कि मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अर्थात् सारी जनता के लिए कल्याण करने वाले ज्ञान का प्रचार और प्रसार कर सकूं।'[4] सामाजिक वर्ण तथा वर्ग-वैषम्य को दूर करने का यह व्यापक विचार, सार्वभौमिक कल्याण और एक आदर्श सतुलित समाज की भव्य कल्पना का निर्माण करता है। इससे अधिक निरपेक्ष, साम्य, एकता की भावना और क्या हो सकती है। वर्तमान काल मे जिस सामाजिक समता का उद्घोष किया गया क्या वेदो का यह विचार उसके मूल मे नही है। वास्तव मे इस कथन मे एक बडी ही सन्तुलित एव सौहार्दपूर्ण भावना व्यक्त की गई है।

समानता की भावना ही नही, शुक्ल यजुर्वेद सहिता मे सर्वभूत सुहृद भगवान से मानव इस प्रकार स्व-पर-मित्रता के लिए प्रार्थना करता है, हे दृते ! सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें, मैं सब प्राणियो को अपने नेत्रो से मित्र की दृष्टि देखूं।'[5] इस कथन मे मानव के मानसिक और कायिक कर्मों का, भावो का, एक सर्वभूत हित भावयुक्त सहज सौहार्द का व्यापक विचार

1 ऋ० वेद, 8 3 13
2 समानो मन्त्र समिति समानो
समान मन सहचित्त मेषाम्,
समानो व आकूति समाना हृदयानिव
समानमस्तु वो मनोयथाव सुसहासति। —ऋ० वेद, 10/191/3-4
3 ऋ० वेद, 5/59/6
4 यजुर्वेद, 26/2
5 शु० य०, 36/18

मिलता है जो उदार व्यक्तित्व का द्योतक है। मानव एक उच्चतम कामना करता है कि मैं सबको मैत्रीपूर्ण सुखकर एवं हितकर प्रिय दृष्टि से ही देखता हूँ और हम सब मानव मित्र की दृष्टि से एक दूसरे को देखते हैं। इतना ही नहीं, उसकी मान्यता है कि मैं समस्त मानवादि प्राणीवर्ग को आत्मवत् प्रिय मानूं—केवल प्रिय ही नहीं, उनका हितकर, सुखकर भी बना रहूँ और वे भी मेरे प्रति ऐसी ही भावना रखें।

यह पारस्परिक मैत्री-भाव का प्रसार मानवतावाद का आधार है जो सर्वहित की कामना करता है। मित्र की दृष्टि सर्वथा प्रिय-भाव युक्त, शान्त एवं हितकर ही होती है, वह किसी भी प्राणी के प्रति अनिष्ट की भावना एवं ईर्ष्या द्वेष भाव नहीं रखती। इसीलिए अथर्ववेद में कहा गया है, 'जीवों के प्रति प्रमादी मत बनो।'[1] यह अहिंसा का व्यापक भाव है, क्योंकि प्रमाद के कारण (असावधानी और असंयम से) प्राणों का व्यपरोपण करना—किसी जीव को ठेस लगाना—हिंसा है। वास्तव में सबके प्रति हमारा मित्रभाव तभी सिद्ध हो सकता है, जब हममें कपट, विश्वासघात, अनिष्ट-चिन्तन, परार्थ-विघात, स्वार्थ-सम्पादन के दुर्गुण न हों।

इसी भाँति एक अन्य प्रार्थना में कहा गया है, 'समस्त दिशाओं में अवस्थित निखिल मानवादि प्राणी मेरे मित्र-हितकारी बने रहें और मैं भी उन सब का हितकर मित्र बना रहूँ।'[2] जब हम सर्वत प्रथम सबके प्रति मित्र भाव रखने के लिए प्रयत्नशील बने रहेंगे, तभी वे सब हमारे प्रति भी मित्रभाव रखने के लिए तैयार होंगे। इस प्रकार परस्पर मित्र भाव रखने से ही मानव सच्चा बनकर सर्वत्र सुखपूर्ण भाव का प्रसार कर सकता है। सद्भावना की कामना करते हुए कहा गया है—

'याश्च पश्यामि याश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि।'[3]

'भगवन् ऐसी कृपा कीजिए जिससे मैं मनुष्यमात्र के प्रति, चाहे मैं उनको जानता हूँ अथवा नहीं, सद्भावना रख सकूँ।' यह मानव की सहज निश्चल परहित आकांक्षा है, वह सदाशयता का सवर्द्धन करने के लिए व्यग्र है। इसी सद्भावना प्रसार के लिए वैदिक मानव फिर कहता है, 'तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञान पुरुषेभ्य'[4] आओ हम सब मिलकर ऐसी प्रार्थना करें, जिससे मनुष्यों में परस्पर सद्भावना का विस्तार हो।

1 अथर्ववेद, 8/1/7
2 अथर्ववेद, 19/5/6
3, वही, 17/2/7
4 वही, 3/30/4

वैदिककाल के इस मैत्री-प्रसार भाव के साथ सामाजिक उन्नति और आर्थिक सन्तुलन के लिए शोषण-वृत्ति की निन्दा की गई है। जो व्यक्ति किसी का अधिकार छीनता है, दूसरो की सहायता अन्न, धन से नही करता वह समाज के लिए वाछनीय नही है। इन उदारचेता मनुष्यो न धन और परिग्रह के प्रति अद्भुम अलिप्सा की भावना का प्रचार किया है

'मा गृध कस्य स्विद्धनम्'[1]

किसी के धन के प्रति लोभ नही रखना चाहिए, क्योकि यह किसी एक के पास स्थिर नही रहता।[2]

इतना ही नही, स्वार्थी व्यक्ति की भर्त्सना भी की गई है। जो स्वार्थी है, उसका अन्न उपजाना व्यर्थ है। इस प्रकार का स्वार्थपूर्ण उत्पादन ही उस व्यक्ति का सहार करता है, यह एक सत्य है।

इसलिए परिग्रह का आदर्श इस भावना मे प्रस्तुत किया गया है·

'शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सकिर।'[3]

सैकडो हाथो से इकट्टा करो, हजारो हाथो से बाट दो। सामाजिक-आर्थिक साम्य का इतना उदात्त भाव अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। मनुष्य को परिश्रम से धन प्राप्त करना चाहिय और समाज मे समान विभाजन होना चाहिये।

यदि मनुष्य धन का उपयोग अपने हित, अपने ही स्वार्थ-साधन के लिए करता है तो वह अनुचित और सामाजिक अन्याय है, इसलिये कहा गया है

'नार्यमण पुष्यति नो सखाय केवलाधो भवति केवलादी।'[4]

अर्थात् जो व्यक्ति धन को न धर्म मे लगाता है, न अपने मित्र को देता है तथा जो अपनी ही उदर-पूर्ति मे लगा रहता है, वह पापी है।

वेद ग्रन्थो मे उपलब्ध अपरिग्रह और त्याग के इस उदात्त रूप एव अकिंचनत्व को देखकर आधुनिक समाजवाद की नूतनता समाप्त हो जाती है। भारतीय चिन्तन धारा में आध्यात्मिक विकास के साथ साथ भौतिक समृद्धि पर भी बल दिया गया है। इस विचार को पारस्परिक प्रेम की भावना द्वारा ही बढावा देते हुए कहा गया है, 'श्रेष्ठत्व को अधिकृत करते हुए सब लोग हार्दिक प्रेम सहित मिलकर रहो। कभी विलग नही होना, एक दूसरे को प्रसन्न रखकर और एक साथ मिलकर भारी बोझ को खीच ले चलो। परस्पर मीठे वचन बोलो और अपने प्रेमी जनो से मिलकर रहो।'[5]

1 यजुर्वेद—40/1
2 ऋ० वेद—10/117/5
3 अथ० वेद—3/24/5
4 ऋ० वेद—10/117/6
5 अथ० वेद, पैप्पलाद सहिता—5/19

मिलता है जो उदार व्यक्तित्व का द्योतक है। मानव एक उच्चतम कामना करता है कि मैं सबको मैत्रीपूर्ण सुखकर एवं हितकर प्रिय दृष्टि से ही देखता हूँ और हम सब मानव मित्र की दृष्टि से एक दूसरे को देखते हैं। इतना ही नहीं, उसकी मान्यता है कि मैं समस्त मानवादि प्राणीवर्ग को आत्मवत् प्रिय मानूँ— केवल प्रिय ही नहीं, उनका हितकर, सुखकर भी बना रहूँ और वे भी मेरे प्रति ऐसी ही भावना रखें।

यह पारस्परिक मैत्री-भाव का प्रसार मानवतावाद का आधार है जो सर्वहित की कामना करता है। मित्र की दृष्टि सर्वथा प्रिय-भाव युक्त, शान्त एवं हितकर ही होती है, वह किसी भी प्राणी के प्रति अनिष्ट की भावना एवं ईर्ष्या द्वेष भाव नहीं रखती। इसीलिए अथर्ववेद में कहा गया है, 'जीवों के प्रति प्रमादी मत बनो।'[1] यह अहिंसा का व्यापक भाव है, क्योंकि प्रमाद के कारण (असावधानी और असयम से) प्राणों का व्यपरोपण करना—किसी जीव को ठेस लगाना—हिंसा है। वास्तव में सबके प्रति हमारा मित्रभाव तभी सिद्ध हो सकता है, जब हममें कपट, विश्वासघात, अनिष्ट चिन्तन, परार्थ विघात, स्वार्थ-सम्पादन के दुर्गुण न हों।

इसी भाँति एक अन्य प्रार्थना में कहा गया है, 'समस्त दिशाओं में अवस्थित निखिल मानवादि प्राणी मेरे मित्र-हितकारी बने रहें और मैं भी उन सब का हितकर मित्र बना रहूँ।'[2] जब हम सर्वत प्रथम सबके प्रति मित्र भाव रखने के लिए प्रयत्नशील बने रहेंगे, तभी वे सब हमारे प्रति भी मित्रभाव रखने के लिए तैयार होंगे। इस प्रकार परस्पर मित्र भाव रखने से ही मानव सच्चा बनकर सर्वत्र सुखपूर्ण भाव का प्रसार कर सकता है। सदभावना की कामना करते हुए कहा गया है—

'याश्च पश्यामि याश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि।'[3]

'भगवन् ऐसी कृपा कीजिए जिससे मैं मनुष्यमात्र के प्रति, चाहे मैं उनको जानता हूँ अथवा नहीं, सदभावना रख सकूँ।' यह मानव की सहज निश्चल परहित आकांक्षा है, वह सदाशयता का सवर्द्धन करने के लिए व्यग्र है। इसी सदभावना प्रसार के लिए वैदिक मानव फिर कहता है, 'तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे सज्ञान पुरुषेभ्य'[4] आओ हम सब मिलकर ऐसी प्रार्थना करें, जिससे मनुष्यों में परस्पर सद्भावना का विस्तार हो।

1 अथर्ववेद, 8/1/7
2 अथर्ववेद, 19/5/6
3, वही, 17/2/7
4 वही, 3/30/4

वैदिककाल के इस मैत्री-प्रसार भाव के साथ सामाजिक उन्नति और आर्थिक सन्तुलन के लिए शोषण-वृत्ति की निन्दा की गई है। जो व्यक्ति किसी का अधिकार छीनता है, दूसरो की सहायता अन्न, धन से नही करता वह समाज के लिए वाछनीय नही है। इन उदारचेता मनुष्यो ने धन और परिग्रह के प्रति अद्भुम अलिप्सा की भावना का प्रचार किया है :

'मा गृध कस्य स्विद्धनम्'[1]

किसी के धन के प्रति लोभ नहीं रखना चाहिए, क्योकि यह किसी एक के पास स्थिर नही रहता।[2]

इतना ही नही, स्वार्थी व्यक्ति की भर्त्सना भी की गई है। जो स्वार्थी है, उसका अन्न उपजाना व्यर्थ है। इस प्रकार का स्वार्थपूर्ण उत्पादन ही उस व्यक्ति का सहार करता है, यह एक सत्य है।

इसलिए परिग्रह का आदर्श इस भावना मे प्रस्तुत किया गया है :

'शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सकिर।'[3]

सैकडो हाथो से इकट्ठा करो, हजारो हाथो से बाट दो। सामाजिक-आर्थिक साम्य का इतना उदात्त भाव अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। मनुष्य को परिश्रम से धन प्राप्त करना चाहिये और समाज मे समान विभाजन होना चाहिये।

यदि मनुष्य धन का उपयोग अपने हित, अपने ही स्वार्थ-साधन के लिए करता है तो वह अनुचित और सामाजिक अन्याय है, इसलिये कहा गया है :

'नार्यमण पुष्यति नो सखाय केवलाघो भवति केवलादी।'[4]

अर्थात् जो व्यक्ति धन को न धर्म मे लगाता है, न अपने मित्र को देता है तथा जो अपनी ही उदर-पूर्ति मे लगा रहता है, वह पापी है।

वेद ग्रन्थो मे उपलब्ध अपरिग्रह और त्याग के इस उदात्त रूप एव अकिंचनत्व को देखकर आधुनिक समाजवाद की नूतनता समाप्त हो जाती है। भारतीय चिन्तन-धारा मे आध्यात्मिक विकास के साथ-साथ भौतिक समृद्धि पर भी बल दिया गया है। इस विचार को पारस्परिक प्रेम की भावना द्वारा ही बढावा देते हुए कहा गया है, 'श्रेष्ठत्व को अधिकृत करते हुए सब लोग हार्दिक प्रेम सहित मिलकर रहो। कभी विलग नही होना, एक दूसरे को प्रसन्न रखकर और एक साथ मिलकर भारी बोझ को खीच ले चलो। परस्पर मीठे वचन बोलो और अपने प्रेमी जनो से मिलकर रहो।'[5]

1 यजुर्वेद—40/1
2 ऋ० वेद—10/117/5
3 अथ० वेद—3/24/5
4 ऋ० वेद—10/117/6
5 अथ० वेद, पैप्पलाद संहिता—5/19

इस भावना मे एक श्रेष्ठ और स्थायी समाज का आदर्श है, जिसमे वर्ग-वैषम्य, संघर्ष, वैमनस्य, हिंसा जैसे दुर्गुण नही हैं। जीवन-व्यवहार का सुन्दर रूप मानव कल्याण को प्रेरित करता रहता है, इसीलिए कहा गया है, 'मेरा मन कल्याणकारी सकल्प वाला हो।'[1] इस सकल्प को व्यापक रूप दिया गया है, 'मै, मनुष्य ही नही, सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूं। हम सब परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें।'[2] मानव अपने कल्याण के लिए प्रार्थना करता है—'यद् भद्र तन्न आ सुव'[3] भगवन्, जो भद्र या कल्याण है, उसे हमे प्राप्त कराइए। इतना ही नही, 'हे यजनीय देवगण ! हम कानो से भद्र सुनें और आँखो से भद्र देखें।'[4] मन की भावना के परिष्कार के लिए प्रार्थना की गई है, 'भगवन् ! प्रेरणा दीजिए कि हमारा मन भद्र मार्ग का ही अनुसरण करे।'[5] जीवन दर्शन की दृष्टि कल्याण मार्ग को ही लक्ष्य माना गया है, 'भद्र या कल्याण-मार्ग पर चलते हुए हम पूर्ण जीवन को प्राप्त करें।'[6]

मनुष्य की व्यक्तिगत पवित्रता और सज्जनता के द्वारा ही मानव का मूल्याकन होता है, क्योंकि ये गुण उसका मार्ग-दर्शन करते हैं तथा जीवन लक्ष्य की सिद्धि मे सहायक होते हैं।[7] वेदो मे दान, परित्राण, सेवा, प्रिय वादिता, हित-कामना, सत्यवादिता, स्वाध्याय, सन्तोष को आन्तरिक पवित्रता के लिए महत्वपूर्ण बताया गया है। यदि मनुष्य भय की भावना से ही दूसरो का कल्याण करता है तो यह पाशविकता का चिह्न है। सेवा और कर्तव्य की मानवीय भावना से प्रेरित होकर हमे मानवता की सेवा करनी चाहिए।[8] हमारे सारे कर्म कर्तव्यपरायणता की पवित्र भावना स युक्त होने चाहिएँ, वे अह, क्रोध, घृणा रहित होने चाहिएँ।

यही भावना हमे मानवतावाद की ओर उन्मुख करती है। समाजवादी विचार धारा भी वेदो मे बडे उत्कृष्ट रूप मे मिलती है। अथर्ववेद मे कहा गया है, 'तुम लोगो का पानी समान हो, तुम्हारा अन्न समान हो। तुम सबको समान बन्धन मे बाँधता हूँ, तुम एक दूसरे के साथ सम्बन्धित रहो।'[9] इस कथन से स्पष्ट होता है कि समाज के मूल मे समानता की भावना नैसर्गिक

1 यजुर्वेद .34/1
2 मित्रस्याह चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ —यजुर्वेद 36/18
3 वही, 30/3
4 वही, 25/21
5 ऋग्वेद—10/20/1
6 वही—10/37/6
7 Journal of Indian History Vol XII, p 724 (Dec 1963)
8 वही, पृ॰ 727
9 अथर्ववेद—5/19/6

है, इसमे प्रकृति ही सबसे बडी सहायक है जो किसी प्रकार का भेदभाव नही रखती।

पारिवारिक और सामाजिक जीवन की व्यवहार-पद्धति के प्रति वेद अत्यन्त सचेत रहे हैं। मानव-जीवन के प्रत्येक पक्ष मे कल्याण की भावना प्रवाहित होती रहे, उनका ऐसा ही लक्ष्य था। वेद मे लिखा है—'हम एक साथ भोजन करें, एक साथ उठें-बैठें, परस्पर प्रेम करें जैसे गाय बछडे से करती है, पुत्र पिता का अनुयायी बने, माता सहृदय बने, स्त्री पति से मिष्ट भाषण करे तथा भाई-भाई और बहनें परस्पर द्वेष न करें।'[1] वैयक्तिक जीवन पद्धति का इससे श्रेष्ठ और कल्याणमय आदर्श और क्या हो सकता है। इसमें एक दूसरे की रक्षा के लिए भी प्रेरणा-तत्व उपलब्ध होते हैं—'पुमान पुमास परिपातु विश्वत।'[2] एक दूसरे की रक्षा और सहायता करना मनुष्यों का मुख्य कर्तव्य है।

इस प्रकार मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन लौकिक एव अलौकिक दृष्टि से वेदो का प्रमुख लक्ष्य था। उन्होंने प्राकृतिक शक्तियो को देवता तथा अलौकिक शक्ति का रूप प्रदान कर मानव के हृदय मे आस्था और आशा का सचार किया। इसी भावना को आधार बनाकर एक आदर्श समाज का निर्माण करने लिए मानव को प्रेरणा दी गई है, 'हे मनुष्यो! जैसे सनातन से विद्यमान, दिव्य शक्तियो से सम्पन्न सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि आदि देव परस्पर अविरोध भाव से, प्रेम से अपना अपना कार्य करते हैं, ऐसे ही तुम भी समष्टि-भावना मे प्रेरित होकर एक साथ कार्य मे प्रवृत्त होओ, एकमत्य से रहो और परस्पर सद्भाव बरतो।'[3]

वेदों के अनुसार मानवता का आदर्श प्राप्त करने के लिए जीवन मे नैतिक और आध्यात्मिक विकास परमावश्यक है। यह नैतिक श्रेष्ठता ही मानव के व्यक्तित्व का निर्माण करती है। आचार-विचार की पवित्रता न होने से आध्यात्मिक उन्नति नही हो सकती। मानव की पूर्णता नैतिकता मे ही है। प्रेम, सहानुभूति, मित्रता तथा एकता के गुणो की साधना ही मानवता की स्थापना करती है।[4]

वैदिक परम्परा मे उपनिषदो का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उपनिषद् आत्मा को ब्रह्म-रूप मे प्रतिष्ठित करने वाला ज्ञान है, इसीलिए इन्हें ब्रह्म-

1 अथर्ववेद—3/30
2 ऋग्वेद—6/75/14
3 स गच्छध्व स वदध्व स वो मनासि जानताम्।
देवा भाग यथा पूर्वे स जानाना उपासते॥—ऋग्वेद 10/191/2
4 Journal of Indian History, Vol XII, Part-III, p 728

विद्या भी कहा जाता है। आत्मा-परमात्मा का विशद विवेचन होने के कारण इसे मोक्ष विद्या तथा शान्ति विद्या भी बताया जाता है। उपनिषदो मे मानवीय कल्याण का दार्शनिक विवेचन है। इनमे बताया गया है कि आत्म विद्या के प्रभाव से ही आत्मप्रत्यक्षानुभव की शक्ति मिलती है।

उपनिषदो मे भौतिक आनन्द और आत्मिक आनन्द का भेद नैतिकता द्वारा स्पष्ट किया गया है। भौतिक सुख सासारिक कामनाओ की ही पूर्ति करते हैं। परन्तु मानव जीवन का लक्ष्य स्व-पर का कल्याण एव शाश्वत सुख को प्राप्त करना है। उपनिषदो मे लिखा है कि जिनमे कपट, मिथ्या-व्यवहार और माया नही है, उन्ही के लिए यह विशुद्ध ब्रह्मलोक है।[1] आत्मज्ञानी वह है जो सारे प्राणियो को अपने मे और अपने को सबमे देखता है। ऐसे ज्ञानी के लिए सारे प्राणी अपने हैं, ऐसा एकत्व-दर्शी ही मोह और शोक से दूर होता है।[2] समस्त विकारो से छुटकारा पाने पर ही मानव विश्व-कल्याण की ओर बढ सकता है।

उपनिषदो का धर्म अन्तर्लक्ष्यी और वर्ण-विद्वेष, भेद-भाव रहित था। दीर्घदर्शी ऋषियो ने यह अनुभव किया कि लौकिक अभ्युदय के बिना समाज का अस्तित्व नही रह सकता एव पारमार्थिक दृष्टि के बिना जीवन मे सुख तथा शान्ति की प्राप्ति नही हो सकती। यही उनकी उत्कृष्ट मानवतावादी विचारधारा थी।

लोक-सग्रह तथा कर्म

वेदो और उपनिषदो के ज्ञान का विवेचन गीता मे किया गया है और लोक कल्याण तथा लोक-सग्रह का उपदेश दिया गया है। इस लोक-सग्रह का आधार 'कर्म' है। कर्मयोग मे लोक-सग्रह का योग अत्यन्त आवश्यक है। वास्तव मे लोक-सग्रह का सिद्धान्त व्यक्ति द्वारा समाज के लिए किया गया वह अनुष्ठान है जिसका फल स्वय उस व्यक्ति से निरपेक्ष रहता है। नैतिकता का सर्वश्रेष्ठ आधार आत्म-कल्याण है, परन्तु लोक-सग्रह का सिद्धान्त स्वार्थ-भावना से परे परमार्थ है।

साधारण अर्थो मे लोक-सग्रह का अर्थ है, 'लोगो का सग्रह करना, उन्हें एकत्र और सम्बद्ध कर इस रीति से उनका पालन-पोषण और नियमन करे कि उनकी परस्पर अनुकूलता से उत्पन्न होनेवाला सामर्थ्य उनमे आ जावे, एव उसके द्वारा उनकी सुस्थिति को स्थिर रख कर उन्हें श्रेय-प्राप्ति के मार्ग मे लगा दे।'[3] इसका भाव यह भी निकलता है कि अज्ञान से स्वेच्छा से व्यवहार करने वाले

1 रामगोविन्द त्रिवेदी—वैदिक साहित्य, पृ० 186

2. वही, पृ० 184

3. बाल गगाधर तिलक—गीता-रहस्य, पृ० 347

लोगो को ज्ञानवान बना कर सुस्थिति मे एकत्र रखना और आत्मोन्नति के मार्ग मे लगाना ।

गीता मे प्रतिपादित लोक-सग्रह वेदों के लोक-सग्रह से भिन्न है क्योंकि वह भौतिक दृष्टिकोण से युक्त है । वेदो मे उसका स्वरूप भौतिक समृद्धि, लौकिक कामनाओं की पूर्ति से सम्बद्ध है जिसमे धन प्राप्ति,[1] गौओ और अन्न की प्राप्ति के लिए प्रार्थना,[2] वनस्पतियों द्वारा लाभ,[3] पृथ्वी द्वारा मणी, स्वर्ण, रत्न, अमित-वैभव की उपलब्धि,[4] शत्रुओ के नाश[5] की याचना की गई है । ऋग्वेद मे एक स्थान पर इन्द्र की प्रार्थना करते हुए कहा गया है, 'अनन्त-गुण-सम्पन्न वे ही इन्द्र हमारे उद्देश्यो को सिद्ध करें, धन दें, बहुमुखी वृद्धि प्रदान करें और धन के साथ हमारे पास पधारें ।'[6] इस प्रकार अनेक देवताओ की स्तुति लौकिक सम्पन्नता के लिए की गई है ।

वैदिक लोक सग्रह मे जो आसक्ति है वह गीता मे सम्पादित लोक-सग्रह मे नही है । गीता का लोक सग्रहीक साधारण, लौकिक ऐषणा रखने वाला प्राणी नही है वह ज्ञानी और परमार्थी है । लोक-सग्रह का अर्थ सभी लोको के कल्याण से है, ज्ञानी पुरुष समस्त सृष्टि के कल्याण की कामना करता है, यही उसका मानव कल्याण का मानवतावादी दृष्टिकोण है ।

लोक सग्रह ज्ञानयुक्त कर्म पर ही बल देता है । ज्ञानी पुरुषो के लिए यही उचित है कि वे लोगों में सदाचरण और शुद्ध बुद्धि का प्रसार करें तथा अपने कर्मों से सदाचरण की—निष्काम-बुद्धि से कर्मयोग की—प्रत्यक्ष शिक्षा दें । उन्हे कर्म नही छोड सकता, लोक-सग्रहार्थ उन्हें कर्म करना ही चाहिए । यदि ज्ञान से ज्ञानी परमेश्वर स्वरूप हो जाता है तो उसे वह कर्तव्य करना चाहिए जो परमेश्वर करता है, उसी की भाँति उस निस्सग-बुद्धि से कर्मरत होना चाहिए । परमेश्वर उसी के माध्यम से ससार का कल्याण करता है । ब्रह्मज्ञान हो जाने पर वह सब प्राणियो मे एक ही आत्मा देखता है । उसके मन मे सर्वभूतानुकम्पा आदि उदात्त वृत्तियाँ पूर्णतया जाग्रत होकर स्वभावत. लोक कल्याण की ओर प्रवृत्त हो जाती हैं ।

गीता के अनुसार आत्म-कल्याण मे ही समष्टि-कल्याण निहित है । वास्तव मे लोक-सग्रह मे ही अद्वैतवाद की यथार्थ भावना विद्यमान है । अत ज्ञानी

1 ऋग्वेद—10/164/1
2 अथर्ववेद—12/1/1
3 वही—12/1/27
4 वही—12/1/44
5 वही—12/1/14
6 ऋग्वेद—1/5/3

पुरुष को विरक्तिवश ससार-त्याग की अपेक्षा सात्विक बुद्धि से कर्म-रत रहना श्रेयस्कर है। ज्ञानी पुरुष को जगत् के समस्त कर्म निष्काम-बुद्धि से करते हुए सामान्य लोगो के समक्ष सद्व्यवहार का आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए, यही मानवता का आदर्श है, क्योकि आदर्श व्यक्ति के चरित्र एव व्यवहार को देख कर धर्म-अधर्म तथा कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान हो जाता है।

लोक-सग्रह के लिए गीता मे कर्म की विशद विवेचना की गई है। गीता प्रकृति-प्रधान ग्रन्थ है, उसमे वैराग्य का प्रतिपादन होने पर भी निवृत्ति नही है। अर्जुन को कर्म का उपदेश मानव-मात्र को कर्म का उपदेश है। मनुष्य दुख से निवृत्ति तथा सुख की प्राप्ति के लिए कर्म करता है। सभी मनुष्यो का ऐहिक परमोद्देश्य सुख ही है, अत कर्म अनिवार्य है।

परोपकार, उदारता, दया, ममता, कृतज्ञता, नम्रता, मित्रता आदि गुण मूल रूप मे अपने ही दुख के निवारणार्थ हैं। मनुष्य मे स्वभाव से स्वार्थ के समान ही भूतदया, प्रेम, कृतज्ञता आदि सद्गुण रहते हैं। जब हमारे हृदय मे करुणा का भाव जाग्रत होता है और उसमे दुख अनुभव होता है, तब उस दुख से मुक्त होने के लिए हम अन्य लोगो पर दया या परोपकार करते हैं। यही निष्काम कर्म का रूप है जो सब स्वार्थमूलक कर्मो को त्याज्य बताता है।[1]

कर्म सासारिक प्रवृत्ति है, उसके निष्काम होने पर वह लोक-सग्रह का रूप ग्रहण करता है क्योकि उसमे विशेष के प्रति आसक्ति नही होती, उसका रूप सामान्य होता है। आसक्ति मनुष्य को परिसीमित, सकीर्ण और हीन मनोवृत्ति का बनाती है और स्वार्थ रूप मे बाधा बनकर उसकी नैसर्गिक उदात्त भावनाओ को विकसित नही होने देती। इसलिए मानव को विश्व-कल्याण के लिए स्वार्थ त्याग कर निष्काम एव समद्रष्टा होकर कर्म करना ही श्रेयस्कर है। उस स्थिति म वह 'स्व' और 'पर' की कुठाओ से विनिर्मुक्त हो जाता है। वह जो काम अपने लिए करता है, वह प्रच्छन्न रूप से समस्त ब्रह्माड के लिए है और जो दूसरो के लिए करता है, वह भी अन्ततोगत्वा उसके अपने ही हित-साधन के लिए है। यह लोक-कल्याण अथवा मानवतावाद का श्रेष्ठ रूप है। इस प्रकार गीता की सबसे बडी प्रेरणा जीवन मे लोक-सग्रह के लिए प्रवृत्त करना ही है। क्षुद्रताओ, परिसीमाओ, कुठाओ, मनोविकारो, नश्वर जटिलताओ और स्वार्थ से मुक्ति पाना ही इसका चरमोद्देश्य है।

नीतिशास्त्र का प्रतिपाद्य भी श्रेष्ठ कर्म की प्रेरणा देना है। कर्म कर्तव्य है, कर्तव्य धर्म है, धर्म नीति है और ये समस्त लोक-सग्रह है—लोक-कल्याण है। नीति की चरम कसौटी यही है कि मनुष्य समस्त प्राणियो के कल्याणार्थ

1 लोकमान्य बाल गगाधर तिलक—गीता रहस्य, पृ० 84

कर्म करे। गीता के कर्मवाद का उद्देश्य यही है कि वह तात्विक दृष्टि से इस बात का उपदेश करे कि संसार मे मनुष्य मात्र का कर्तव्य क्या है।[1]

गीता महाभारत का ही एक अग है। उसमे लोक-सग्रह, कर्मयोग, नीति-ज्ञान, समता-बुद्धि का व्यावहारिक रूप अत्यन्त भव्य रूप मे उपलब्ध होता है, जो भारतीय मानवतावादी दृष्टिकोण की स्पष्ट और विशद व्याख्या प्रस्तुत करता है। लोक-सग्रही सर्वात्ममय होकर साम्य-बुद्धि से सबके साथ समान बर्ताव करता है। यही भाव हमे बृहदारण्यक[2], ईशावास्य[3] एव कैवल्य उपनिषद[4] तथा मनुस्मृति[5] मे भी मिलता है। गीता मे इस भाव का व्यापक रूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—'जब मैं प्राणीमात्र मे हूँ और मुझ मे सभी प्राणी हैं तब मैं अपने साथ जैसा बर्ताव करता हूँ वैसा ही अन्य प्राणियो के साथ भी मुझे करना चाहिए।'[6]

उपनिषद् और गीता के साम्य-नीति युक्त इस विचार का समर्थन करते हुए व्यास जी लिखते हैं, 'जो पुरुष अपने समान ही दूसरे को मानता है और जिसने क्रोध को जीत लिया है, वह परलोक मे सुख पाता है।'[7] इसी क्रम मे व्यवहार का स्वरूप बताते हुए कहा गया है·

'न तत्परस्य सन्दध्यात् प्रतिकूल यदात्मन ।
एष सक्षेपतो धर्म कामादन्य प्रवर्तते ।।'[8]

मनुष्य ऐसा बर्ताव औरो के साथ भी न करे जो उसे स्वय अपने प्रतिकूल, दुखकारक जँचे। यही सब धर्म और नीतियो का सार है और शेष सभी व्यवहार लोक-मूलक हैं।

जीवन के अस्तित्व और अहिंसा का व्यावहारिक रूप अत्यन्त सरल और उदात्त रूप मे अकित किया गया है·

'जीवित य. स्वय चेच्छेत्कथ सो न्य प्रधातयेत्।
यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत् ।।'[9]

1 लोकमान्य बाल गगाधर तिलक—गीता रहस्य, पृ० 26
2 बृह० उप०—2-4-14
3 ई० उ०—6
4 कैवल्य उपनिषद—1 10
5 मनुस्मृति—12-19, 125
6 'सर्वभूतस्थमात्मान सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शन ।।' —गीता 6-29
7 'आत्मोपमस्तु भूतेषु यो वै भवति पुरुष. ।
न्यस्तदण्डो जित क्रोध' स प्रेत्य सुख मेधते ।।'
—महाभारत, अनुशासन पर्व, 113-6
8 महाभारत, अनुशासन पर्व, 113-6
9 महाभारत, शान्ति पर्व, 258-21

जो स्वय जीवित रहने की इच्छा करता है, वह दूसरो को कैसे मारेगा ? हम ऐसी इच्छा, भावना रखें कि जो हम चाहते हैं, वही और लोग भी चाहते हैं।

हमे परस्पर 'निर्वैरि सर्वभूतेषु'[1] का भाव ही रखना चाहिए। हमे दुष्टो के साथ दुष्ट नही हो जाना चाहिए। महाभारत मे भी स्पष्ट कहा गया है, "न पापे प्रति पाप स्यात्साधुरेव सदा भवेत्'[2] अर्थात् हमे पापी के साथ पापी ही नही हो जाना चाहिए, उनसे भी साधुता का व्यवहार करना चाहिए। वास्तव मे वैर वैर से नष्ट नही होता, जब सब ही अपनी आत्मा के रूप हैं तो वैर, शत्रुता किससे किया जाय। दुष्ट और वैर का अन्त क्षमा और शान्ति से करना चाहिए। ईसाई धर्म मे भी नैतिकता और व्यवहार का ऐसा ही रूप मिलता है। हजरत ईसा ने बाईबल मे उपदेश देते हुए कहा है, 'तू अपने शत्रुओ पर प्रीति कर।'[3] भारतीय मैत्री-भावना, मानवीयता, दर्शन, धर्म के मूल मे भी यही कल्याणकारी विचारधारा है।

जैनधर्म मे मानव-कल्याण

वैदिक परम्परा के विरोध मे श्रमण परम्परा का उदय हुआ जो भारतीय चिन्तन-धारा मे क्रान्ति लाई। वेदो के देववाद तथा कर्मकाण्ड के अनुसार मनुष्य का कर्तव्य उनकी आज्ञाओ का पालन करना है। श्रमण परम्परा ने नैतिकता को महत्व देते हुए कहा है कि कर्तव्य-अकर्तव्य का निर्णय आत्मा की निर्मलता, सत्य, अहिंसा आदि नैतिक सिद्धान्तो के आधार पर होना चाहिए। श्रमण परम्परानुसार मनुष्य अपने लिए स्वय नैतिक नियमो का निर्माण करता है, सशोधन करता है और भले-बुरे परिणामो के लिए स्वय उत्तरदायी होता है। आत्म शुद्धि के साथ ही साधन-शुद्धि तथा साध्य-शुद्धि भी आवश्यक है।

इस परम्परा मे एक ओर जीवन का लक्ष्य कामनाओ का परित्याग तथा आत्म-शुद्धि बना, दूसरी ओर अहिंसा, सयम, तप आदि शुद्ध उपायो को अपनाया गया। इसमे चरित्र की श्रेष्ठता ही सर्वोपरि स्वीकार की गई। वर्ण-वैषम्य तथा वर्ग-वैषम्य को समाप्त कर इन्होने समानाधिकार की स्थापना की। श्रमण-परपरा मे जैन और बौद्ध का स्थान प्रमुख है। इन्होने चारित्रिक श्रेष्ठता, आचार-विचार की शुद्धता, अहिंसा, प्रीति तथा करुणा पर बल देते हुए विश्व-कल्याण की कामना की और मानव को दुःख से निवृत्ति का मार्ग बताकर, *कैवल्य एव निर्वाण की ओर उन्मुख करने के हेतु समन्वय, सहभाव, समानता* तथा मैत्री का उपदेश दिया। श्रमण परम्परा मे मानव ही नही, समस्त प्राणी

5 गीता—11-55
1 महाभारत, वन पर्व—206-44
3 बाइबल, मैथ्यू—5 44

समान हैं, समस्त वाह्य-भेद निराधार है तथा मानव जीवन का एकमात्र लक्ष्य पवित्र साधनों द्वारा आत्म कल्याण के साथ विश्व-कल्याण है।

जैन धर्म ने मूलत प्राणिया की समानता एव उत्थान के लिए प्रयत्न किया। इसके अनुसार जीवात्माओं म भौतिक समानता होने पर भी विविध प्रकार की विकृतिया के कारण विषमता आ जाती है। इस वैषम्य बुद्धि को दूर कर प्राणीमात्र के प्रति समता की बुद्धि स्थापित करना जैन धम का लक्ष्य है। इस समता का आधार है अहिंसा। कपायो से प्रेरित होकर दूसरा को मन, वचन, कर्म से पीडा देना हिंसा कहलाता है तथा इसके विपरीत भाव का नाम अहिंसा है।

जैन धर्म का स्यादवाद सिद्धान्त भी समतामूलक ही है। इसका अर्थ है दूसरे के दृष्टिकोण को उतना ही महत्व देना जितना स्वीय को दिया जाता है। तात्पर्य यह है कि अपनी अपनी अपेक्षा से सभी दृष्टिकोण किसी न किसी रूप मे विचारणीय हैं और न्यूनाधिक रूप मे ग्राह्य है।

प्राणियो मे विषमता कर्म-बन्धन के कारण है। व्यक्ति भले-बुरे कर्मों के फलस्वरूप आन्तरिक विषमता उत्पन्न करता और दु ख सुख का भागी बनता है, अत आन्तरिक समता के पोषण म ही मानव कल्याण है। व्यावहारिक क्षेत्र मे ममत्व एव परिग्रह से विषमता आती है। वस्तुओ का परिग्रह हिंसा आदि दुष्प्रवृत्तिया को जन्म देता है, इसीलिए जैन श्रमण एव श्रावको के लिए अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पांच व्रतो[1] का विधान है। इसके साथ ही साधन-भूत धर्म को तीन रूपो म विभक्त करते हुए कहा गया है, 'सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र[2] ये तीनो मोक्ष के साधन हैं—मानव व्यक्तित्व के पूर्ण विकास मे सहायक है।

जैन दशन म अहिंसा को विश्व कल्याण की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना गया है, यहां तक कि सामायिक उसी की शुद्ध मानी गई जो हरी वनस्पति तथा अन्य प्राणियो पर समभाव रखता है।[3] जिस मनुष्य मे हिंसा का पूर्ण-नाश हो जाता है वही पूज्य है, उसको देवता भी नमस्कार करते हैं, 'हे गौतम! जीव दया, सयम, मन, वचन, काया से शुद्ध ही मगलमय धर्म है। इस प्रकार के धर्म मे जिसका सदैव मन रहता है, वह पूज्य है।'[4]

1 हिंसा नृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहोम्योविरतिर्व्रतम् ॥
—स्था० स्थान० 5 उ० 1 सू० 389

2 सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्ष माग ॥ —उत्त० अ० 28 गा० 30

3 जो समो सव्वभूस्, तसेसु थावरेसु य।
तस्स सामाइय होइ, इइ केवलिभासिय ॥ —अनुयोगद्वार सूत्र

4 धम्मो मगलमुक्किठ, अहिंसा सजयो तवो।
देवा वि त नम सति जस्स धम्मे सया मणो ॥ —द० अ० 1 गा० 1

मानव मन के विकारो का नाश करने के लिए अठारह पापो का उल्लेख करते हुए कहा गया है, 'प्राणलेना, झूठ, चोरी, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, कलक, चुगली, परस्पर कलह, अधर्म मे आनन्द और कपट से बचना चाहिए।

सब को समदृष्टि से देखने पर ही मानव-कल्याण सम्भव है, 'हमे सबको, समस्त प्राणियो को, चाहे वे मित्र हो या शत्रु और किसी भी जाति के क्यो न हो, समान दृष्टि से देखना चाहिए।'[1] इसी से मैत्री भावना का प्रसार होगा, यही भाव हमारे वैषम्य को नष्ट करेगा।

सामायिक एव प्रतिक्रमण के समय यही भावना व्यक्त की जाती है कि—'मैं सब जीवो से क्षमा याचना करता हूं, सब जीव मुझे क्षमा प्रदान करें, सब प्राणियो से मेरी मित्रता है, किसी स मेरा वैर नही है।'[2] इस भावना द्वारा *मानव का व्यक्तित्व ही शक्तिशाली नही बनता वरन् उसकी आस्था भी दृढ* होती है। हमे प्रतिकूल व्यक्तियो स समभाव से व्यवहार करना चाहिए, विपरीत विचार वालो को घृणा की दृष्टि से नही देखना चाहिए और प्रतिकूल वातावरण मे भी आत्म-सतुलन बनाये रखना चाहिए।

जैन धर्म मे व्यक्ति का चरम लक्ष्य परमार्थ है। वह आत्म-कल्याण पर बल देता है किन्तु परार्थ और समाज के हितो को भी आवश्यक मानता है। इसमे व्यक्ति की पर शोषण वृत्ति, पर-पोषण का स्वरूप ग्रहण कर लेती है। मानव परहित और परोपकार के द्वारा आत्म-विकास और सद्भावना का प्रसार करता है।

ससार के सभी छोटे बडे प्राणी जीवन एव सुख की कामना करते हैं, इसलिए जब मानव स्वय जीने की इच्छा करता है, मृत्यु से भयभीत होता है तो *दूसरो के प्राण लेने का उसे कोई अधिकार नही है। जैन ग्रन्थो मे इस सम्बन्ध* मे उपदेश दिया गया है, 'हे गौतम! सब छोटे-बडे जीव जीने की इच्छा करते हैं, क्योकि जीवित रहना सबको प्रिय है, इसलिए निर्ग्रन्थ किसी का वध नही करते।'[3] इस बात को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि 'महापुरुष वही है जिसने ममता, अहकार, मग, बडप्पन सबको छोड दिया है, जो कीडी से कुजर तक प्राणीमात्र पर समभाव रखता है।'[4] एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि

1 समयाए समणो होई बभवेरेण बमणो।
नारतेण च मुणी होइ तवेण होई तावसो। —उ० अ० 1 गा० 26

2 खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमतु मे।
मित्ती में सव्व भूएसु, वैर मज्झ रग केणई॥ —आवश्यक सूत्र

3 सव्वे जीवा वि इच्छति जीविउ न मरिज्जिउ।
तम्हा पाणिवह घोर, निग्गथा वज्जयति ण॥ —द० अ० 6 गा० 11

4 निम्मो निरहकारो निसगो चत्त गारवो।
समो य सव्व भूएसु, तसेसु थावरेसु च॥ —उ० म० 10 गा० 89

हमे समस्त जीवो को अपनी आत्मा के समान मानना चाहिए ।[1]

सामाजिक समता की स्थापना करते हुए जैन धर्म मे कहा गया है—समाज मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र कर्मानुसार होते हैं, जन्म से नही ।[2] अत किसी एक वर्ग का आधिपत्य समाज मे नही होना चाहिए ।

जैन दर्शन मे बताया गया कि मनुष्य अपने ही श्रम से सफलता प्राप्त कर सकता है, मनुष्य के लिए श्रेष्ठ कर्म करना ही कल्याणकारी है। ससार मे सभी मनुष्य समान हैं और सभी के लिए उत्थान का मार्ग खुला हुआ है। मनुष्य ससार मे सयम तथा आचार-विचार की शुद्धता से ही अपना शुभ प्राप्त कर सकता है। वह अपना भी कल्याण कर सकता है और दूसरो का भी। इस प्रकार जैन दर्शन सर्वांगीण समता पर बल देता है, आचार मे समता, विचार मे समता, प्रयत्न और फल मे समता एव समाज मे समता, यह साम्य रूप अन्त -बाह्य दोनो ही प्रकार से प्रतिपादित है ।[3] हम समाज मे किसी भी प्राणी की उपेक्षा करके आगे नही बढ सकते। जैन दर्शन समन्वयवादी है। वह सबके पारस्परिक सहयोग द्वारा सामाजिक सतुलन स्थापित कर विश्व-कल्याण की कामना करता है।

इस प्रकार जैन धर्म ने मनुष्य-जाति की एकता, प्राणीमात्र की समता, 'स्व के विस्तार, समाज-कल्याण, नैतिक-सवर्द्धन तथा आचार-विचार की श्रेष्ठता पर बल दिया। साथ ही यह भी बताया कि समाज मे वर्ग एव वर्ण-विभाजन समाजिक सुविधाओ के लिए ही होना चाहिए, विषमता एव भेद-भाव उत्पन्न करने के लिए नही ।[4]

बौद्ध धर्म मे मानव कल्याण की भावना

बौद्ध-धर्म श्रमण-परम्परा की दूसरी शाखा है, जिसने अहिंसा, करुणा, नैतिकता और मैत्री भाव के सिद्धान्तो द्वारा दार्शनिक प्रश्नो को महत्वहीन बताकर नैतिकता एव सदाचार पर बल दिया।

भगवान् बुद्ध ने चार आर्य सत्य माने, जो इस प्रकार हैं[5]—

1 दुख—ससार दुखमय है।

2 दुख-समुदय—दुख शाश्वत नही है, इस दुख के कारणो का ज्ञान होना चाहिए।

1 सू० प्रथ० अ० 13 गा० 18

2. कम्मुणा बभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
कम्मुणा वइसो होइ सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥ —उ० अ० 25 गा० 33

3 Dr Indra Chander Shastri—Jainism and Democracy, p 40

4 वही, पृ० 148, 155

5 उमेश मिश्र—भारतीय दर्शन, पृ० 136

3 दु ख निरोध—दु ख मिट सकता है, यह विश्वास होना चाहिए।

4 निरोध हेतु—दु ख अपने आप नही मिटेगा इसलिए इसका मार्ग जानना चाहिए।

इन चार आर्य सत्यों का ज्ञान प्राप्त करके प्रत्येक बुद्ध दु ख का नाश तथा व्यक्तिगत बुद्धत्व को प्राप्त कर विश्व की दु ख-निवृत्ति म सहायता करना लक्ष्य मानता था। प्राचीन काल मे बुद्धत्व का आदर्श प्रत्येक जीव नही था, यह किसी-किसी उच्चाधिकारी का था किन्तु अद्वैतवाद के विस्तार के साथ साथ बुद्धत्व का आदर्श व्याप्त हो गया।[1] वासना के उपशम से प्राप्त निर्वाण *यथार्थ* नही माना गया। जब अपना और दूसरो का दु ख समान प्रतीत होता है और अपनी सत्ता का बोध विश्वव्यापी हो जाता है, जब समस्त विश्व मे अपनत्व आ जाता है, उस समय सबकी दु ख-निवृत्ति ही अपने दु ख की निवृत्ति मे परिणत हो जाती है। इस प्रकार निर्वाण महानिर्वाण बन गया और बोधिसत्व की चर्चा आवश्यक बन गई।

बोधिसत्व शब्द का प्रयोग पालि निकायो मे अनेक स्थल पर हुआ है जिस का अर्थ है बोधि के लिए यत्नशील प्राणी, किन्तु महायान सम्प्रदाय ने इसे एक *विशेष महत्व तथा अर्थ दिया। 'महायान के अनुसार बोधिसत्व वह प्राणी है जो* अपने व्यक्तिगत निर्वाण को प्राप्त होने पर भी उसे तब तक स्वीकार नही करता जब तक विश्व के अन्य सभी प्राणी मुक्त न हो जाएँ। वह पर-विमुक्ति के लिए आत्म विमुक्ति का उत्सर्ग करता है। अपनी मोक्ष की स्पृहा को पर-कल्याण के लिए छोडता है। आत्म विमुक्ति से सेवा उसके लिए बडी है। निर्वाण उसके लिए स्वार्थ है, क्षुद्र आदर्श है। पर-सेवा के लिए, दूसरो को दु ख से विमुक्त करने के लिए, अपने परमार्थ का भी उत्सर्ग कर देना यही उसके लिए सत्य का महान मार्ग है—महायान है। वस्तुत स्वार्थ के ऊपर परार्थ की प्रतिष्ठा ही महायान है बोधिसत्वो का यान है।'[2]

इस प्रकार विश्व कल्याण के लिए हीनयान के विपरीत महायान का आदर्श स्थापित हुआ। हीनयान शुभ-अशुभ दोनो वासनाओ को हेय मानता है। महायान अशुभ वासना—दु ख, राग-द्वेष, मोह, स्वार्थ—का त्याग कर करुणा, परोपकार, उदारता, प्रेम रूपी शुभ वासना के विकास पर बल देता है। हीन यान का लक्ष्य वैजातीय कल्याण है, इसे अर्हत् यान् भी कहा गया है। दूसरी ओर महायान के मतानुसार शुभ वासनाओ का उदय होने से बुद्ध योग्यता होने पर भी निर्वाण मे प्रवेश नहीं करते। उनके मन मे यह विचार उठता है कि जब तक ससार मे असख्य जीव कष्ट भोग रहे हैं, तब तक मैं अकेला सुखी

1 आचार्य नरेन्द्रदेव—बौद्ध धम-दशन पृ० 16

2 डा० भरतसिंह उपाध्याय—बौद्ध-दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, पृ० 604 605

नही बन सकता। बोधिसत्व समस्त प्राणियो के दु खो को अपना समझते हैं और उनके सुख और कल्याण के लिए अभियान प्रारम्भ करते हैं।[1] इस प्रकार बोधिसत्व अन्य प्राणियों की दु ख निवृत्ति के लिए एक महान् त्याग करता है। वह एक श्रेष्ठ मानवीय लक्ष्य के लिये अलौकिकता के प्राचीन आदर्श का त्याग कर देता है।[2] बोधिसत्व महाप्राणी है, वह महा परनिर्वाण के लिए प्रयत्न करता है। वह 'सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करने के लिए उद्योग करता है और व्यक्तिगत निर्वाण का निषेध कर पर-सेवा मे रत रहता है।'[3]

महायान मे अर्हत का आदर्श निर्वाण बताया गया है, परन्तु बोधिसत्व के लक्ष्य के सम्बन्ध मे उसने सदा 'अनुनरा सम्यक् सम्बोधि' शब्द का प्रयोग किया है। निर्वाण से श्रेष्ठ बोधि की मान्यता महायान की है। 'बोधिसत्व बोधि के लिए प्रयत्नशील होता है और निर्वाण का निषेध करता है, क्योकि दु खपूर्ण ससार मे जनसेवा करनी है, लोगो को दु ख-विमुक्त करना है।'[4]

बोधिसत्व मे मानव-कल्याण के लिए, प्राणीमात्र को सुख पहुँचाने के लिए दृढ भावना है, वह इस शुभ की प्राप्ति के लिए सब कुछ सहने को तैयार है, 'मैं सबके दु ख का भार ग्रहण करता हूँ और मैं कदापि इस कार्य से निवृत्त न होऊँगा, न भागूंगा, न सत्रस्त होऊँगा, न भयभीत होऊँगा, मैं कदापि इस पथ से पीछे नही हटूंगा।[5] प्रतीत होता है इसने लोकसेवा और परानुकम्पा को ही जीवन का लक्ष्य तथा दु ख से निवृत्ति को सर्वोत्तम मार्ग माना।

पतजलि के योग-दर्शन मे चित्त के परिकर्म के रूप मे मैत्री, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा[6] के नियमित परिशीलन की उपयोगिता दिखाई गई है। बौद्ध-साहित्य मे इसे ब्रह्म-विहारों का नाम दिया गया है।[7] किन्तु महायान मे करुणा का रूप योग-दर्शन से भिन्न है, वह महाकरुणा है। इसमे केवल अन्तराय व्यक्तिगत मुक्ति नहीं है न ही यह जीवन-मुक्ति है तथा न ही इसमे सकीर्ण भावना है।

बौद्ध ब्रह्म विहार बताते हैं कि हमे जीवो के प्रति किस प्रकार सम्यक् व्यवहार करना चाहिए। ब्रह्म विहारो की भावना करने वाला योगी सब

1 Hardayal—The Bodhisattava, Doctrine, p 17
2 वही, पृ० 17
3 डा० भरतसिंह उपाध्याय—बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय-दर्शन, पृ० 605
4 वही पृ०, 606
5 'अह च दु खोपादान उपाददामि। न निवर्ते, न पलायामि, सत्रस्त नोत्त्रस्यामि, न सत्रं स्यामि, न बिभेमि, न प्रत्युदावर्ते, न विषीदामि।' —शिक्षा समुच्चय—शातिदेव, 16
6 मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाण सुख दुःख पुण्यापुण्य विषयाण भावनातश्चित प्रसादनम्'
—योगदर्शन, समाधिपाद, सू० 33
7 आचाय नरेन्द्रदेव—बौद्ध धर्म-दर्शन पृ० 17

प्राणियो के हित-सुख की कामना करता है, सबको सुखी देखकर ही सुख का अनुभव करता है। योग के अन्य परिकर्म केवल आत्म-हित के साधन हैं किन्तु ये चार ब्रह्म-विहार परहित के साधन हैं।[1]

मैत्री—जीवो के प्रति सुहृद्भाव की अभिव्यक्ति मैत्री है। मैत्री की प्रवृत्ति परहित साधन के लिए है। 'जीवो का उपकार, उनके सुख की कामना तथा द्वेष और द्रोह का परित्याग इसके लक्षण हैं।···मैत्री का सौहार्द तृष्णा-वश नही होता, किन्तु जीवो के हित साधन के लिए होता है। · ·मैत्री का स्वभाव अद्वेष है और यह अलोभ-युक्त होता है।'[2]

करुणा—करुणा दूसरो के प्रति सदाशयता उत्पन्न करती है और हम दूसरो के दु ख को दूर करना चाहते हैं, हमारा हृदय उनके दु ख को देखकर द्रवित हो उठता है। 'पराये दु ख को देखकर सत्पुरुषो के हृदय मे जा कपन होता है, उसे 'करुणा' कहते हैं।'[3] साधु-पुरुषो के हृदय मे करुणा सहज ही जाग्रत हो जाती है और वे लोक-कल्याण की ओर उन्मुख होते हैं। बोधिसत्व मे स्वार्थमूला के करुणा, सहेतुकी करुणा से बढकर अहेतुकी महाकरुणा होती है वह प्राणियो के उद्धार के लिए चल पडता है, इसमे न वह किसी स्वार्थ से प्रेरित होता है, न हीं पात्र को देखता है। यह एक प्रकार से भगवान का करुणामय रूप है।

मुदिता—इस भावना मे बोधिसत्व दूसरो को सम्पन्न देखकर प्रसन्न होता है, वह ईर्ष्या, द्वेष नही करता। 'मुदिता' का लक्षण 'हर्ष' है। मुदिता-भावना मे हर्ष का जो उत्पाद होता है उसका शान्त प्रवाह होता है। वह उद्वेग और क्षोभ से रहित होता है।'[4]

उपेक्षा—यह जीवो के प्रति उनको कर्माधीन मानकर उदासीन भाव रखना है। 'उपेक्षा की भावना करने वाला योगी जीवो के प्रति समभाव रखता है, वह प्रिय-अप्रिय मे कोई भेद नही करता।'[5] वह सबको राग-द्वेष रहित समदृष्टि से देखता है।

इन चारो ब्रह्म-विहारो से जीवो के प्रति कुशल-चित्त की चार प्रवृत्तियाँ उपलब्ध होती हैं, 'दूसरो का हित साधन करना, उनके दु ख का अपनयन करना उनकी सम्पन्न अवस्था देखकर प्रसन्न होना और सब प्राणियो के प्रति पक्षपात रहित और समदर्शी होना।'[6]

1 आचार्य नरेन्द्रदेव—बौद्ध धर्म-दर्शन, पृ० 94
2 वही, पृ० 94
3 वही, पृ० 95
4 वही, पृ० 95
5 वही, पृ० 95
6 वही, पृ० 97

बौध धर्म ने साधना मार्ग मे तीन बातों को रखा है —1 शील, 2 समाधि और 3 प्रज्ञा। 'शील से अपाय (पाप) का अतिक्रम होता है, समाधि से काम धातु का और प्रज्ञा से सर्वभव का समतिक्रम होता है।'[1] अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि नैतिक सदाचार शील के अन्तर्गत हैं। समाधि का अर्थ है मन की एकाग्रता, प्रज्ञा का अर्थ है वास्तविकता का साक्षात्कार।

इन समस्त आचार-विचार के गुणों से पूर्ण होकर ही व्यक्ति विश्व कल्याण कर सकता है। बुद्ध के मौलिक उपदेशो मे आत्म-कल्याण और पर-कल्याण, आत्मार्थ और पराथ, ध्यान और सेवा का उचित सयोग मिलता है। वे भिक्षुओं को बहुजन हितार्थ, बहुजन कल्याणार्थ, लोक की अनुकम्पार्थ, चारो ओर घूमने की प्रेरणा देते हैं।[2] लोक-कल्याण के अपने उद्गारों को अभिव्यक्त करते वे कहते हैं, 'मुझ शक्तिशाली पुरुष के लिए अकेले तर जाने से क्या लाभ ? मैं तो सर्वज्ञता को प्राप्त कर देवताओ सहित इस सारे लोक को तारूँगा।'[3]

लोक-कल्याण की अपरिमित भावना बोधिसत्वो मे मूलरूप से व्याप्त है, उनकी कामना है कि मेरा कोई कुशल-मूल, पुण्य-मूल ऐसा न हो जो दूसरे प्राणियों का उपजीव्य न बने। वे अपने पुण्य कर्मों से प्राणीमात्र का कल्याण चाहते हैं। अपनी साधना का अपने लाभ के लिए, मुक्ति अथवा निर्वाण के लिए उपयोग करना उनको काम्य नही है इसलिये वे कहते हैं, 'मैं परिनिर्वाण मे प्रवेश नही करूँगा, जब तक कि विश्व के अन्य सब प्राणी विमुक्ति प्राप्त न कर लें।'[4]

बोधिसत्व मोक्ष नही चाहता। उसका लक्ष्य 'प्राणियो की विमुक्ति के लिए जो आनन्द सागर उमडते हैं, वही पर्याप्त हैं, रसविहीन मोक्ष का क्या करना।'[5]

शील और साधना का इससे गहरा सम्बन्ध है कि बोधिसत्व मानव-कल्याण के लिए किस प्रकार अग्रसर हो, यह आचार-विचार की श्रेष्ठता उत्पन्न करते हैं। भगवान् बुद्ध ने अपने शिष्यो को बताया, 'किसी की निंदा

1 आचार्य नरेन्द्रदेव—बौद्ध धर्म-दर्शन, पृ० 19

2 'चरथ भिक्खवे चारिक बहुजन हिताय बहुजन सुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सान ।' —विनय पिटक, महावग्ग

3 किं मे एकेन तिण्णेन पुरिसेन थाम दस्सिना सब्बञ्ञुत पापुणित्वा सन्तोरेस्स सदेवय ।' —जातकट्ठ कथा—निदान कथा

4 लंकावतारसूत्र 66/6

5 'मुच्यमानेषु सत्येषु ये ते प्रामोद्यसागरा ' तैरेव ननु पर्याप्त मोक्षेणारसिकेन किम् । —बोधिचर्यावतार 8/108

न करो, अहिंसा व्रत का पालन करो, सयम से रहो, मित भोजन करो, एकान्त मे वास करो तथा योग मे चित्त लगाओ।'[1]

शील का समभाव के विकास और सार्वभौमिक कल्याण के सम्बन्ध मे महत्व बताते हुए सयुक्त निकाय मे कहा गया है, 'जो मनुष्य शील मे प्रतिष्ठित है, समाधि और विपश्यना (प्रज्ञा) की भावना करता है, वह प्रज्ञावान् और वीर्यवान भिक्षु इस तृष्णा जरा का नाश करता है।[2] शील शासन की मूल-भित्ति, आधार है। इसलिए शील शासन का आदि है यही शासन की आदि-कल्याणता है। सर्वपाप से विपरीत शील ही है। कुशल (शुभ) मे चित्त की एकाग्रता समाधि है। यह शासन का मध्य है। प्रज्ञा, विपश्यना शासन का पर्यवसान है। 'यह प्रज्ञा इष्ट अनिष्ट मे तादि-भाव (सममत्व) का आह्वान करती है।'[3]

द्वेष और क्षमा के त्याग और ग्रहण के सम्बन्ध मे शान्तिदेव कहते है, 'द्वेष के समान पाप नही है, क्षमा के समान तपस्या नही है, अतएव, प्रयत्नपूर्वक तथा विविध उपायो से क्षमाशीलता का अभ्यास करना श्रेयस्कर है।'[4] बौद्ध-धर्म मे मानव-कल्याण पर सत्यानुभूति और सहानुभूति से विचार किया गया है। इसमे सबके लिए करुणा और मैत्री की भावना है।[5] इस ध्येय की सिद्धि के लिए हमे अपने आचरण पर विशेष ध्यान देना चाहिये, क्योकि परहित साधन के लिए हमारे आचरण का बडा महत्व है। हमारे आचरण का लक्ष्य श्रेष्ठ-कर्म, पर-पीडा हरण और पर सुख होना चाहिए। कर्म तथा सर्वहित की भावना से कहा गया है, 'हमे कोई ऐसा क्षुद्र आचरण नही करना चाहिए, जिससे कि सुविज्ञ जन हमे दोष दें। हमे सदा यही भावना करनी चाहिये कि जगत् के समस्त प्राणी सुखी, सक्षेम तथा सानन्द रहें।'[6]

बौद्धधर्म मे प्रेम, सेवा, समता का अद्भुत रूप प्रस्तुत किया गया है। साधक इतना दृढ-सकल्प है कि वह इस दु खरूप विश्व के समस्त प्राणियो को मुक्ति दिलवाकर ही स्वय कुछ ग्रहण करेगा,[7] अन्यथा उसे सन्तोष नही है। वह दु ख

1 धम्मपद—बुद्धवग्गो, 1-2

2 सीले पतिट्ठाय नरो सप्पञ्ञो चित्तं पञ्ञञ्च भावयं।
आतापी निपको भिक्खु सो इमं विजटये जटं ॥1॥ —सयुत्त निकाय। 1/13

3 आचार्य नरेन्द्रदेव—बौद्ध धर्म-दर्शन, पृ० 18

4 'न च द्वेष सम पाप न च क्षान्ति सम तप।
तस्मात् क्षान्ति प्रयत्नेन भावयेद् विविधैर्नयै'॥ ..बोधिचर्यावतार, 6/2

5 Dr S N Dass Gupta—Philosophical Essays, p 260

6 सुत्त निपात—मेत्त सुत्त

7, शिक्षा समुच्चय 14/8

का अनुभव कर चुका है अतः वह प्राणीमात्र को दु ख से मुक्त कराना चाहता है।

वह सबको समान समझता है, 'जैसा मैं हूँ वैसे ही वे हैं और जैसे वे है वैसा ही मैं हूँ, ऐसा समझकर न किसी को मारे तथा न मारने को प्रेरित करे।'[1] बोधिसत्व के हृदय मे समस्त जीवो के प्रति असीम वात्सल्य है, 'एकमात्र गुणवान पुत्र के ऊपर किसी श्रेष्ठि या गृहस्वामी का जैसा मज्जागत प्रेम होता है, महा कारुणिक बोधिसत्व का भी समस्त जीव-जगत् के ऊपर वैसा ही मज्जागत प्रेम होता है।'[2] इतना ही नही वह इस प्रेम का, मुक्ति प्राप्ति का सबको अधिकारी मानते हैं, इसमे वर्ण, जाति, वर्ग का कोई बन्धन नहीं है, 'जन्म से कोई वृषल नही होता, जन्म से कोई ब्राह्मण नही होता। कर्म से वृषल होता है, कर्म से ब्राह्मण होता है। ब्रह्मलोक की उपपत्ति मे जाति बाधक नहो हुई।'[3] प्रकृति सबको समान समझती है, वह अपनी सुविधाएँ देने मे किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रखती। बोधिसत्व इसी प्रकार सबके सुख का कारण बनने की आकाक्षा रखता है, 'जिस प्रकार पृथ्वी, अग्नि आदि भौतिक वस्तुएँ सम्पूर्ण विश्व मडल मे बसे प्राणियो के सुख का कारण होती हैं, उसी प्रकार आकाश मे नीचे रहने वाले सब प्राणियो का मैं उपजीव्य बनकर रहना चाहता हूँ, जब तक कि वे सब मुक्ति प्राप्त न कर लें।'[4]

मानव जीवन का परमलक्ष्य सेवा होना चाहिए क्योकि सेवा मे एक अनिर्वचनीय, अद्भुत आनन्द है जो हृदय को अनन्त सुख सागर मे डुबा कर भावविभोर कर डालता है। इसीलिए निर्वाण-पथ के अनुगन्ता की भावना है—'मैं अनाथो का नाथ बनूंगा, यात्रियो का मैं सार्थवाह बनूंगा, पार जाने की इच्छा करने वालो के लिए मैं नाव बनूंगा, मैं उनके लिए सेतु बनूंगा, घरनिया बनूंगा। दीपक चाहने वालो के लिए मैं दीपक बनूंगा, जिन्हें शैय्या की आवश्यकता है उनके लिए मैं शैय्या बनूंगा। जिनको दास की आवश्यकता है उनके लिए मैं दास भी बनूंगा। इस प्रकार मैं सब प्राणियो की सेवा करूंगा।'[5]

5. सुत्त निपात—नालक सुत्त
1. शिक्षा समुच्चय...16
2 सुत्त निपात—वृषल सुत्र
3 'पृथिव्यादीनभूतानि नि'शेषाकाशवासिनाम्। सत्वानाम प्रेमयाण यथा योग्याननेकधा।
एवमाकाशनिष्ठस्य सत्वधातोरने कधा। भवेयमुपजीव्यो ह भवत्सर्वे न निवृताः।
—बोधिचर्यावतार, 1/20-21
4 अनाथामह दास सार्थवाहश्चयायिनाम्।
पारेप्सूना च नौभूत सेतु सक्रम एव च।
दीपार्थिनामह दीप शय्या शय्यार्थिनामह।
दासार्थिनामहं दासी भवेम सर्वदेहिनाम्॥ —बौधिचर्यावतार 3/17-18

सेवा भाव के लिए उसमे गहन-व्यग्रता है, वह मानव जीवन का कोई पक्ष नही छोडना चाहता जिसमे सेवा न करे। यही उसके आनन्द का स्रोत है, उसकी कल्याण-कामना का आधार है और जीवन का उदात्त रूप है।

बौद्धधर्म मे मानव जीवन का बडा महत्व है। उसका सैद्धान्तिक पक्ष जितना सबल है, व्यावहारिक उससे अधिक सक्षम है—उदात्त एव भव्य है। शिक्षासमुच्चय मे समाज का श्रेष्ठ आदर्श प्रस्तुत किया गया है जिसमे मानवतावाद का सत्य रूप प्रतिपादित है और एक सौहार्दपूर्ण समाज का चित्रण है। हमारे जीवन मे नैतिक, भौतिक, लौकिक और अलौकिक श्रेष्ठता होनी चाहिए। समाज मे किसी प्रकार का भी शोषण नही होना चाहिए अन्यथा वह विकृत बन जाता है और मानव जीवन की सौम्यता एव भव्यता नष्ट हो जाती है।

यदि हमे इस दु खमय जगत को आनन्द रूप मे परिवर्तित करना है तो इसको खण्ड-खण्ड करके, देश, जाति के अनेक भागो मे विभाजित न कर एक अखण्ड प्राणीलोक के रूप मे देखने तथा बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। दु ख को मेरा दु:ख, तेरा दु ख—इस प्रकार विच्छिन्न रूप मे न देख कर एक अखण्ड रूप मे देख कर ही उसका प्रतिकार करना होगा, नही तो ससार मे दु ख दूर नही होगा।

मोह मुग्ध होकर हम लोग अपने अपने सुख सचय की चेष्टा मे एक दूसरे को दु ख देकर, घोर दु ख का सचय कर रहे है। सर्वत्र समान सुख हो, सर्वत्र समान पुष्टि हो, इस अभिन्न एव एकात्म भाव के सवर्द्धन पर ही हम सार्वभौमिक कल्याण की लक्ष्य-सिद्धि कर सकते हैं, एक भव्य और सुखद मानव-जीवन की आधारशिला रख सकते हैं तथा एक सौहार्दपूर्ण समाज की स्थापना कर सकते हैं।

भारतीय विश्व-कल्याण का समन्वयात्मक रूप

विश्व-प्रेम और विश्व-मगल की कामना भारतीय चिन्तनधारा की मूल भावना है। आधुनिक काल मे इसे मानवतावाद की सज्ञा प्रदान की गई किन्तु इससे पूर्व यह भावना आदर्श-मानव, विश्व-कल्याण, लोक-कल्याण, लोक-हित, वसुधैव कुटुम्बकम्, सार्वभौमिक एकता, सर्वात्मऐक्य, पचशील पालन, लोक-सग्रह, महाकरुणा, सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय जैसी कल्याण-परक शब्दावलियों मे अभिव्यक्त होती रही। भारत मे विश्व-परिवार की कल्पना या महामानव का विचार अनादिकाल से पोषित होता रहा है। निवृत्ति एव प्रवृत्ति मार्ग दोनो ही पक्षो ने सर्वकल्याण के लिए प्रयत्न किया और मानव-मात्र की मुक्ति तथा प्राणीमात्र के हित पर बल दिया और उसके लिए उपाय खोज निकाले तथा यह भी स्पष्ट किया कि अपार ज्ञान के साथ मनुष्य को हृदय का

विकास भी करना चाहिए। इनकी साधनात्मक प्रवृत्ति यह थी कि जगत की कल्याण-कामना ही सबसे बडी भगवत्सेवा है, अत विश्व-हित-चिन्तन ही मानव का परम कर्त्तव्य है।

अधोगामिनी आसुरी वृत्तियो से मनुष्य को अपनी रक्षा करनी चाहिए क्योकि ये मनुष्य का पतन करती हैं। 'स्व' की भावना से स्वार्थ, हिंसा, असत्य, सग्रह प्रवृत्ति, अहकार, भय, अधिकार-लिप्सा, विषमता, भोगपरायणता, द्वेष जैसे दुर्भावपूर्ण विकार मनुष्य को सत्वगुण से रजोगुण और रजोगुण से तमोगुण की ओर ले जाते हैं। इसलिए मनुष्य म सद्गुण, सद्भाव और सदाचार होने चाहिएँ और उसे सात्विक वृत्ति का पोषण करना चाहिए, जिससे वह परार्थभाव, अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, सेवाभाव, विनम्रता, समता और त्याग की ओर प्रवृत्त होता है और शाश्वत शाति एव आत्यन्तिक आनन्द को प्राप्त करता है।

वेदो की मान्यतानुसार समग्र ससार ऋत् नियन्त्रित है अर्थात् सत्य की धुरी पर प्रतिष्ठित है। ऋत् एक जीवन्त नैतिक आधार है जो समग्र ससार को सयोजित करता है तथा नैतिक नियमो, आचार-विचार एव विधि-निषेध की स्थापना करता है। वैदिक काल मे ऋत् की कल्पना, उपनिषद् काल मे जीव-मुक्त का आदर्श, पुराण काल मे अवतार की प्रतिष्ठा, बौद्धकाल मे महायान द्वारा सम्यक सम्बुद्ध का आदर्श और सतकाल अथवा धार्मिक उत्प्रेरणा के युग म साक्षात् कृतधर्मा गुरु द्वारा शिष्य को नैतिक एव आध्यात्मिक मार्ग पर चलाने का उपदेश, इन सभी से एक बात स्पष्ट होती है कि वैदिक काल मे सतकाल तक भारतीय चेतना एक ऐसे वर्ग की कल्पना करती रही है जो सम्पूर्ण नैतिक और आध्यात्मिक उपलब्धियो के पश्चात् भी लोक-कल्याण के लिए प्रवृत्त रहा है।

लोक-कल्याण के प्रति उनकी यह प्रवृत्ति किसी ऐसे फल या उद्देश्य से प्रेरित नही थी जिसका फल उस वर्ग को ही प्राप्त हो। इस मानवता का आधार व्यक्ति की अपनी परिशुद्ध निष्ठा नही थी बल्कि परिशुद्ध व्यक्ति का मानव मात्र के लिए अपने समग्र कार्यों का विनियोग अभीप्सित था। यही कारण है कि लोक-कल्याण के लिए किए गए समग्र कर्म उस व्यक्ति को अपने फलो स नही बाँधते। भगवान् कृष्ण ने गीता मे इस बात को बडे स्पष्ट शब्दो मे कहा है, 'हे पार्थ, मुझे अपने लिए कुछ भी करना शेष नही है, तीनो लोको मे मे कही भी, न कुछ पाना ही है जो मुझे पूर्व प्राप्त न हो तथापि मैं अनवरत कर्म मे लगा हुआ हूँ।'[1]

1 'न मे पार्थास्ति कर्त्तव्य त्रिषु लोकेषु किचन ।
नानवाप्तमवाप्तव्य वर्त एव च कर्मणि ॥' —गीता 3/22

अनासक्त का कर्म से यह ससर्ग ऋषि, सम्यक्-समबुद्ध, अर्हत, जिन, जीवनोन्मुक्त, गुरु-सत और स्वय (भगवान्) सभी के लिए भारतीय चिन्तन मे आवश्यक एव काम्य रहा है। इस विधान का कर्ता सर्वथा पूत-हृदय होता है किन्तु उसके फल का भोक्ता समाज है।

तान्त्रिक साहित्य मे एक स्थान पर लिखा है कि ससार का प्रत्येक मनुष्य अपने-अपने कर्तव्य की ओर दौड रहा है। उसे दूसरे की मनोवृत्ति को अपनाने की कोई चिन्ता नही है, किन्तु जो व्यक्ति ससार के समग्र मतो को विनष्ट कर, भैरवी भाव से सर्वथा समाविष्ट हो जाता है, उसके लिए लोक-कर्त्तव्य मे प्रवृत्त होना ही एकमात्र मार्ग है।[1]

अत जब मानव का 'स्व' अत्यन्त व्यापक होकर प्राणीमात्र मे व्याप्त हो जाता है तब उसे सर्वत्र एकात्मभाव के दर्शन होते हैं और अखिल विश्व का सुख और हित उसका अपना सुख और हित बन जाता है। जगत् व लघु विशाल समस्त प्राणियों मे आत्मानुभूति करके सबको सुख पहुँचाने की सहज चेष्टा करने वाला मानव ही मानवतावादी है, सार्वभौमिक कल्याण का आकांक्षी है।

मानवतावाद के पक्ष

मानवतावाद का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, सार्वभौमिकता के गुण के कारण इसकी कोई निश्चित सीमा रेखा नही हो सकती। मनुष्य के जीवन मे नैतिकता, धर्मपरता, दार्शनिकता एवं सामाजिकता प्रमुख अग हैं जो उसके मानतावादी स्वरूप का सृजन करते हैं, हम यहां सक्षेप मे उन्ही पर विचार करेंगे।

नैतिक-पक्ष

मानवतावादी नीतिशास्त्र का लक्ष्य, विचार तथा कर्म की दृष्टि से मानव-कल्याण तथा गौरव सवर्द्धन के लिए रुचि-प्रदर्शन है।[2] इसका यथार्थ रूप मानव मात्र की सेवा के रूप मे मिलता है। जर्मन दार्शनिक काट मानवता के लिए मानवीयता को साध्य बनाने पर बल देते है। मानवीयता को साधन बनाने से इसका महत्व ही क्षीण नहीं होता इसका औदार्य भी क्षीण हो जाता

1 'स्व कर्तव्य किमपि कलयल्लोक एव प्रयत्ना।
न्नो पारक्य प्रतिघटयते काचन स्वात्मवृत्तिम्।
यस्तु ध्वस्ताखिलभव यतो भैरवी भाव पूर्ण,
कृत्य तस्य स्फुरतमिद लोक कर्तव्यमात्रम्॥'
—महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज—भारतीय सस्कृति और साधना, पृ० 232।

2 Corlis Lamont—Humanism As A Philosophy, p 273

है ।[1] मानवता विषयक यूनानी दृष्टिकोण भी नैतिक ही अधिक था,[2] क्योंकि यह आदर्श-मानव के स्वरूप-निर्माण मे अधिक सहायक है ।

मानव का व्यावहारिक जीवन समाज से सम्बद्ध है इसलिए उसका अस्तित्व नैतिक-मूल्यो के अस्तित्व से सम्बन्धित है । इस विचार से नैतिक अनुभव मानवीय समाज की एक सार्वभौम विशेषता है, इसलिए मानवतावादी नैतिक मूल्यो तथा इनसे सम्बन्धित समस्याओ को अधिक महत्व देते रहे हैं । मनुष्य की नैतिकता तथा धार्मिक खोज जीवन-विवेक की खोज है । विवेक तथा नैतिकता द्वारा चरम आदर्श की उपलब्धि के सम्बन्ध मे डा० देवराज लिखते हैं—आचारशास्त्र के इतिहास मे चरम आदर्श या मूल्य से सम्बन्धित हम अनेक धारणाएँ पाते है, जैसे सुख, पूर्णत्व, आत्म-लाभ, नियम-पालन तथा ईश्वरीय अनुशासन का अनुसरण आदि । इसी सदर्भ मे तीन बातें हमारे सम्मुख आती हैं, प्रथम, चरम आदर्श अथवा मूल्यग्राह्यता, द्वितीय, नैतिक मूल्याकन के मापदडो का सामजस्य और तृतीय, व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध ।[3] इनसे व्यक्ति अपने आन्तरिक विकास द्वारा समस्त मानव समाज से सम्बन्ध स्थापित कर जीवन का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करता है ।

मानवतावादी भावना से पोषित आदर्श-व्यक्ति परहित चिन्तन करता हुआ उच्चतम नैतिकता द्वारा व्यक्ति और समाज को एकाकार कर देना चाहता है। ऐसे आदर्श पुरुष के विभिन्न देशो तथा युगो के विचारको ने विभिन्न चित्र खींचे हैं। प्लेटो का 'दार्शनिक शासक', अरस्तू का 'मनस्वी व्यक्ति', स्टोइको का 'विवेकी पुरुष', गीता का 'स्थित प्रज्ञ', बौद्धो का 'बोधिसत्व', इसाईयो का 'संत', नीत्शे का 'अतिमानव' ये सब आदर्श पुरुष की विभिन्न कल्पनाएँ हैं ।[4] किन्तु इन सबका लक्ष्य एक ही है नैतिक तथा धार्मिक व्यवहार के सार्वभौमिक नियमो की स्थापना और प्रसार करना। इसीलिए इनके उपदेशों का महत्व चिरतन और सार्वभौम है ।

जीवन के प्रति नैतिक दृष्टिकोण का विकास आन्तरिक गुणो के विकास से होता है, जो मनुष्य के व्यापक चरित्र तथा गहन अनुभूति से उद्भूत होते हैं और मानव-जीवन को सुखपूर्ण बनाते हैं ।[5] साथ ही इनका महत्व हृदय-परिवर्तन और वृत्ति-परिष्कार की दृष्टि से भी है जो मानवतावाद के अग हैं । मानवतावाद की सृजनात्मक प्रवृत्ति होने के कारण वह औदात्य-भाव के लिए

1. W. G De Burgh—From Morality to Religion, p. 65
2. S Radhakrishnan—An Idealist View of Life, p 64
3 डा० देवराज—संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० 294
4. वही, पृ० 297
5. Walter Lippmann—A Preface to Morals, p. 227

सेवा के लिए प्रेरित करती है। डा० राधाकृष्णन के विचार से ईश्वर-विहीन धर्म सुस्थिर नही होता।[1] धर्म ईश्वर की उपासना है और यह उपासना केवल न्याय, दया, दानशीलता और बन्धुत्व से ही होती है।[2] जिस प्रकार से दर्शन का साध्य सत्य है, उसी भांति धर्म अनुशासन और पवित्रता मे विश्वास करता है।[3]

सर जेम्स फ्रेजर के अनुसार धर्म उन शक्तियो को प्रसन्न करने की शक्ति है जिनके बारे मे यह विश्वास रहता है कि वे मनुष्य से ऊँची हैं और मनुष्य तथा प्रकृति का नियन्त्रण करती है।[4] इस प्रकार जीवन का धार्मिक या आध्यात्मिक लक्ष्य मानव जीवन की उच्चतम सम्भावना है।[5] उपनिषदो मे उस परम तत्व को 'नेति-नेति' कहकर अनिर्वचनीय बताया गया है।[6] इसी भावना से प्रेरित होकर मनुष्य की वे सवेदनाएँ एव प्रतीतियां, जिनका प्रत्यक्ष जीवन से सम्बन्ध नही होता, अवचेतन मे प्रविष्ट हो जाती है तथा किसी विशेष सवेदना की किसी विशेष परिस्थित मे अन्त चेतना से टकरा जाती है जिसका सम्बन्ध मनुष्य के सम्पूर्ण चेतना-मूलक जीवन तथा अनुभूति से होता है जिसमे समग्र विश्व के साथ तादात्म्य हो जाता है।

धर्म की विश्व-तादात्म्यता के सम्बन्ध मे बरट्रेड रसेल कहते हैं कि धर्म विश्व-तादात्म्य से अपनी शक्तियां ग्रहण करता है। इससे पूर्व यह ऐक्य ईश्वर की धारणा मे था, जो प्रेम का रूप है। रूढि और परम्परा के कारण इस रूप के विकृत होने पर मानव ने सार्वभौमिक प्रेम द्वारा समानता की स्थापना की। ... धर्म इस एकता को स्वार्थ त्याग द्वारा विकसित करने के लिए मार्ग ढूंढता है[7]। श्री रसल के मत मे धर्म सार्वभौमिक प्रेम, एकता, समानता, पर-हित का पोषक है।[7] श्री रसेल धर्म का व्यापक महत्त्व मानते हैं, धर्म के मूल तत्व का विवेचन करते हुए वे लिखते हैं, 'धर्म का सार' अपने जीवन की सकीर्णता को अपरिमित मे तिरोहित कर देना ही है। मनुष्य की दो प्रकृतियो मे से पशु-वृत्ति स्वार्थपूर्ण होने से स्व-कल्याण चाहती है जबकि देवत्व की भावना विश्व से सम्बद्ध होकर सबका कल्याण चाहती है। विश्व के साथ ऐक्य मे ही आत्मा मुक्ति

1 S Radhakrishnan—An Idealist View of Life, p 72
2 T M P Mahadevan (Ed)—A Seminar on Saints, p 441-442
3 वही, पृ० 442
4 डा० देवराज—सस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० 331
5 वही, पृ० 332
6 बृहदारण्यक उपनिषद्—3/8
7 Egner & Denonn (Eds)—The Basic Writings of Bertrand Russell, p 574-575

अनुभव करती है।'[1] यह एकता विचार में ज्ञान, अनुभूति मे प्रेम और इच्छा मे सेवा द्वारा परिलक्षित होती है। इस प्रकार जीवन मे असीम की सिद्धि, स्वतन्त्र भावना और प्राणीमात्र से एकता के अभाव में धर्म का लक्ष्य पूरा नहीं होता और न मानव की धार्मिक भावना ही पूरी होती है।

धर्म मानवतावाद का अपरिहार्य अग तथा उसका सृजक-तत्व है। सभी धर्मों ने विश्व-जीवन की स्वीकृति द्वारा सेवा-परायणता और सद्भावना की प्रेरणा को प्रोत्साहित किया है और विश्व-बन्धुत्व की भावना को उसके मूल में रखा है। ईश्वरीय प्रेम मानव-मानव को एकता मे बांधता है।[2] धर्म मानव प्रेम तथा हृदय की पवित्रता पर बल देता है। विश्व-जीवन को समझना और एक ही चैतन्य को सर्वत्र देखना ही धर्म है। हम जिस जगत् में रहते हैं, उसके प्रति उदासीन नहीं रह सकते। धर्म कर्त्तव्य बोध है जो हमें सदैव कर्मशील रखता है। यह इस सृष्टि की व्याख्या मूलगत व्यापक एकता के सदर्भ मे करता है ताकि मानवता अपने कल्याण को प्राप्त कर द्वन्द्वात्मक भेद-बुद्धि के ध्वसात्मक हाथों से बच जाए। धर्म का लक्ष्य है मानवता को विषमताओ, अनाचार एव सघर्षों से मुक्त करना और उचित जीवन-यापन का मार्ग बताना। महाभारत मे तुलाधार जाजले को धर्म-तत्व बतलाते हुए कहते हैं, 'हे जाजले ! उसी ने धर्म को जाना है, जो कर्म से, मन से और वाणी से सबका हित करने मे लगा हुआ है और जो सभी का नित्य स्नेही है।[3]

इससे हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि धर्म ने मानव-जीवन की विषमताओ को दूर करने के साधन बताए हैं। इसने बौद्धिक जिज्ञासा की अपेक्षा व्यावहारिक आवश्यकता को अधिक महत्त्व दिया है। यह वास्तव में जड़वादी, सकीर्ण और स्वार्थपरक न होकर अध्यात्मवादी, व्यापक एव परार्थमूलक है— अत यह समाज को वांछनीय जीवन से अवगत कराने के लिए प्रयत्नशील रहा है और इसीलिए यह मनुष्य को पूर्वाग्रहो, सकीर्णताओ, अन्धविश्वासो तथा आडम्बरों से बचने का उपदेश देता है।

दार्शनिक-पक्ष

दर्शन मानव के सास्कृतिक जीवन को केन्द्रित करता है तथा उसे ऐसे ज्ञान, अनुभव और अवस्था की प्राप्ति मे सहायता करता है जो जीवन को

1. Egner & Denonn (Eds) The Basic Writing of Bertrand Russel, p 575
2 A Campbell Garnett—The Moral Nature of Man, p 263.
3 'सर्वेषा य सुहृन्नित्य सर्वेषां च हिते रत ।
कर्मणा मनसा वाचा स धर्मं वेद जाजले ।।' —महाभारत शान्तिपर्व 261/9

समरूपता एव सन्तुलन द्वारा अनन्त आनन्द प्रदान करती है। इस प्रकार 'दर्शन का कार्य मनुष्य की उन क्रियाओं का अनुचिन्तन करना है जिन्हें वह स्वय अपने लिए महत्त्वपूर्ण मानता है तथा जो उसके जीवन को सस्कृत बनाती है। जीवन की यह प्रक्रियाएं, जिन्हें हम स्वय मे मूल्यवान मानते हैं और जिनकी कामना स्वय उन्हीं के लिए करते हैं, हमारे जीवन के चरम-मूल्यों का निर्माण करती हैं।'[1]

डा० राधाकृष्णन के विचार से मानव-स्वभाव मे एक आन्तरिक इच्छा होती है जो उसे विभिन्न ढंगों से किसी ऐसी वस्तु की खोज के लिए विवश करती है, जिसे वह स्वय पूर्ण रूप से नहीं समझता, यद्यपि उसकी धारणा होती है कि यह सर्वोपरि सत्ता है। जब तक मानव इस सत्य को प्राप्त नहीं कर लेता, वह सुखी नहीं हो सकता।'[2] इस प्रकार वह ज्ञान-सवर्द्धन तथा विवेक द्वारा पूर्णता प्राप्त करना चाहता है। मानवतावाद जीवन-चिन्तन सम्बन्धी सहजज्ञान को प्राप्त करने के लिए प्रेरणा देता है,[3] ज्ञान, भेद-भाव रहित होता है, उसमे समरूपता होती है और ज्ञान प्राप्त होने पर मानव समदर्शी बन जाता है तथा सत्य उसका मार्गदर्शक बन जाता है। इस प्रकार दर्शन मानव-जीवन से अनुस्यूत है, उसे जीवन से पृथक् नहीं किया जा सकता।[4] वास्तव मे दर्शन का काम उन विरोधों तथा असगतियों को दूर करना है जो मानव जीवन मे विभिन्न विज्ञानों, कलाओं, पद्धतियों तथा मान्यताओं से उठ खड़ी होती हैं। दर्शन मानव-जीवन मे समन्वय लाता है। मानवतावाद दर्शन द्वारा उपलब्ध मूल्यों की मानव-जीवन के लिए उपयोगिता देखता है, उसका परीक्षण व्यवहार द्वारा करता है और उन्हीं को सत्य मानता है जो उसकी कसौटी पर खरे सिद्ध होते हैं, यही मूल्य मानव-कल्याण, मानवीय प्रयोजनों के लिए अर्थ-वान होते हैं। रसेल कहते है, 'ज्ञान श्रेष्ठ जीवन का मार्गदर्शक है।[5]

'ज्ञान हमें प्रदीप्त करता है और आन्तरिक तत्व की अनुभूति मे सहायता देता है। यह एक शक्ति है, एक ज्योति है जो हमे सत्य के अधिक निकट ले आती है और असत्य का आवरण हटा देती है। जीवन को अनुस्यूत करने वाला ज्ञान ही श्रेष्ठ है,[6] यही मानव जीवन को विवेक सम्पन्न बनाता है। जीवन मे विद्यमान मानवीयता को विकसित करने मे विवेक विरोधी-कर्म,

1 डा० देवराज—सस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० 29-30
2 सर्वपल्ली राधाकृष्णन, (अनु०) डा० ज्ञानवती दरबार, आध्यात्मिक सहचाय, पृ० 12
3 Ralph Barton Perry—The Humanity of Man p 49
4 बलदेव उपाध्याय—भारतीय दर्शन, पृ० 3
5 Egner & Denonn (Eds)—The Basic Writing of Bertrand Russell, p 372
6 Rudolf Euchen—Main Currents of Modern Thought, p 75

सम्बन्ध तथा विश्वास का त्याग करना अनिवार्य है। मानवता की स्थापना के लिए ज्ञान की महत्ता बताते हुए मौसेस हेदास कहते हैं, 'ज्ञान मनुष्य और प्रकृति में विरोध उत्पन्न करने वाला नहीं है अपितु यह मानव-जाति को ध्वसात्मक शक्तियो से मुक्ति दिलाने मे सहायता करता है और मनुष्य मे विश्वास तथा आस्था उत्पन्न करता है।'[1] ज्ञान प्राप्ति का परम्परागत एव धर्म प्रचलित साधन रहस्योद्घाटन है और वैज्ञानिक प्रणाली अधुनातन है।[2] दर्शन रहस्योद्घाटन के अधिक निकट है क्योंकि वह प्रज्ञा द्वारा कार्य करता है,[3] रहस्यवादियो ने इसे ही ग्रहण किया था। साधना द्वारा ये अनुभूतियाँ सहज और मानवीय होने से प्राप्त होती हैं।

उपनिषदो में उपदेश दिया गया है, अपन को जानो', आत्मान विद्धि का लक्ष्य है, हम जीवन की सम्भावनाओ को जानें। आत्मज्ञान का उचित अर्थ है उन समस्त आध्यात्मिक, बौद्धिक, भौतिक, नैतिक और सौन्दर्य मूलक सम्भावनाओ को जानना जो मानव-जीवन मे यथार्थ बनाई जा सकती हैं। ज्ञान के सम्बन्ध म एक चीनी विचारक न लिखा है, 'जीवन के प्रति सही दृष्टिकोण मूल्यो का दृष्टिकोण है, न कि तथ्यों का।[4] स्पष्ट ही दर्शन और ज्ञान द्वारा हमारी रुचि मानव-मूल्यों मे होनी चाहिए जिनकी अभिव्यक्ति का माध्यम जीवन है।

ज्ञान मानव का व्यक्तित्व विस्तार करता है। हमारे जीवन की सार्थकता एक ऐसे आदर्श के लिए प्रयत्न करने मे है जो हमारी नैतिक प्रतीति एव रहस्यात्मक भावनाओं को एकता मे पिरो दे। यही मानव के शाश्वत आध्यात्मिक मूल्यो की स्थापना करता है।[5] इस आध्यात्मिक जीवन मे दो बातें महत्वपूर्ण हैं–1 सार्वदेशिक प्रेम की नैतिक धारणा और 2. आत्मसाक्षात्कार की आध्यात्मिक धारणा। प्रथम मे समानता का, समदर्शिता का भाव प्रमुख है और दूसरी मे आत्मज्ञान का।

दर्शन का क्षत्र अन्त ज्ञान तक ही सीमित नहीं है वह बाह्य ससार से भी सम्बन्धित है। 'यह मानव-जीवन का मार्गदर्शक और उसका सहायक है, जिससे मानव अनवरत रूप से सत्य को समझने का प्रयत्न करता रहता है तथा अपने अवसाद, क्रन्दन, निराशा के असह्य क्षणों में व्यग्रता से सत्य की ओर

1. Moses Hadas—Humanism The Greek Ideal and its Survival, p XI-XII
2 Corliss Lamont—Humanism As A Philosophy, p 229
3. वही, पृ॰ 234
4 Lin Yutang—The Wisdom of China, p 14
5 Aldous Huxley—The Perennial Philosophy, p 116

आकृष्ट होता है ताकि सत्य ज्ञान प्राप्त करके जीवन की कठिनाइयों का सामना करने के लिए शक्ति संचित कर सके।'[1]

लोक से परलोक तक एक ही सत्य का सचरण है, सर्वत्र ब्रह्म व्याप्त है, इसलिए जिस पवित्रता की कल्पना अतीन्द्रिय सत्य में की जाती है, उसी की स्थापना पृथ्वी पर मानव-कल्याण तथा विश्व-मंगल के लिए करनी चाहिए। दर्शन जीवन का भावात्मक, बौद्धिक और आध्यात्मिक संबल है, वह मानव को कर्तव्य और औचित्य का बोध ही नहीं कराता वरन् उसको सर्वोच्च वांछनीय ध्येय से भी परिचित कराता है।

इस प्रकार दर्शन का ध्येय वैयक्तिक न होकर सार्वभौमिक है तथा मानवता की आधारशिला है।

सामाजिक-पक्ष

सामाजिक कल्याण के लिए मानवतावाद एक स्पष्ट एवं सुनिश्चित दृष्टिकोण का प्रतिपादन करता है कि मानवमात्र का कल्याण ही उसका सर्वोच्च लक्ष्य है और इसके लिए समाज में अपेक्षित वातावरण का निर्माण होना आवश्यक है। सौहार्द एवं सहयोग मानव को इस ओर प्रेरित करते हैं जिसके लिए आत्मोत्सर्ग, सहिष्णुता, निःस्वार्थता, निरपेक्षता अपेक्षित हैं। पारस्परिक सुख तथा कल्याण के लिए कार्य करने वाला समाज स्वार्थ-रहित व्यक्तियों के समाज से सुखी तथा समृद्ध होता है और वह अपने समस्त आवश्यक साधनों को भी जुटा लेता है। इससे वह समाज सुख, शांति की ओर अविराम गति से बढ़ता रहता है। मानवतावाद के सामाजिक पक्ष की दृष्टि से संस्कृति, समानता, स्वतन्त्रता आदि महत्वपूर्ण तत्व है।

सामाजिक समता, विषमता एवं संघर्ष की भावना को दूर करने के लिए आवश्यक है। समान व्यवहार, समान सुविधाएँ और समता की भावना मानव के अन्तः बाह्य विकास में सहायक होती हैं। मानव का एकांगी विकास उसे न तो पूर्ण बनाता है और न समाज के लिए उपयोगी। मानवतावाद मानव ही नहीं, किसी भी प्राणी के प्रति उपेक्षा भाव की भर्त्सना करता है तथा उसे सामाजिक अपराध मानता है।[2] असमानता का व्यवहार ही समाज-संघर्ष की प्रमुख समस्या रही है। समान न्याय के सिद्धान्त ही भ्रातृ भावना का प्रसार करते हैं[3] और इसी में सामाजिक सद्भावना निहित है।[4] समाज में रहने

1 शांति जोशी—राधाकृष्णन का विश्व दर्शन, पृ० 33
2 R N Tagore—Mahatama Ji and Depressed Humanity,p 6
3 Reinhold Neibhur—The Nature and Destiny of Man—Vol II, p 248
4 Corlis Lamont—Humanism as A Philosophy, p 322

वाला प्रत्येक प्राणी उदार भावना द्वारा दूसरे से सम्बन्धित है।[1] एक दूसरे से सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध बनाए रखने का भाव ही मानवतावाद की ओर अग्रसर करता है।[2]

मानव एकता तथा सामाजिक एकता के लिए 'मनुष्य को सभी प्रकार के जाति, सम्प्रदाय, वर्ण तथा पद का भेद-भाव भुला देना चाहिए। उसे मनुष्य-जीवन को पवित्र मान कर उन्नत करना चाहिए।'[3]

इसी के साथ दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष स्वतन्त्रता का है जिसे 'मानवीयता अथवा उदार संस्कृति भी कहा जाता है। स्वतन्त्रता के अभाव में मनुष्य अज्ञानी, संकीर्ण मनोवृत्ति वाला, स्वार्थी, ईर्ष्यालु बन जाता है और सज्जनता का अभाव उसे हीन-भावना के कारण मानव-स्तर से गिरा देता है।'[4] इसलिए समाज में सब के लिए समान रूप से बौद्धिक तथा वैचारिक स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

समानता और स्वतन्त्रता साथ साथ चलती हैं, इस सम्बन्ध में श्री नेब्हूर का विचार है कि, 'प्रत्येक सामाजिक स्थिति में मनुष्य का आदर्श-रूप स्वतन्त्रता और समानता पर निर्भर करता है। उनका चरम-कल्याण उनकी नैसर्गिक प्रतिभाओं में निर्बाध और सहज विकास से ही है।'[5] मानव व्यक्तित्व की सहज प्रगति और पूर्णता मानवतावादी नैतिकता का सर्वोत्तम रूप है।[6]

समानता एवं स्वतन्त्रता का अर्थ है सार्वभौमता, जिसमें सामान्यरूपता होती है। यह वह गुण है जो हम किसी वर्ग, जाति अथवा राष्ट्र के दृष्टिकोण से नहीं, वरन् मनुष्यमात्र के दृष्टिकोण से देखने योग्य बनाता है। इसके लिए औदार्य के संवर्द्धन और भाव-विस्तार की आवश्यकता है। जब सब समान हैं, नैसर्गिक असमानता नहीं है तो कृत्रिम असमानता भी नहीं होनी चाहिए और सब ही समान रूप से स्वतन्त्र होने चाहिएँ। दूसरे को पराधीन बनाना अमाननीय है। अस्तित्ववादी दार्शनिक सार्त्र मानव की महत्ता स्वतन्त्रता द्वारा प्रतिपादित करता है। वह एक स्वतन्त्र समाज को मानवतावाद की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण मानता है।[7] मनुष्य को स्वतन्त्रता की आवश्यकता इसीलिए अनुभव होती है क्योंकि वह दूसरों के प्रति अपना उत्तरदायित्व अनुभव

1 Gabriel Marcel—Man Against Humanity, p 192
2 M K Gandhi—All Men are Brothers, p 119
3 Sri Aurobindo—The Ideal of Human Unity, p 363
4 Ralph Barton Perry—The Humanity of Man, p 40
5 Reinhold Neibhur—An Interpretation of Christain Ethics, p 147
6 Paul Ramsey—Nine Modern Moralists p 116
7 Jean Paul Sartre—Existentialism, p 54-55

करता है।[1] यह भावना सार्वभौमिक स्वतन्त्रता के विचार के मूल मे कार्य करती है।

इस भावना के प्रसार के लिए एक उदात्त सस्कृति की आवश्यकता होती है। मनुष्य का व्यावहारिक जीवन उसके सास्कृतिक व्यक्तित्व से प्रभावित एव गठित होता है, सस्कृति एक ओर सृजनात्मक अनुचिन्तन है तो दूसरी ओर वह उन क्रियाओ का समुदाय है जिनके द्वारा मनुष्य के आत्मिक (मानसिक) जीवन मे विस्तार और समृद्धि आती है।" सास्कृतिक प्रगति की दो दिशाएं होती हैं ' एक ओर वह मनुष्य के आन्तरिक जीवन का विस्तार है, *तो दूसरी ओर उसके बोध और सवेदनाओ का उत्तरोत्तर परिष्कार।*[2] पारस्परिक सौहार्द, बन्धुत्व एव एकता की विचारधारा ही एक सर्वग्राही सर्वमान्य, सार्वभौमिक सस्कृति की स्थापना मे सहायक हो सकती है।[3] सचेत, निर्वैयक्तिक एव सृजनात्मक जीवन यापन करने वाला व्यक्ति ही सुसस्कृत कहा जा सकता है। वह प्राणीमात्र की भावनाओ, कल्याण तथा सार्वभौमिक मूल्यो से तादात्म्य स्थापित कर लेता है और उनके लिए सघर्ष करता हुआ उनका सरक्षण करता है। वह उच्चतम सास्कृतिक तथा मानवीय धरातल को प्राप्त कर समूचे ब्रह्माड की अपेक्षा मे जीवित रहता है। सामाजिक एकता की मानवतावादी पृष्ठभूमि मे ये समस्त तत्व अपेक्षित होते हैं।

मानवतावादी दृष्टिकोण से सामाजिक पक्ष के सदर्भ मे विलियम वान हम्बोल्ट का कथन द्रष्टव्य है, 'यदि हम उस प्रवृत्ति की ओर सकेत करना चाहें *जो इतिहास के आदिकाल से पाई जाती है और अब भी विद्यमान है*, तो वह उन कृत्रिम सीमाओ को तोडने की प्रवृत्ति है जो नाना पूर्वाग्रहो और पक्षपातपूर्ण विचारो के कारण मनुष्यो के बीच खिच गई है। सम्पूर्ण इतिहास मे यह विचार व्याप्त है कि समस्त मनुष्य जाति एक समाज है और उसकी स्वाभाविक शक्तियो को विकसित करना चाहिए।...'[4]

व्यक्तिगत तथा सामाजिक दोनो धरातलों पर मानव-जीवन का पुनर्निर्माण करने के लिए यह आवश्यक है कि हम उसके जीवन तथा उसकी अनुभूतियो की गुणात्मक विशेषताओ का अध्ययन करें। यदि समाज में रहने वाले लोगो की समानता, स्वतन्त्रता पर आघात होता है तो वहाँ एक नैतिक क्रान्ति का आरम्भ होता है और समाज की अमानवीय, अन्यायपूर्ण एव विषम मान्यताओ के विरुद्ध विद्रोह हो जाता है।[5] एक सन्तुलित श्रेष्ठ समाज के लिए समाज

1 Hector Hawton (Ed)—Reason in Action, p 64
2 डा॰ देवराज—सस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ॰ 29
3 Surendernath Das Gupta—Philosophical Essays, p 371
4 T M P Mahadevan (Ed)—A Seminar on Saints—p 1
5 M N Roy—New Humanism, p 39

ग्रौर व्यक्ति के विचारों में ग्रनुरूपता होनी ग्रावश्यक है। वर्ग-भेद, शोषण, रूढ़ियाँ, परम्परा एवं ग्रसमानता समाज की एकरूपता को नष्ट कर देती हैं। ग्रत मानवतावाद इनका नैतिक विरोध करता है, 'साथ ही जो व्यक्ति केवल ग्रपने हित की दृष्टि से देखता है, वह सच्चे ग्रर्थों मे मानवतावादी नही है।'[1] ऐसे व्यक्ति ही समाज के वातावरण को दूषित करते हैं। इसलिए हमें समाज के हित के लिए समन्वयात्मक दृष्टिकोण रखना चाहिए[2] ग्रौर नैतिक भावना का प्रसार करते रहना चाहिए।[3] सबको समभाव एव समदृष्टि से पारस्परिक कल्याण के लिए प्रयत्न कर ग्रादर्श समाज की स्थापना मे योगदान करना चाहिए।

मनुष्य सृष्टि विकास के परिणामस्वरूप सर्वश्रेष्ठ प्राणी है ग्रौर उसकी यह ग्राकांक्षा होती है कि वह ऐसे कार्य करके दिखलाए जो उसे उच्च-मानव, ग्रति-मानव ग्रथवा देवता के महत्वपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित कर सके। ग्ररस्तू की भी यही धारणा थी कि मनुष्य ग्रपनी चेतना ग्रथवा ग्रन्त करण की सहायता से मानव-जीवन से ऊपर उठना चाहता है। भारतीय मानवतावाद मे 'जीवन-बोध' की धार्मिक चेतना है जो एक ग्रत्यन्त सूक्ष्म तत्व है ग्रौर मनुष्य की ग्राध्यात्मिक ग्रन्त प्रक्रिया से सम्बन्धित है। इस 'जीवन-बोध' द्वारा नए मूल्यो का निर्माण होता रहता है जिनमें उच्चतम युग-निष्ठा ग्रौर नैतिक चेतना का ग्राकलन रहता है, इससे मानव जीवन का उन्नयन होता रहता है, जो भौतिक या मानसिक भूमि पर नही, नैतिक या ग्राध्यात्मिक भूमि पर होगा, जो ग्रात्म-विस्तार द्वारा सार्वभौमिकता ग्रहण कर मानवतावाद के रूप मे प्रतिष्ठित होगा।

मानवतावाद के सोपान

मानवतावादी भावना के तीन विकास सोपान माने जा सकते हैं, प्रथम, मनुष्य का ग्रपने विषय मे चिन्तन, ग्रपने ग्रन्त -बाह्य जीवन, ग्राचार विचार का विश्लेषण ग्रौर उसमे ग्रावश्यक परिष्कार, क्योंकि 'हमारे समस्त प्रयत्नो का एकमात्र लक्ष्य यही मनुष्य है। उसको वर्तमान दुर्गति से बचा कर भविष्य मे ग्रात्यन्तिक कल्याण की ग्रोर उन्मुख करना ही हमारा लक्ष्य है। यही सत्य है, यही धर्म है।—सत्य वह है जो मनुष्य के ग्रात्यन्तिक कल्याण के लिए

1 James Hastings Nicholas (Ed)—Force and Freedom, Reflection on History, p 309
2 Bertrand Russell—Human Society in Ethics and Politics, p 19
3 R N Tagore—Mahatma Ji and Depressed Humanity—p 7

किया जाता है।'[1] मानवतावाद सर्वप्रथम मानव मे मानवीयता की स्थापना पर ही बल देता है, क्योकि इस चिन्तन का, भाव-प्रसार का स्रोत मानव है।

द्वितीय, वह मानव से मानव के सम्बन्ध के विषय मे चिन्तन करती है, वह मानव-मानव के बीच के बन्धनो को, सकीर्णता को, कृत्रिम सीमाओं को तोड देना चाहती है। भारतीय 'सर्व खल्विद ब्रह्म' की भावना प्रत्येक मनुष्य मे, सभी जीवो मे; ससार मे सर्वत्र ब्रह्म की ज्योति ही व्याप्त देखती है। गीता मे भी 'सर्वात्मभूतेषु' का अनन्त भाव है 'हमे प्रत्येक वस्तु से तादात्म्य चेतना जाग्रत करनी चाहिए। मानव का खडित होकर सोचना श्रेष्ठ नही है, इसलिए सकीर्णता को छोडकर प्रत्येक जीव मे ईश्वरानुभूति करनी चाहिए।'[2] यही आत्मैक्य की भावना मानव को मानव के निकट लाएगी। हम उस समय तक ही सघर्ष घृणा, भेदभाव करते रहते हैं, जब तक हम एकता की अनुभूति नही कर लेते, 'इसके पश्चात् ही मानव मे भ्रातृभावना, सहयोग, सद्भावना, सहानुभूति आदि जीवन की विशेषताएँ बन पाती हैं।'[3] डा० राधाकृष्णन आध्यात्मिक एकता को जीवन की एकता तथा सार्वभौमिक एकता के लिए अपरिहार्य मानते है।[4] इस प्रकार की एकता ही मानव के लिए सर्वश्रेष्ठ, सर्वोच्च मत और सम्प्रदाय है।[5] किन्तु इस सब के लिए उसमे औदार्य और निरपेक्षता की भावना अपेक्षित है। ईश्वर की सृष्टि में सभी समान हैं, नैसर्गिक रूप से बाह्य आकार-प्रकार और वृत्तियो मे अन्तर हो सकता है, इसलिए यह अनुचित है कि किसी के अधिकार जीवन की दृष्टि से दूसरे से अधिक हो और न्याय की दृष्टि से यह मान्य भी नही है।[6] इस प्रकार जीवन के भौतिक दृष्टिकोण से अधिक मूल्यवान और महत्वपूर्ण है—व्यापक जीवन के आधार पर खडी मानव-जाति की मौलिक एकता। मानव का मूलगत परस्पर सम्बन्ध अन्त स्थ मानव-एकत्व है। यह भी सर्वथा सत्य है कि मानव के परस्पर सत्सम्बन्ध आपातत बाह्य होने पर भी मूलत. आन्तर-वृत्तियो और आचार-विचारों पर निर्भर हैं। मानव समाज की एकता की मुख्य बात है—जहाँ सदा सर्वत्र एकत्व नियन्तृत्व करेगा, वहाँ कोई छिन्नता तथा सकीर्णता न होगी।

1 आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—अशोक के फूल, पृ० 160
2 The Complete Works of Swami Vivekanand—VoI—I, p. 341
3 B. L. Atreya—Indian Culture, p 11
4 S Radhakrishnan—An Idealist View of Life, p 66
5 The Complete Works of Swami Vivekanand—VoI—I, p 337
6 Walter Leibrecht (Ed)—Religion and Culture, p 326

मानवतावाद का तृतीय सोपान है समस्त प्राणीजगत् के साथ तादात्म्य, भूतदया की भावना से प्रेरित नैतिक-उत्थान उसकी चरम परिणति है। यह स्थिति स्थितप्रज्ञ अथवा पूर्ण मानव को ही प्राप्त होती है। वह अपने और मानव तक सीमित भावना की सीमा को पार कर विश्वात्मा का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। उसका समस्त संसार से अखण्ड सम्बन्ध हो जाता है, उसका अस्तित्व विश्वकल्याण के लिए ही शेष रहता है, अपने लिए उसे कुछ भी प्राप्त करना शेष नही रहता, वह तो दूसरो की मुक्ति, दूसरो के दुःख-परिहार और भूतमात्र के कल्याण के लिए ही रहता है और सासारिक सुख दुःख उसके लिए कोई व्यक्तिगत महत्व नही रखता।'[1] सार्वभौमिक कल्याण के लिए पूर्ण मानव, आन्तरिक समता और आत्मा के सन्तुलन को बनाये रखता है और एक 'मुक्त आत्मा' की भांति निस्सीम प्रेम द्वारा वह सभी मनुष्यो मे ईश्वरीय अश की अनुभूति करता है और प्राणीमात्र के कल्याण के हेतु स्वेच्छापूर्वक अपना बलिदान भी कर देता है।'[2]

स्वार्थ : परार्थ परमार्थ

मानवतावाद का यह स्वरूप स्वार्थ, परार्थ और परमार्थ का नैतिक स्वरूप ग्रहण कर लेता है। यह भगवान बुद्ध के उस कथन से तात्विक साम्य रखता है जिसमे वह कहते हैं, 'हे भिक्षुओ! ऐसी चर्या का पालन करो, जो आदि मे मगल हो, मध्य मे मगल हो और अन्त मे भी मगल हो।''' ''[3] बुद्ध की आस्था आन्तरिक अनुभव मे बद्धमूल है किन्तु साथ ही वह ऐसे कर्म करने को भी कहती है जिससे सामाजिक न्याय प्राप्त हो, सबको समानाधिकार प्राप्त हो। मनुष्य को अपना अहकार मिटाकर प्रेम और सदाशयता का समाज के कल्याण के लिए प्रसार करना चाहिये। अहकार को विनम्रता, प्रतिशोध को क्षमा, सकीर्णता को सार्वभौमिकता मे परिवर्तित कर देना चाहिये। मनुष्य का कर्त्तव्य यही है कि वह अपने को परमार्थ मे डुबा दे।[4]

अट्ठारह पुराणो का सार देते हुए कहा गया है—'परोपकार करना पुण्य कर्म है और दूसरों को पीडा देना पाप कर्म है।'[5] इसी प्रसग मे भर्तृहरि ने भी कहा है कि, 'परार्थ ही को जिस मनुष्य ने अपना स्वार्थ बना लिया है, वही सब सत्पुरुषो मे श्रेष्ठ है।'[6]

1 B G Gokhale—Indian Thought Through the Ages, p 202
2 S Radhakrishnan—Indian philosophy—Vol II, p 614
3 डा० भरतसिंह उपाध्याय—बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन (भाग पहला), पृ०277
4 S Radhakrishnan—Indian Philosophy—Vol II—p 614
5 'अष्टादशपुराण सार सार समुद्धृतम्।
परोपकार पुण्याय पापाय पर पीडनम्॥' गीता-रहस्य—तिलक, पृ० 95
6 'स्वार्थो यस्य परार्थ एव स पुमान् एक सता अग्रणि।' गीता-रहस्य—तिलक, 95

पर-हित का क्षत्र जितना व्यापक होगा, परार्थ मे उतनी ही उत्कृष्टता आती जाएगी और समस्त विश्व को आत्मसात् करने पर वही परमार्थ बन जायेगा। उपनिषदो ने 'तत्वमसि' के सूत्र द्वारा सार्वभौम एकता का सन्देश दिया है। क्षेत्र की दृष्टि से परार्थ का सर्वोत्कृष्ट रूप विश्व-मैत्री है। सभी धर्मों तथा दर्शनो का, शास्त्रो और उपदेशको का लक्ष्य परमार्थ ही रहा है, 'उपनिषद् मे प्रथित आत्म-दर्शन अखिल विश्व के भेदो को भ्रमपूर्ण अथवा बन्धन रूप समझकर उनके ध्वस का आदेश देता है। क्या शैव, क्या वैष्णव, क्या जैन, क्या बौद्ध सब धर्म-दर्शनो की नैतिक प्रेरणा मानवमात्र के अर्थात् समूची मानव-जाति के कल्याण को परमार्थ मानती है।'[1]

मानव मे त्यागवृत्ति के स्थान पर स्वार्थ की भावना अधिक है। स्वार्थ-पूर्ति मे ही लिप्त रहने वाले मनुष्य श्रेष्ठ नही कहे जा सकते, क्योकि समाज के लिए उनकी कोई उपादेयता नही होती। परार्थ-वृत्ति ने ही मनुष्य का अस्तित्व बनाया हुआ है। इसके लिये त्याग-वृत्ति आवश्यक होती है। परार्थ का अन्य तत्व लक्ष्य-शुद्धि है। दूसरे की भलाई करते समय लक्ष्य जितना पवित्र और आध्यात्मिक होगा, परार्थ उतना ही उच्चकोटि का होगा। इस प्रकार व्यक्ति जब भौतिक कामनाओ से ऊपर उठकर एव सात्विक इच्छाओ से प्रेरित होकर पर-हित करता है, तभी परार्थ प्रारम्भ होता है। परोपकार का अन्तिम तत्व परिणाम की मगलमयता सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार परार्थ की परिधियो को पार कर लेने पर परमार्थ की पूर्णता होती है और यही मानवतावाद का लक्ष्य है। परमार्थ को प्राप्त करने वाले व्यक्ति की महाराज रन्तिदेव की भाँति प्राणीमात्र के सुख के अतिरिक्त कोई कामना नही रहती, वह कहते हैं, 'न मुझे राज्य की कामना है न स्वर्ग की, न ही पुन जन्म प्राप्त करने की, मेरी एक ही कामना है, कि दुःख से सतप्त प्राणियो के दु.खो का नाश हो जाये।'[2] परमार्थ के सभी तत्व इस कथन मे उपलब्ध हैं। भौतिक क्षेत्र मे सच्चा मानवतावाद एक सात्विक वीरता से युक्त होता है जिसका लक्ष्य अत्याचार का दमन करना तथा औचित्य और न्याय की स्थापना करना है।

मनुष्य के साथ मनुष्य की भावनाएं ज्यो-ज्यो सश्लिष्ट होती जायेंगी, मानवतावाद का उतना ही विकास होगा और धर्म के अतिचारो से बन्धन-मुक्त होकर वह महान उद्देश्यो की पूर्ति मे इन सीमाओ का अतिक्रमण कर आगे बढ सकता है।' मानव को सकीर्णताओ से मुक्त करने के लिए वैचारिक-क्रान्ति की आवश्यकता है जो इन्हें नवीन दृष्टि देगी। समस्त विचारको ने कहा है

1 तर्कतीर्थ लक्ष्मण शास्त्री जोशी—वैदिक सस्कृति का विकास (प्रस्तावना)।

2. 'नत्वह कामये राज्य न स्वर्ग ना पुनर्भवम्।
कामये दु खतप्ताना प्राणिनामार्तिनाशनम्॥'

कि इसी विश्व के गुणवान्, पराक्रम-सम्पन्न एव ज्ञानवान् व्यक्ति का जीवन ही सच्चे अर्थों मे आध्यात्मिक जीवन है।'[1]

भारतीय मनीषियो ने अभौतिक कामनाओ को मानव जीवन के बाहर नही माना, जबकि पाश्चात्य पुनर्जागृति युग के विचारक इससे सहमत नही हैं और वे बुद्धिवाद तथा भौतिकता को ही मानव-कल्याण का आधार मानते हैं। भारतीय विचारको का इस सम्बन्ध मे समन्वयात्मक दृष्टिकोण है किन्तु वे भौतिक को अभौतिक स गौण मानते हैं। भारतीय चिन्तको ने जीवन को सर्वांगीण दृष्टि स देखा है, भौतिकवादी अथवा प्रकृतिवादी जैसी एकागी दृष्टि से नही। इन्होंने इहलोक तथा परलोक की सफलता के लिए उपकरणो का समायोजन किया है। इहलोक की परमसिद्धि परमार्थ है तो परलोक की सिद्धि मोक्ष है।

इस प्रकार मानवतावाद एक अत्यन्त व्यापक भावना है जिसके लिए कोई लिखित विधान नही है किन्तु यह अनुभूति, व्यवहार के आधार पर मानव के आदर्शों, स्वतन्त्रता, समता, गौरव, शान्ति, प्रेम, सहभाव, विश्वास के सहज-गुणो द्वारा जीवन मे व्याप्त है। इसमे कोई भी मत, सम्प्रदाय, धर्म, दर्शन बाधक नहीं हो सकता और उसका लक्ष्य एकमात्र यही है,

'सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया.।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु ख माग्भवेत् ॥'[2]

ससार के समस्त प्राणी सुखी रहें, सबका कल्याण हो, किसी को कोई कष्ट न हो और कोई भी दु ख का भागी न बने।

1 तर्कतीर्थ लक्ष्मण शास्त्री जोशी—वैदिक सस्कृति का विकास (प्रस्तावना)।
2. श्रीहर्ष—नागानन्द।

चतुर्थ अध्याय

मानववाद : विभिन्न आयाम

मानववाद सम्बन्धी विभिन्न विद्वानो और दार्शनिको की परिभाषाओ तथा उनके विवेचन के पर्यवेक्षण से हमे अलग-अलग दृष्टिकोण, विचार, अर्थ एव भाव उपलब्ध होते हैं। कारलिस लेमान्ट कहते है कि मानववाद की व्याख्या, विश्लेषण ने, इस शब्दावली के एक अर्थ अथवा निश्चित-अर्थ के अभाव मे, विभिन्न अर्थ ग्रहण कर लिए हैं।[1] मानव कल्याण के सम्बन्ध मे चिन्तक जिस तत्त्व और परिवेश से प्रभावित हुए, उसी के सस्कारवश, उसको प्रतिपाद्य बनाकर मानववाद की व्याख्या प्रस्तुत की। इसी कारण हम विभिन्न प्रकार का मानववादी चिन्तन मिलता है। युगीन प्रभाव से दार्शनिक अभिरुचि अपने गुण-दोष सहित ईश्वर, पदार्थ और विज्ञान से हटकर मानव-कल्याण के विचार से मानव पर केन्द्रित हो गई।[2] इस बात को स्पष्ट करते हुए डा० राधाकृष्णन लिखते हैं कि आज ससार अपने को एक पिंड के रूप मे अनुभव कर रहा है। शारीरिक एकता और आर्थिक सहयोग ही सार्वभौमिक मानव ऐक्य निर्माण और पारस्परिक सम्बन्ध-स्थापन के लिये पर्याप्त नही है। अब तक मानव-एकता की भावना एक प्रकार से परिसीमित थी, उसका क्षेत्र सकीर्ण था, किन्तु अब वैसा नही है। वर्तमान मानववाद सम्पूर्ण मानव जाति को आत्मसात् किये हुए है।[3] किन्तु इसका स्वरूप स्पष्ट नही है। समस्या यही है कि यह मानववाद, मानव ऐक्य, मानव-कल्याण दर्शन, मानव हित की भावना, क्या किसी एक विशिष्ट रूप पर आधृत है, क्योकि यह विचार विभिन्न धाराओ म प्रवाहित होकर बहुमुखी रूप में हमारे सम्मुख आता रहा है।[4]

प्राकृतिक, विकासवादी एव फलवादी (व्यवहारवादी), साम्यवादी, विकासवादी तथा वैज्ञानिक, भौतिकवादी, आध्यात्मिक, धर्मशास्त्रीय अथवा

1 Corliss Lamont—Humanism As A Philosophy, p 29
2 S Radhakrishnan and P T Raju—The Concept of Man (Eds), p 15
3 S Radhakrishan—Eastern Religion and Western Thought, p VII
4 Ralph Barton Perry—The Humanity of Man, p 4

पारमार्थिक, अस्तित्ववादी मानववाद के रूप हमारे सामने आते हैं।[1] एक जर्मन विद्वान ने औद्योगिक, राजनैतिक और परम्परा-विरोधी मार्ग का मानववाद के रूप मे उल्लेख किया है।[2] इनके अतिरिक्त साहित्यिक,[3] नैतिक सांस्कृतिक,[4] ऐतिहासिक,[5] शैक्षिक[6] मानववाद का वर्णन भी मिलता है। सृजनात्मक प्रक्रियाओ के आधार पर गुणात्मक मानववाद[7] का उल्लेख भी उपलब्ध है। क्रेन ब्रिटन ने अपनी पुस्तक 'विचार और मनुष्य' मे एक विशेष कोटि के मानववाद का 'उद्दाम उल्लास मूलक मानववाद[8] के नाम से संकेत किया है। अमेरिकी चिन्तक पी० ए० सोरोकिन ने पदार्थमूलक मानववाद[9] पर बल दिया है। इन रूपो पर हम संक्षेप मे विचार करेंगे।

(1) प्राकृतिक मानववाद

विलियम जेम्स तथा जान डवी[10] इसके प्रतिपादक हैं। इसके अनुसार प्रकृति ही सत्य है, मनुष्य इसका अविभाज्य अंग है और कोई अलौकिक तत्त्व नही है,[11] ईश्वर जैसी कोई रहस्यमय सत्ता नही है,[12] न ही मृत्यु के पश्चात् मानव का कोई अस्तित्व रहता है।[13] जान डेवी प्राकृतिक स्थिति और उसके सुधार के लिये वैज्ञानिक साधनो को मानव-कल्याण के लिये आवश्यक समझते हैं।[14]

(2) फलवादी मानववाद

विलियम जेम्स ने अपने समसामयिक दार्शनिक चार्ल्स ए० पियर्स से यह

1. S Radhakrishnan and P T Raju—The Concept of Man (Eds), p 15
2. E B Ashton—Existentialism and Humanism—Karl Jaspers (Ed) Hanns and Fischer (Tr), p 74
3. Corliss Lamont—Humanism As A Philosophy, p 31
4. Ibid, p 35
5. Wilhelm Wund—Elements of Folk Psychology, p 478
6. Ralph Barton Perry—The Humanity of Man, p 25
7. डा० देवराज—संस्कृति का दार्शनिक विवेचन पृ० 10
8. वही, पृ० 10
9. Pitirim A Sorokin—The Reconstruction of Humanity, p 62
10. Corliss Lamont—Humanism As A Philosophy, p 33
11. Ibid, p 32
12. E B Ashton—Existentialism And Humanism—Karl Jaspers (Ed) Hanns and Fischer (Tr), p 93
13. Corlis Lamont—Humanism As A Philosophy, p 43
14. Ibid, p. 49

शब्दावली लेकर अपने युग की बौद्धिक चिन्तनधारा का प्रतिनिधित्व किया।[1] फलवाद सत्य पर आधृत है और मानववाद सत्य का एक रूप है, इसका उल्लेख पहले हो चुका है। सत्य वह है जो व्यवहार की कसौटी पर खरा उतरे, हमारे विचारो के अनुकूल और समता रखने वाला हो।[2] सत्य विचार से सम्बन्धित होता है जो व्यवहार सम्बन्धी विचारो से सम्बद्ध होकर सत्य बन जाता है।[3] फलवाद प्रगतिवादी दर्शन है जो मानव को उत्तरदायित्वपूर्ण तथा सृजनात्मक बनाकर चेतना मे वृद्धि और ज्ञान-शक्ति मे योगदान कर मानव को इच्छा-पूर्ति मे समर्थ बनाता है; हमारे आदर्शों को सत्य मे परिणत करने मे सहायता देता है।[4] हमारे विचार सत्य होने पर ही मान्य हैं और व्यवहार द्वारा ही यह प्रमाणित होता है। व्यावहारिक सत्य ही तर्क और न्याय पर खरा उतर कर मानव-कल्याण कर सकता है।[5]

प्रो० शिलर ने अपने मानववाद के प्रतिपादन मे फलवाद की सहायता ली है जिसमे व्यक्तिपरक अथवा आत्मगत भावना प्रधान थी।[6] इनका दर्शन ज्ञान-सिद्धान्त के निकट था, जिसमें आत्मोन्मुख भाव व्यक्तिपरक मानव-तत्त्व सर्वोपरि था। इन्होने अतिमानवीयता को भी स्थान दिया[7] और इस प्रकार नैतिकता और धार्मिकता को व्यक्ति मे प्रमुख मानकर मानववाद के व्यावहारिक स्वरूप-निर्माण का नवीन प्रयास किया। सत्य का मूल्याकन इससे उपलब्ध परिणामो द्वारा होता है और यह सब मानव-जीवन से सम्बन्धित है।[8]

(3) साम्यवादी मानववाद

यह जर्मन दार्शनिक मार्क्स के आर्थिक दृष्टिकोण और वर्ग-सघर्ष पर आधृत है।[9] यह वर्ग-भेद और जाति-भेद को मान्यता न देकर समाज और मानव

1. Frank N. Magill—Masterpieces of World Philosophy (Ed.), p 779
2. Ibid , p. 785
3. Ibid , p 787
4. Lloyd Morris—William James, p. 32
5. Rudolf Eucken—Main Currents of Modern Thought, pp. 75-76
6. S Radhakrishnan and P. T. Raju—The Concept of Man (Eds), p. 15
7. Corliss Lamont—Humanism As A Philosophy, p. 32
8. S Radhakrishnan—An Idealist View of Life, p. 73
9. S Radhakrishnan and P. T. Raju—The Concept of Man (Ed.), p. 15

का कल्याण चाहता है। जॉक मारिता के अनुसार साम्यवाद मानव-जीवन की आवश्यकताओं पर बल देता है। यह मानव और समाज को अभिन्न मानता है तथा मानव द्वारा मानव का शोषण अनुचित मानता है[1] और शोषण, वर्ग-वैषम्य तथा आर्थिक असमानता को दूर कर मानव-कल्याण की प्रेरणा देता है। एम०एन० राय मानव-मूल्यों को सर्वोपरि मानते हैं तथा मानव ही प्रत्येक वस्तु का मापदण्ड है, इस प्राचीन मान्यता को कसौटी मानते हैं। उनके मतानुसार आर्थिक स्थिरता मानव-कल्याण के लिए आवश्यक है।[2]

(4) विकासवादी मानववाद

प्रो० ज्यूलियन हक्सले ने जीवन-विकास के वैज्ञानिक सिद्धान्त पर मानववाद का स्वरूप निर्धारित किया है जो सार्वभौमिक और विस्तारपूर्ण है।[3] मानव-जीवन का क्रमिक-विकास प्राण-तत्त्व से होता है और उसके अस्तित्व की रक्षा करता है।[4] यह विचारधारा मानव-जीवन को बहुत महत्त्व देती है और उसके अस्तित्व को वैज्ञानिक दृष्टि से देखती है तथा मानव-कल्याण पर विचार करती है।

(5) वैज्ञानिक मानववाद

वर्तमान युग में इसका बहुत महत्त्व है और प्रमुख रूप से विद्वानों के चिन्तन का विषय है। यद्यपि विज्ञान ने मानव-उन्नति और कल्याण में अपूर्व सहयोग दिया है किन्तु इसके फलस्वरूप होने वाले मानव-मूल्यों के अवमूल्यन से सब चिन्तित हैं। बर्ट्रेन्ड रसेल विज्ञान की देन की अपेक्षा मानव-मूल्यों को अधिक महत्त्व देते हैं,[5] जबकि हक्सले जैसे वैज्ञानिक मानव के सार्वभौमिक कल्याण में विज्ञान को आवश्यक मानते हैं। इनका विचार है कि विज्ञान ने मानव-जीवन की संकीर्णता और विकीर्णता को दूर किया है, मानव को मानव के अधिक निकट लाने में सहयोग दिया है।[6]

वैज्ञानिक मानववाद के अनुसार हमें द्वेषपूर्ण हिंसावृति और ध्वंसात्मक प्रवृत्ति का परित्याग कर मानव-जीवन के आदर्शों का विज्ञान की सहायता से पोषण करना चाहिए।[7] हमें वैज्ञानिक उपलब्धियों से अपना पुनः संस्कार

1. Jacques Maritain—True Humanism, p. 72
2. M. N. Roy—New Humanism, p. 39
3. Corliss Lamont—Humanism As A Philosophy, p 77
4. Ibid. p. 131
5. Barton Perry—A History of Western Philosophy, p. 10
6. Ralph Barton Perry—The Humanity of Man, p. 10
7. Ibid, p. 13

करना होगा जिससे प्रत्येक व्यक्ति धार्मिक, नैतिक और सामाजिक व्यवस्था मे अपने उत्तरदायित्व को ढग से सम्भाल सके ।[1] यही पुनस्संस्कार और सद्-भावना मानव-जाति का कल्याण कर सामाजिक और सास्कृतिक श्रेष्ठता द्वारा उसमे ईश्वरीय गुणो का विकास करने मे सहायक होगी ।[2]

(6) आध्यात्मिक एव धर्मशास्त्रीय मानववाद

धर्म मानव-कल्याण मे सहायक और मानव-दर्शन को शाश्वत आदर्श प्रदान करने वाला है । धर्म मे विश्वास और पवित्रता मुख्य है, यह अन्त-परिष्कार करता है ।[3] डा० राधाकृष्णन धर्म की अन्तिम कसौटी सत्य का ज्ञान और मनुष्यो मे मैत्री-प्रसार को मानते हैं । अहिसा और घृणा-परित्याग शत्रुता पर विजय पा लते है ।[4] सच्चा धर्म-निष्ठ व्यक्ति समस्त ससार से अपना सम्बन्ध समझता है और समस्त विश्व को अपना परिवार मानता है ।[5] श्री ऐस्कोफ तो धर्मविहीन मानव अस्तित्व ही स्वीकार नही करते ।[6] महाभारत मे धर्म को मानव-कल्याण या आधार बताया गया है । धारण करने का नाम धर्म है, वह प्रजाओ की धारणा करता है, जिससे लोक का धारण हो, लोक की स्थिति हो, वही निश्चय रूप मे धर्म है ।[7]

प्राचीनकाल मे बुद्ध, कन्फ्यूशियस और ईसा ने अपने-अपने देश मे धर्म और नैतिकता का प्रचार किया । एकदेववाद का प्रचार भी आध्यात्मिक स्वातन्त्र्य, बौद्धिक एकता, निरपेक्ष धार्मिक भ्रातृ-भावना, मानव-मूल्यो, मानव-गरिम और मानव-जीवन की पवित्रता के लिए हुआ ।[8] धर्म और मानववाद एक-दूसरे के निकट हैं । डा० राधाकृष्णन लिखते हैं कि धर्म और मानववाद एक-दूसरे की उपेक्षा नही करते (जैसी कि कुछ लोगो की भ्राति है)। यदि हम भ्राति के कारण धर्म को ससार और जीवन से मिलाने लगे और नैतिकता को मानव-वाद तथा सामाजिक प्रगति से सम्बद्ध करने लगे तो दोनो की भिन्न पद्धति

1 Pitrim A. Sorokin—The Reconstruction of Humanity, p 107
2 Ibid, p 108
3 Mandelbaum—Philosophic Problems—(Ed), p 521
4 डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन—भारत और विश्व, पृ० 81
5 वही, पृ० 82
6 Wilhelm Wund—Elements of folk Psychology, p 75
7 महाभारत, कर्ण पर्व…5, 263
8 Charles Francis Potter—Humanism · A New Religion, p. 80

एव सैद्धान्तिक मान्यता हो जाएगी जबकि ये दोनो एक हैं।[1] वास्तव मे मानववाद मानव-मूल्यो की प्रतिष्ठा धार्मिक स्वरूप के द्वारा करता है, धर्म के विरोध द्वारा नही।[2] मानववाद धर्म के कारण होने वाले अन्याय का विरोध करता है। यदि धर्म मे न्यायपूर्ण व्यवहार स्नेह, दया, विनम्रता नही, दूसरो के प्रति आदर नहीं तो ऐसे धर्म का कोई लाभ नही।[3] डा० जोजफ वारन मानववाद और धर्म को अभिन्न मानते हैं।[4] जॉक मारिता भी धार्मिक मानववाद के समर्थक हैं, वे ईश्वर को मानव का लक्ष्य मानते है, दया और स्वतन्त्रता का प्रतिपादन भी करते है।[5]

भारत मे मध्यकाल की भाँति वर्तमान शताब्दी मे रामकृष्ण परमहस और स्वामी विवेकानन्द ने आध्यात्मिकता और धर्म द्वारा मानव-कल्याण की प्रेरणा दी। डा० राधाकृष्णन इनके सम्बन्ध मे लिखते हैं कि इन्होने एक मानव-धर्म की, जाति-भेद और धर्म-भेद से परे हटकर, स्थापना की और सन्यासियो के लिये स्वार्थ-रहित मानव सेवा ही परम-साध्य बतलाई। आत्मिक-शुद्धि मानव-कल्याण के लिए आवश्यक है।[6] रामकृष्ण परमहस के अनुसार धर्म प्रेम और भ्रातृ-भावना का आधार है। धर्म-दर्शन का सर्वोपरि उद्देश्य मानव और उसका विश्व स सम्बन्ध है।[7] विवेकानन्द ने धर्म की सार्वभौमिकता बतलाते हुए कहा है कि धर्म वह है जो अपनी विश्व-व्यापकता के भीतर सृष्टि के प्रत्यक मनुष्य को अपने असख्य बाहुओ द्वारा आलिगन करते हुए उसके लिए स्थान रखे। इस विश्व-धर्म मे भेद-भाव नही होगा।[8] योगीराज अरविंद आध्यात्मिकता के आन्तरिक गुण द्वारा ही मानव कल्याण मानते हैं।[9]

धार्मिक तथा आध्यात्मिक मानववाद परम्परागत रूढियो, सकीर्णता, अन्याय, भेद-भाव को दूर कर भावात्मकता का अपरिमित विकास करना चाहता है, आत्मैक्य और धर्म-नीति का मार्ग मानव-हित का मार्ग है।

1 S Radhakrishnan—Eastern Religion and Western Thought, p 75-76
2 Ralph Barton Perry—The Humanity of Man, p. 41
3. C. F. Potter—World Felloship, p. 870
4 Ibid p. 868
5 Jacques Maritain—True Humanism, p 19
6 S Radhakrishnan—History of Philosophy : Eastern and Western (Ed), Vol I, p 529-30
7. John R. Everett—Religion in Human Experience, p 498
8. विवेकानन्द—शिकागो वक्तृता, पृ० 36।
9. Sri Aurobindo—The Ideal of Human Unity, P. 362

(7) वीरोचित तथा पारमार्थिक मानववाद

सोरोकिन[1] तथा जॉक मारिता[2] ने त्याग, उत्सर्ग, औदार्य तथा परमार्थ की मानव भावना पर आधृत मानववाद का प्रतिपादन किया। वीरोचित मानववाद का विचार जॉक मारिता ने बलिदान की भावना से किया जिस साम्यवादी क्राति मे, सज्जन दया और करुणा मे तथा सत प्रेम मे मानते है।[3] इसका स्रोत धर्म तथा पारलौकिक तत्व है।[4] यह नास्तिको और भौतिक वादियो का विरोधी है।[5] जॉक मारिता पश्चिम में ईसाई धर्म को इसका स्रोत मानते हैं। यह मानव गरिमा, मानव अधिकार द्वारा भ्रातृ भावना का प्रचार करता है। जॉक मारिता की दृष्टि म बलिदान भाव किसी राष्ट्र, जाति, वर्ग के लिए न होकर प्राणी मात्र के लिए है।

सोरोकिन परमार्थ को लक्ष्य मानता है। परहित, परार्थ और दूसरे को प्रश्रय दने के नियमो से ही मानव-अस्तित्व का श्रेय सभव है। यदि हम निर्बल की सहायता नही करेंगे तो मानव कल्याण पर आघात लगेगा।[6] घृणा और मिथ्या अह से *मानव-मूल्यो और सृजनात्मकता* की हानि होगी।[7] इसलिए पारस्परिक प्रेम, सहानुभूति, दया, सहयोग, सौहार्द तथा सद्व्यवहार मानव-कल्याण तथा प्राणी मात्र के हित के लिए आवश्यक हैं। ऐसे समाज मे मानव का एकाकी अस्तित्व नही होता। वह सृजनात्मक समाज का प्राणभूत अग होता है।[8] एस परिवेश मे मानव प्रसन्नतापूर्वक अपना कर्तव्य पालन करता है। इसलिए मत्री भाव, दयालुता, अनुकम्पा, दया, विश्वास पात्रता, श्रद्धा, आदर, गुणगान, पूज्य-भावना और अगाध स्नेह का प्रसार होता है।[9] परार्थवादियो म भूतदया की गहन अनुभूति होती है। इनका स्नेह-भाव उच्च, सृजनात्मक और स्थायी हाता है तथा ये मानव कल्याण के सन्देशवाहक हाते हैं। सोराकिन द्वष, सघष, हिंसा, सशय और अविश्वास को नष्ट कर मानव-कल्याण का मूल एकता और समन्वय मे मानते हैं।

1 Jacques Maritain—The Humanism, Preface
2 P A Sorokin—The Reconstruct on of Humanity, p 61
3 Jacques Martain—True Humanism, p XIII
4 Ibid, p XIV
5 *Ibid, p XV*
6 P A Sorokin—The Reconstruction of Humanity, p 61
7 Ibid p 61
8 Ibid p 61
9 Ibid, p 64,

(8) नैतिक और सामाजिक मानववाद

व्यावहारिक जीवन में नैतिकता को प्राधान्य देना इस विचारधारा का आधार है। मानव के स्वभाव और विचारणा के गुण का विकास इसका लक्ष्य है जो जीवन के अन्त.-वाहक क्षेत्रों में इसका विकास करता है।[1] मानव-कल्याण नैतिकता, तथा अनुशासित जीवन से ही सम्भव है,[2] यह कर्तव्य-परायणता पर बल देते हैं। भारत में 'श्रुत्' वैदिक काल की नैतिकता के लिए अपूर्व देन है। नास्तिक दर्शनो, बौद्ध तथा जैन दर्शन में भी इसको ही सर्वोपरि स्थान दिया गया है। मध्यकालीन भारतीय सन्तों ने इसको जीवन का आधार बनाया तथा पश्चिम में काट, स्पिनोजा, एडलर, ह्यूम ने इसका प्रतिपादन किया। काट कहते हैं कि शिव की भावना समस्त प्राणियो के आनन्द और सुख की कामना है। भौतिक समृद्धि का शुभ रूप उसी समय पूर्ण होगा जब नैतिक शील तथा आचार-विचार की शुभ्रता उसमे सन्निहित होगी।[3] काट के अनुसार मानव को बौद्धिक प्राणी होने के नाते उत्तम कार्य ही करने चाहिएं।

नैतिक नियमो की सार्वभौमिकता समाज के लिए उत्तम होती है,[4] क्योंकि मानव साधन न होकर साध्य है। वर्गसा गुण-विकास को अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते हैं। परिवार मे हमारे गुणो का विकास तथा परिष्कार होता है और धीरे-धीरे उनका अनन्त विस्तार समस्त मानव-जाति को आत्मसात् कर लेता है।[5] इतना ही नहीं, वर्गसा नैतिकता और धर्म को मानववाद का अनिवार्य तत्त्व मानते हैं।[6] डेविड ह्यूम ने सहानुभूति को प्रमुख माना है। वे कहते हैं, मानव नैसर्गिक रूप से सहानुभूति गुण सम्पन्न है जो हमे दूसरो के सुख-दु ख का बोध कराती है। ह्यूम की सहानुभूति का समर्थन डा० अल्बर्ट श्विटजर भी करते हैं, हम जैसे-जैसे अपने सम्बन्ध मे सोचते हैं और दूसरो के प्रति अपने व्यवहार पर विचार करते हैं, हमें अनुभव होता जाता है कि सब हमारे निकट के सम्बन्धी हैं।[7]

भारतीय चिन्तक महात्मा गांधी जीवन की प्रगति के लिये नैतिक

1 Encyclopaedia of Britannica—Vol. VI, p. 239
2. Ralph Barton Perry—The Humanity, of Man, p 18
3. Immanuel Kant—Lectures on Ethics, p 6
4. R. Osborn—Humanism and Moral Theory, p 70
5. Bergson—Beauty and other forms of Value, p 21
6. W G De Burgh—From Morality to Religion, p. 335
7. Jacques Feschotte—Albert Sehweitzer, An Introduction, p 115

गुणो का विकास आवश्यक बताते हैं।[1] उन्होंने राजनीति मे भी नैतिक बल का परिचय सत्याग्रह द्वारा दिया। एक स्थान पर वे लिखते हैं, 'मानव जाति एक है, सब मनुष्य नैतिक नियमो मे बँधे हुए हैं, कोई उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता।'[2] रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी महात्मा गाँधी के विचारो का समर्थन किया और सबके प्रति न्याय और प्रेमपूर्ण भ्रातृभावना के व्यवहार पर विशेष बल दिया है।[3] मानव के नैतिक-विकास मे जीवन के आदर्श सहायक होते हैं। वाल्टर लिपमैन लिखते हैं, 'यदि सभ्यता को एकात्मक और एकनिष्ठ बनना है, आश्वस्त होना है तो सभ्य लोगो को अपने आदर्शों का ज्ञान होना चाहिए।'[4] यहाँ आदर्श से उनका मन्तव्य नैतिक आचार विचार से ही है, क्योंकि ये समाज का मार्ग दर्शन करते हैं। इस प्रकार जीवन व्यवहार के सभी पक्षो का निर्देशन नैतिकता और धर्म के आदश करते हैं और मानव के सार्वभौमिक कल्याण का विस्तार करत हैं।

(9) विद्यामूलक मानववाद

साहित्यिक तथा शैक्षिक आदर्शों को सयम और नियत्रण द्वारा आबद्ध कर इविग बेबिट और पाल एलमर मूर ने बौद्धिक मानववाद का प्रचार किया और मानव कल्याण के लिए आभिजातीय साहित्य का अध्ययन आवश्यक माना जो मानव का बौद्धिक उत्थान और विकास करता है। इस प्रकार इन्होंने शालीनता और नैतिक परिवेश द्वारा मानव के आत्मसयम पर बल दिया।[5] इविग बेबिट ने निरोधात्मक प्रवृत्ति को आवश्यक मानते हुए बताया है कि मानव समाज की प्रगति उस सयम पर निर्भर करती है जो मनुष्य अपनी इच्छा शक्ति द्वारा नैसर्गिक मानव प्रवृत्ति पर करता है। इनका विचार है कि हम अन्त अनुशासन द्वारा, बिना किसी अलौकिक शक्ति की सहायता के मानव कल्याण कर सकते हैं।[6] ये धर्म को मानववादी आदर्शों का विरोधी मानते हैं। धर्म मानववाद का स्थान नही ले सकता।[7] बौद्धिक मानववाद अथवा विद्यामूलक मानववाद मानव की अन्त उन्नति, अन्त परिष्कार पर बल देता है और धर्म तथा अलौकिक सत्ता को रूढ मान्यता मानकर उनसे

1 S Radhakrishnan—History of Philosophy Eastern and Western (Ed), Vol I, p 531
2 M K Gandhi—All Men Are Brothers, p 118
3 R N Tagore—Mahatma Gandhi aud Depressed Humanity, p 20 26
4 Walter Lippmann—A Preface to Morals, p 322
5 Corliss Lamont—Humanism As A Philosophy, p 31
6 S Radhakrishnan—An Idealist View of Life, p 63
7 T S Eliot—Selected Essay, p 472

आबद्ध नही होना चाहता । यह राजनैतिक तथा धार्मिक अराजकता का विरोध करता है ।

(10) अस्तित्ववादी मानववाद

यह विचारधारा मानव-कल्याण का चिन्तन मानव अस्तित्व के महत्व की दृष्टि से करती है ।[1] वर्तमान शताब्दी मे इसके प्रवर्त्तक कीर्कगार्ड, हीद्गर, यास्पर्स, गेबिरल मार्शल और ज्या पाल सार्त्र हैं । इनसे पूर्व स्टोइक दार्शनिक सेंट आगस्टस, सेंट बर्नार्ड, पास्कल ने इस विषय पर विचार किया था ।[2] मनष्य अपने कार्यों के लिये उत्तरदायी है, उसका अस्तित्व समाज को प्रभावित करता है, इस प्रकार वह मानव जाति के प्रति उत्तरदायी है ।[3] अस्तित्ववाद मानव अस्तित्व के अन्त मूल में वैयक्तिक ढग से पहुँचने का प्रयास करता है ।[4] यह मनुष्य का अध्ययन और विश्लेषण करता है । व्यक्ति विश्व मे एकाकी है, उसे बाह्य सहायता प्राप्त नही है, अत निर्वाचन, निर्णय तथा आत्म-निर्माण का उत्तरदायित्व स्वय उस पर है वह अपनी उद्देश्य-पूर्ति के लिए स्वतन्त्र है, साथ ही उसका जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण है क्योकि यह बौद्धिकता को स्थान देता है । बुद्धि जीवन को प्रदान करती है ।

सार्त्र का विचार है कि व्यक्ति अनेक कार्यों का मूल्याकन कर अपने लिए श्रेष्ठ वस्तु को चुनता है जिसका लाभ उसे ही नही समाज को भी होता है ।[5] इस प्रकार मानव अस्तित्व अपने श्रेष्ठ श्रेयस्कर निर्णय से मानव-कल्याण मे सहायक होता है । पूर्ण मानव स्वतन्त्रता मे विश्वास करने के कारण यह किसी सम्प्रदाय, दर्शन, विचारधारा, मत से आबद्ध नही । मानव का अपना बडा महत्त्व है, क्योकि अस्तित्ववादी ईश्वर को नही मानते । अत मानव अपने जीवन सम्बन्धी मूल्यो का निधारण स्वय करता है । वह भाग्य को भला बुरा नही कह सकता और सब बातो के लिये स्वय उत्तरदायी होगा । इनके विचार से मनुष्य ही मनुष्य का भविष्य है । मनुष्य वही है जो कुछ वह अपने को बनाता है ।[6] अस्तित्ववाद कर्म प्रधान नीतिशास्त्र है, मानव-जीवन का दर्शन है, 'मैं हूँ' इसका यही महत्त्व सत्य है । इस प्रकार प्रकारान्तर से यह आत्म ज्ञान और आत्म कल्याण की सिद्धि भी करता है । हमारा अस्तित्व दूसरो के अस्तित्व स

1 Existentialism—Paul Forlque, p. 9
2 Existentialists Philosophies—Emmannuel Monier, p 2
3 *Existentialism and Humanism—Jean Paul Sartre (Tr) Philip Mairet, p 29*
4 Existentialism and Indian Thought—K Guru Dutt, p 2
5 Existentialism and Humanism—Jean Paul Sartre (Tr) Philip Mairet, p 29
6 वही, पृ॰ 41

ही सिद्ध होता है। इस प्रकार यह मानव को मानव की आवश्यकता के सिद्धान्त द्वारा मानव-गौरव और मानव-मूल्यो की स्थापना करता है।

यह व्यक्तित्व दर्शन नहीं है, न ही सामाजिक जागृति से दूर है। समाज मे मानव अस्तित्व का महत्त्व है, व्यक्ति विश्व मे समान इतिहास से अपने को दूसरो से सम्बन्धित मानता है।[3] इस प्रकार यह मानववाद और मानव-कल्याण का चिन्तन करता है। मनुष्य अपना एक नैतिक स्वरूप, ग्राह्य-अग्राह्य, उचित-अनुचित के निर्णय द्वारा बना लेता है। वह जानता है कि स्वतन्त्रता जीवन का लक्ष्य है और व्यक्तियो की पारस्परिक स्वतन्त्रता एक दूसरे पर निर्भर करती है, क्योकि वह स्वय मानव मूल्यो की स्थापना करते हैं।

जर्मन विद्वान पेपिनहिम अस्तित्ववाद के सम्बन्ध मे लिखते है, 'अस्तित्ववाद के सम्बन्ध म प्राचीन काल की धारणा प्राणी-सम्बन्धी थी, मध्यकाल म ईश्वर सम्बन्धी चिन्तन प्रमुख हो गया, और पुनर्जागरण काल मे प्रकृति-सम्बन्धी चिन्तन। सत्रहवी शताब्दी मे प्राकृतिक नियमो ने मानव जीवन को प्रभावित किया और अट्ठाहरवी शताब्दी मे व्यक्ति चिन्तन का मूल-केन्द्र बन गया।'[4]

अस्तित्ववाद मानव कल्याण के चिन्तन की एक प्रगतिशील धारा है। इनक विचार से मानववाद मानव के अस्तित्व को श्रेष्ठतर बनाय रखन मे सहायता देता है।[5] मानववाद का लक्ष्य मानव-अस्तित्व के लिए उच्चतर मूल्यो की प्राप्ति का प्रयत्न करना है। सार्त्र कहता है 'मानव अपन अस्तित्व को विश्व व्याप्त करके उसका मूल्याकन करता है, अपने को परिसीमित रखकर जीवन का मूल्याकन करना क्षुद्रता है।' मानव को सकीर्णता के बन्धन तोडने चाहिए, व्यापक स्वातन्त्र्य उसका लक्ष्य होना चाहिए जिससे वह अपना सत्य-रूप पहचान सके। यही मानव कल्याण का मूल स्रोत है।

1 Existentialism and Humanism—Jean Paul Sartre (Tr) Philip Mariet, p 41
2 Existentialism—Paul Foulquie, p 79
3 Existentialism and Humanism—Karl Jaspers, p 12-13
4 The Alienation of Modern Man—Fritz Pappenheim, p 21-22
5 Existentialism and Humanism—Jean Paul Sartre (Tr) Philip Mariet, p 56

उपसंहार

मानव, सृष्टि की गौरवमय अभिव्यक्ति है, जिसे मूल सत्ता के प्रतिरूप और ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप मे विभिन्न धर्म, दर्शन मे वर्णित किया गया है। मनुष्य एक बौद्धिक प्राणी है, जिसमे आत्म-ज्ञान की उपलब्धि की शक्ति है। वह ससार मे सर्वसक्षम स्वीकार किया गया है। भारतीय और पाश्चात्य धर्म-दर्शन मे इस विषय का विस्तृत विवेचन हुआ है। वह प्रकृति के गुह्य भेदो का ज्ञाता रहस्यो का अन्वेषक, मूल्यो एव प्रतिमानो का निर्धारक तथा समाज व्यवस्था का सस्थापक है।

प्राकृतिक रूप से और अपने स्वभाव से वह सुख और आनन्द की इह-लौकिक और पारलौकिक सुविधाओं को प्राप्त करने के लिये सतत् प्रयत्नशील रहा है। इसी कारण वह अधकार और अज्ञान के आवरणो को भेद कर ज्ञान और विज्ञान का विश्लेषक और प्रणेता बन गया है। मानव विकास का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि उसे अपने लक्ष्यो और मूल्यो की प्राप्ति के लिए अनेक सघर्षों और द्वद्वो के बीच से निकलना पडा है। जर्मन दार्शनिक रीहल ने इसीलिये कहा है कि मनुष्य को विगत की अपेक्षा भविष्य की ओर देखना है। गीता मे मानव को सर्वोच्च और परम तत्त्व स्वीकार किया गया है तथा इस्लाम धर्म मे भी इस मान्यता का समर्थन मिलता है। मानव विकास का यह रूप हमे उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी मे तब देखने को मिलता है जब डार्विन ने बताया कि मनुष्य पशु का विकसित रूप है तथा मार्क्स जैसे दार्शनिक ने कहा कि वह भौतिक परिवेश का परिणाम है।

मानव कला और सौन्दर्य के प्रति अभिरुचि रखता है और ऐसे ही साहित्य और दर्शन का निर्माण करता है जो उसकी भावना और कल्पना को साकार करे। वेदान्त और सूफी दर्शन मे मनुष्य को बहुत उच्च स्थान दिया गया और उसे दैवी प्रतिरूप माना गया। इसलिए यह अपेक्षा की गई कि सुन्दर मानव और सुन्दर समाज की रचना हो। सभी दर्शन और विज्ञान मानव-कल्याण के मूल्यों का विवेचन करते हैं। इन मूल्यो के विवेचन के लिए मानववादी विचारधारा का आरम्भ हुआ, जिस का विकास धीरे-धीरे हुआ। यूरोप मे मानववाद का एक ऐसे मध्यकालीन आन्दोलन के रूप में आरम्भ हुआ जिसने कला, साहित्य, सभ्यता, सस्कृति और विचार-दर्शन मे मध्यकाल के

अन्त और आधुनिक काल के प्रारम्भ मे, आमूल-चूल परिवर्तन कर दिया था। मध्यकाल मे यह धर्मशास्त्र के सुधार का कार्य करता रहा जिसमे चर्च के अत्याचारो के विरुद्ध एक सामान्य व्यक्ति का विद्रोह था एव विचारों की स्वतन्त्रता की उद्घोषणा भी थी। जहाँ मानववाद का तत्कालीन शिक्षा पर बहुत गहरा प्रभाव पडा वहाँ समाज-सुधार का कार्य भी हुआ। मानववाद ने आभिजात्य साहित्य की पुनर्व्याख्या की और जनसामान्य को उससे परिचित कराया। इसने सुधार के दो मुख्य सिद्धान्त प्रदान किये--मध्यकालीन चर्च की आलोचना तथा धर्मशास्त्र का स्वतन्त्र अध्ययन करते हुए कुरीतियो, अन्ध-विश्वासो, परम्पराओ और रूढियो का भी विरोध किया। इसके साथ ही धर्म और समाज के क्षेत्र मे परम्परा और तानाशाही का भी विरोध किया। स्वस्थ समाज और धर्म-व्यवस्था मानववाद का प्राण-तत्त्व है।

मानववाद का विकास आधुनिक काल तक हुआ और इस विकास-काल मे अनेक द्वन्द्व और सघर्ष हुए क्योकि इसके द्वारा मानव के अस्तित्व और गौरव को स्वीकार करते हुए उसे मानव-केन्द्रित अध्ययन माना गया। मध्य-काल मे जहाँ इरासम, थामस मूर ने इसकी स्थापना पर बल दिया वहाँ आधुनिक काल मे रेने देकार्ते और विलियम जेम्स ने इसे नया रूप दिया। अब मानव-शक्ति में अपरमित विश्वास और व्यक्ति के महत्त्व को माना गया। देकार्ते ने ईश्वर से मानव, अलौकिक से लौकिक और आत्मा से अनुभूति की ओर ध्यान दिलाया। इस प्रकार एक नव मानववाद की स्थापना हुई। शिलर ने मानववादी विचार-दर्शन को बहुत दृढता से स्थापित किया। सर जूलियन हक्सले ने शिकागो विश्वविद्यालय मे डार्विन शताब्दी समारोह के अवसर पर कहा कि मानव धर्म-ज्ञान मे विश्वास करेगा, जिससे नैतिकता को बल मिलगा और अलौकिक तत्त्वो की आराधना के स्थान पर लौकिक तत्त्वो को आदर मिलेगा, एव मानव स्वभाव की अभिव्यक्ति को अधिक सच्ची आध्यात्मिक प्रेरणा मिलेगी और बौद्धिक रूप से पवित्र सत्य की अनुभूति हो सके। प्रोफेसर ई० ए० बर्ट ने कहा है कि उदार प्रोटेस्टेंट विचारधारा मानववाद की ओर बढ रही थी।

भारतीय धर्म-दर्शन मे भी मानव की शक्ति का वर्णन करते हुए उसे परहित और परमार्थ द्वारा मानव-कल्याण के लिए प्रेरित किया गया है। अवतारवाद की दैवी कल्पना इसी ओर सकेत करती है। बुद्ध और महावीर से लेकर गांधी तक अहिंसा और प्रेम एव त्याग, तपस्या और बलिदान के द्वारा इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया गया है। भारतीय दर्शन मे कर्म और ज्ञान पर बहुत बल दिया गया है और भूतदया की भावना को विकसित किया गया है। भारतीय सस्कृति का मूल तत्त्व आध्यात्मिकता और समन्वय की भावना रहा है। विभिन्न कालो मे युग की परिस्थिति को पहचानने वाले

लोकनायको ने अपने कर्त्तव्य का पालन किया। मानव-कल्याण ही उनका श्रेय और प्रेय रहा है। पश्चिम की भाँति पूर्व मे भी अज्ञान और अन्धकार के विरुद्ध सघर्ष किया गया।

यह युग मानववाद के चरम-विकास का युग है। बीसवी शताब्दी मे मानव ने सुख की खोज, वैज्ञानिक सत्य का अन्वेषण, मानव-मूल्यो की स्थापना और देशभक्ति के लिए तो कार्य किया ही, इसके साथ ही उसने वर्ण और वर्ग जैसे मानव-विभाजक तत्वो के विरुद्ध भी युद्ध लडा। इस युग मे उसने प्रकृति के तत्वों का ज्ञान प्राप्त करके सभी रहस्यो को जानकर, प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली है। उसके समस्त प्रयत्न मानव-कल्याण के लिए है और इस प्रकार विश्व मे एकता की भावना का प्रसार हुआ। मौलाना अब्दुल कलाम आजाद ने यूनेस्को द्वारा आयोजित एक सभा मे कहा कि 'समस्त ससार में मानव जाति ने एक तर्क और विचारणा को स्वीकार कर लिया है। मानव-बुद्धि और अनुभूति सर्वत्र समान है और यही उसकी जीवन दृष्टि की स्वाभाविक पद्धति है। जिस सत्य को यूनानी दार्शनिको ने ओलम्पस के शिखरो पर अनुभव किया था, उसी को भारतीय मनीषियो ने हिमालय की घाटियो मे अनुभव किया। यूनानी दार्शनिको ने मनुष्य का अध्ययन गहन रूप से किया है। अरस्तू ने मनुष्य-मनुष्य के सम्बन्धो पर विचार किया है। वेदान्त मे भी इस विषय पर चिन्तन हुआ है।

वर्तमान युग मे मानव-ज्ञान ने मूल्यो का सकट उत्पन्न कर दिया है। यह एक समस्या है कि समस्त विश्व के मूल्यो और आदर्शों मे एकरूपता किस प्रकार लाई जाए। इसके लिए एक ओर आध्यात्मिक समाधान और दूसरी ओर भौतिक समाधान दिए गए हैं, जिनमे आर्थिक विषमता को दूर करने पर बल दिया गया है। किन्तु इस समस्या का हल तब तक सम्भव नही है जब तक कि वास्तविक सत्य को न जान लिया जाए। शेक्सपियर के किंगलियर मे भी इसी ओर सकेत किया गया है और बेट्रेंन्ड रसेल भी इससे सहमत हैं। अस्तित्व-वादी दर्शन मे भी मूल्यो का प्रश्न उठाया गया है जो आस्तिक और नास्तिक विचारधारा म बँट गया।

मानववाद न्याय, प्रेम, विश्वास, स्वतन्त्रता, सृजनात्मक चिन्तन, आनन्द और शान्ति की स्थापना का इच्छुक है। मानव एक ऐसा प्राणी है जो शारीरिक रूप से देश, काल, प्रवृत्ति और सस्कृति मे विद्यमान है। सार्त्र ने इसीलिए मानव अस्तित्व और उसके उत्तरदायित्व पर बहुत बल दिया है। उसके अनुसार जब हम दूसरों पर अपना उत्तरदायित्व डालते हैं या किसी कार्य के लिए उन्हें दोष देते हैं, तभी हमारे विश्वास मे विकृति उत्पन्न होती है। मनुष्य अपने ज्ञान से अपना ध्यय चुनता है। यह स्वतन्त्र है। ईश्वर ने मनुष्य को स्वतन्त्र उत्पन्न किया है और वह उस स्वतन्त्रता के लिए उत्पन्न करता है।

आज संसार अनेक विचारधाराओं से प्रभावित होकर विभिन्न दलों में विभाजित हो गया है। ये सभी मानव-कल्याण और स्वतन्त्रता के उद्घोषक हैं। इसीलिए अनेक राजनैतिक और सामाजिक दर्शन मानवता के कल्याण के लिए प्रयत्नशील हैं और उनमें संघर्ष चल रहा है। मुख्य संघर्ष साम्यवाद और पूँजीवाद का है, जिसमें से प्रजातान्त्रिक मूल्यों को ग्रहण करने का प्रयत्न किया जा रहा है। साम्यवाद के बीज प्लेटो, प्रोटेस्टेंट विचारधारा, रिकार्डो, एडम-स्मिथ, हीगल, फ्योबाक, मार्क्स, एन्जिल्स, लेनिन और नेहरू की परम्परा में मिलते हैं। मानववाद यूनानी दर्शन में चिरकाल से पाश्चात्य चिन्तन का विषय रहा है। यूनानी दर्शन में प्लेटो जैसे विद्वान् ने आदर्श राज्य की कल्पना करते हुए प्रजातान्त्रिक मूल्यों पर बहुत बल दिया है। उसका दर्शन आदर्श और नैतिकता पर आधारित है। यूनानी विद्वानों ने मानव हित के लिए सामाजिक स्थिति और उसकी व्यवस्था पर विशेष रूप से ध्यान दिया है। मार्क्स भी पृथ्वी पर एक सुन्दर समाज की स्थापना का इच्छुक था इसीलिए उसने सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष किया।

मानवतावादी विचारधारा के पोषण में धर्म का मूल्य-निर्धारण और नैतिकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। धर्म मानवीय चेतना और अपरिमित स्वतन्त्रता का साधन है। यह मानवीय विश्वास की अनुभूति ही नहीं अपितु व्यष्टि और समष्टि की एकता का वह मार्ग है जिसमें प्रेम, स्नेह और बुद्धि से रहने की जीवन पद्धति बताई गई है। ईरानी विद्वान अलफरेबी ने कहा है कि यह एक सार्वभौमिक धर्म है किन्तु उस चरम सत्य के अनेक प्रतीकात्मक रूप हैं जो कि देश-देश, राष्ट्र-राष्ट्र में भाषा, विधि और रीति-रिवाजों में भिन्न-भिन्न रूपों में अभिव्यक्त होते हैं।

इस क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष से संतप्त संसार में हम मानवता के सुन्दर रूप के दर्शन करना चाहते हैं और यदि ऐसा नहीं होता तो इस संसार की सृष्टि ही व्यर्थ है। मानव-कल्याण के लिए परहित की भावना सबसे अधिक आवश्यक है। पारस्परिक आदर्शों का मतभेद विश्व की सौहार्द्रता को नष्ट कर रहा है। वास्तव में मानव-जाति आत्मघात की स्थिति में है जबकि वह शस्त्रास्त्रों की होड़ में व्यस्त है। वह एक गहरी खाई के किनारे पर खड़ी है और उसे बचाने की आवश्यकता है। इसके लिए न ही पूर्व की ओर न ही पश्चिम की विचार-धाराएँ यह दावा कर सकती हैं कि वही मानवता को बचाने वाली हैं। डा० राधाकृष्णन ने इस विषय में लिखा है कि 'समस्त संसार के मनुष्य एक हैं और पूर्व तथा पश्चिम का भेद अवांछित है।' यह संसार भौतिक दृष्टि से एक होते हुए भी इसमें वैचारिक भिन्नता है अतः हमारा कर्तव्य है कि हम एक सामान्य और संतुलित मानव-जीवन का निर्माण और शाश्वत-मूल्यों की स्थापना करें। प्रजातन्त्र के मूल में धर्म का तत्त्व भी है। यही भावना मानवता

मे एकता की स्थापना करती है। विगत संघर्ष और विश्व-महायुद्ध से यूनानी, यहूदी, ईसाई, मुस्लिम, प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक सभी ने यह सीख लिया है कि हमे इकट्ठे रहना है। इस भाँति साम्यवादी और गैर साम्यवादियों को भी साथ-साथ रहना है। मानव-कल्याण के लिए पाश्चात्य भौतिक दृष्टिकोण के साथ-साथ पौर्वात्य आध्यात्मिकता की भी आवश्यकता है। सर रिचर्ड लिविंग्स्टोन ने, जो एक महान मानवतावादी हैं, इस बात पर बल दिया है कि हमारा दृष्टिकोण बहुत उदार होना चाहिए। उनके इस कथन से वैज्ञानिक भी सहमत हैं।

विश्व मे सभ्यता और संस्कृति का मानव-कल्याण की भूमिका मे बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इनमे मानसिक और आध्यात्मिक श्रेष्ठता के तत्त्व होते हैं। यदि हम वास्तव मे कुछ जानना चाहते हैं तो हमे सबसे पहले जानना चाहिए कि मनुष्य क्या है और वह क्या करता है ? और उसके आदर्श क्या हैं ? आदर्श किसी भी सभ्यता के निर्माता होते हैं और वही मनुष्य के जीवन में चरितार्थ होते हैं। इसी प्रकार से हम कह सकते है कि आध्यात्मिक मूल्य क्या है ? हमारी चेतना विचार, अनुभूति और इच्छा मे बँट जाती है और जब यह *किसी विशेष आदर्श की ओर उन्मुख होते हैं तभी वह आध्यात्मिक* मूल्य कहलाते हैं। यही सत्य शिवम् सुन्दर है। सभ्यता से समानता और स्वतन्त्रता की भावना भी जुडी हुई है। स्वतन्त्रता वास्तव मे एक बहुत ही मूल्यावान आदर्श हैं। धर्म और राजनीति के क्षेत्र मे कभी-कभी लोग बहुत उन्मादी हो जाते हैं किन्तु स्वतन्त्रता का मूल्य तो इसी में है जब हम उसका प्रयोग परहित की हानि किये बगैर करते हैं। मानव समाज और राजनीति का सदस्य होने के नाते कभी भी पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त नही कर सकता। *सच्ची स्वतन्त्रता तो भावना की स्वतन्त्रता है। यह सदाशयता और सत्य का* साधन है, जो कि उच्चतम मूल्य हैं। मनुष्य ही मूल्यों का निर्माता और उपभोक्ता है। इसमे सदेह नही है कि धर्म और आध्यात्मिकता ने कभी कभी संस्कृति और मानवता का विभाजन कर दिया है, किन्तु वह वास्तविक संस्कृति नही है।

अतीत का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि धर्म ने संस्कृति का और मानव-मूल्यों का संवर्द्धन किया है। *संगीत, कविता, चित्रकला और वास्तुकला* को भी धर्म ने बहुत बढ़ाया है। भारत मे धर्म, दर्शन और विज्ञान समन्वित रूप से विद्वानों की रुचि के विषय रहे हैं। धर्म ने आदर्श और नैतिकता की भावना को संवर्द्धित किया, किन्तु आज उसका रूप विकृत हो गया है। संस्कृति जीवन और विचार की एक पद्धति है जो कि बौद्धिक आदर्शों से प्रेरित होती है। यह शिक्षा के द्वारा मनुष्य के मस्तिष्क और चेतना को विकसित करती है। वेदो और उपनिषदों मे भी इस ओर ध्यान दिलाया गया है कि धर्म सत्य

से हमारा साक्षात्कार कराता है। प्लेटो के विचार में सत्य हमारे मस्तिष्क की दृष्टि उस प्रकाश की ओर ले जाता है जो अज्ञान और ईर्ष्या के अंधकार को नष्ट कर देता है। नागार्जुन और शंकराचार्य भी इस बात को जानते थे, इसीलिए उन्होंने सत्य को दो भागों में विभाजित किया है—संवृति-सत्य अथवा व्यवहार-सत्य और परमार्थ सत्य। इसीसे उन्होंने संसार की सभी समस्याओं का हल निकालने का प्रयत्न किया। कांट ने भी अपने मूल्य सत्य की विवेचना में इसे स्वीकार किया है। इसी प्रकार यह सभी आदर्श ऐसे समन्वय और समानता की ओर अग्रसर होते हैं, जो समस्त मानव जाति का भौतिक-कल्याण तथा आर्थिक, राजनीतिक सामाजिक और सांस्कृतिक स्वाधीनता के साथ प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति के समान अवसर प्रदान करते हैं। इस संदर्भ में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों की एकता सहायक हो सकती है। समय-समय पर प्रत्येक राष्ट्र और जाति ने इस विषय में अपने रीति-रिवाजों, परम्पराओं, नैतिक और भौतिक मूल्यों की स्थापना की है।

मानव-समानता और स्वतन्त्रता मानववाद के प्रमुख मूल्य हैं। आज संसार के समस्त विकसित देश यह अनुभव करते हैं कि जिन देशों और मानव जाति को उन्होंने पराधीन बनाया है और वह विजेता बने हैं यह एक मानवीय अपराध है। लार्ड पोट्र्स माउथ ने इसके लिए आध्यात्मिक जीवन की पुन. अनुभूति को बहुत आवश्यक बताया है। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए डा० ग्रैरेले क्रोसे ने लिखा है कि आज हमारे युग की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या यह है कि हम एक ऐसे विज्ञान का सृजन करें जो कि मानव-पशु नहीं, पूर्ण-मानव का विज्ञान हो और जिसमें वैयक्तिक और सामाजिक दृष्टिकोण से आध्यात्मिक मूल्यों का अध्ययन हो। मनुष्य के लिए यह बहुत आवश्यक है कि वह स्वयं को जाने अन्यथा मानव-जाति का कल्याण सम्भव नहीं है। इन्हीं आदर्शों की पूर्ति के लिए मानववादी विचारधारा का प्रारम्भ हुआ। पाल लेहमान के विचारानुसार मानव एक ऐसी भावात्मक और व्यावहारिक अनुभूति का निर्माण करेगा जिसके द्वारा वह मानव-जीवन को मानव-जीवन रहने देगा। यही नव-मानववाद है।

वर्तमान युग में कोई राष्ट्र अथवा देश मानवता और मानव-मूल्यों की अवहेलना नहीं कर सकता। मानव-चिन्तन अब एक विशेष जाति और राष्ट्र तक ही सीमित न रहकर विश्वव्यापी हो गया है। कोई भी धर्म अब मनुष्य को किसी एक विशेष जाति अथवा संस्कृति से सम्बद्ध करके नहीं देखता, अपितु मानव को मानव के रूप में देखता है। यह भावना बीसवीं शताब्दी में राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में व्याप्त हो गई है, जिससे स्पष्ट हो गया है कि समस्त विश्व में सार्वभौमिक मूल्य हों जो मानव-हितों की रक्षा करें। उच्छृंखल राष्ट्रवाद तथा पूंजीवाद मानव-जाति के भविष्य के लिए

हानिकारक हैं। यह तथ्य इस कारण सत्य नही है कि ससार में युद्ध का भय है बल्कि इसलिए कि यह अनैतिकता है कि कुछ लोग आधुनिक विज्ञान की सुविधाओ और साधनो के होते हुए भी सुखी जीवन स वचित रहें। सयुक्त राष्ट्र के मानव अधिकारो की घोषणा के विषय मे ह्योरेवे कैलेन ने लिखा है कि यह इस विश्वास का आधार है कि मानव जाति मानवीय सम्बन्धों के लिए एक दूसरे से क्या आशा रखती है। यूनेस्को की एक रिपोर्ट मे भी यह कहा गया है कि पिछले कुछ वर्षों मे शासन और व्यक्तियों मे समान रूप से यह समझौता हुआ है कि राष्ट्रीय स्थिरता और स्थायी विश्वशान्ति इस बात पर निर्भर करती है कि विभिन्न दलो, जातियो या राष्ट्रो मे फैले हुए तनाव के आधारमूत कारणो जैसे दरिद्रता, भुखमरी, अज्ञान, रोग, सामाजिक अन्याय आदि को दूर किया जाए। यह *मानव जाति के कल्याण मे बाधक है और* जहाँ कहीं भी यह हैं, वहाँ सबके लिए समान रूप स खतरनाक हैं।

मानव आशावादी है और यही उसके विकास का कारण है। मानव-कल्याण के चिन्तन का आशावादी दृष्टिकोण सुकरात से गैबरिल मार्शल तक और वेदो से गांधी तक मिलता है यही मानवता की पूर्णता का साधन है। उसके पराक्रम और साहस का प्रतीक है। यद्यपि विश्व मे आज सर्वत्र निराशा व्याप्त है, किन्तु आशावादिता मानव को निरन्तर आगे बढाती रहती है। परिवर्तन कष्टदायक हैं किन्तु मनुष्य परिवर्तन चाहता है। यही उसकी पीडा का कारण भी है। चार्ल्स रैवेन के अनुसार पारस्परिक विश्वास का लक्ष्य है, समाज की रचना और हमारा कर्त्तव्य है सार्वभौमिक समाज की स्थापना, जो विभिन्न दलो मे विभाजित न होकर उच्चतम लक्ष्यो और गरिमामय शक्तियों की प्राप्ति की ओर अग्रसर होगा। इसी भावना को सार्थक करते हुए वाल्ट ह्विटमैन लिखते है—

And now, gentelemen,
A word I give to remain in your memories and minds,
As base and finale too, for all metaphysics, (So to the students the old professors, At the close of their crowded course)
Having studied the new and antique, the Greek and Germanic systems,
Kant having studied and stated, Fichte and Schelling and Hegel,
Stated the lore of Plato, and Socrates greater than Plato,
And greater than Socrates, sought and stated,
Christ divine having studied long,
I see reminiscent today those Greek and Germanic systems,
See the philosophies all, christian church and tenets see,

Yet underneath Socrates clearly see, and underneeth Christ the divine I see,
The dear love of man for his comrade,
The attraction of friend to friend,
Of the well-married husband and wife,
Of children and parents,
Of city for city and land for land

सहायक ग्रंथ-सूची

हिन्दी ग्रन्थ

1 अशोक के फूल—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
2 आध्यात्मिक साहचर्य—डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन, (अनु०) डॉ० ज्ञानवती दरबार
3 नीति शास्त्र—शांति जोशी
4 बौद्ध धर्म दर्शन—आचार्य नरेन्द्र देव
5 बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन—डॉ० भरत सिंह उपाध्याय
6 भारतीय दर्शन—उमेश मिश्र
7 भारतीय दर्शन—बलदेव उपाध्याय
8 भारत और विश्व—डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन
9 भारतीय तत्व चिन्तन—डॉ० जगदीश चन्द्र जैन
10 भारतीय संस्कृति और साधना—महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज
11 मानव और धर्म—डॉ० इन्द्रचन्द्र शास्त्री
12 मानव मूल्य और साहित्य—डॉ० धर्मवीर भारती
13 मानववाद और साहित्य—डॉ० नवल किशोर
14 मृत्युंजय रवीन्द्र—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
15 यूरोप का आधुनिक इतिहास—सत्यकेतु विद्यालंकार
16 राधाकृष्णन का विश्वदर्शन—शान्ति जोशी
17 वैदिक संस्कृति का विकास—तर्कतीर्थ लक्ष्मण शास्त्री जोशी, (अनु०) डॉ० मोरेश्वर दिनकर पराड़कर
18 वैदिक साहित्य—पं० रामगोविन्द त्रिवेदी
19 संस्कृति का दार्शनिक विवेचन—डॉ० देवराज
20 हिन्दुस्तान की कहानी—जवाहरलाल नेहरू

संस्कृत ग्रन्थ

1 अथर्ववेद
2 अनुयोगद्वार सूत्र
3. आवश्यक सूत्र
4 ईशावास्योपनिषद्
5 उत्तराध्ययन सूत्र
6 ऋग्वेद
7 ऐतरेयोपनिषद्
8 ऐतरेयब्राह्मण

9 कठोपनिषद
10 केनोपनिषद्
11 कैवल्य उपनिषद्
12 गीता
13 गीता रहस्य—बालगगाधर तिलक
14 गौतम धर्म-सूत्र
15 चाणक्य-नीति
16 छान्दयोग्योपनिषद
17 जातक कथा
18 तैत्तिरीय सहिता
19 दशावतार
20 धम्मपद
21 ना० पू०
22 नागानन्द—श्रीहर्ष
23 नीतिशतक
24 पदमपाताल पुराण
25 प्रश्नोपनिषद
26 बृहदारण्योपनिषद
27 बोधिचर्यावतार—आचार्य शान्तिदेव
28 श्रीमदभागवत
29 महाभारत
30 मनुस्मृति
31 मुण्डकोपनिषद
32 यजुर्वेद
33 योगदशन—पातजलि
34 लकावतार सूत्र
35 विनयपिट्टक
36 शतपथ ब्राह्मण
37 शिक्षा-समुच्चय
38 सयुत्त निकाय
39 सामान्य वेदान्त उपनिषद्—(स०) महादेव शास्त्री
40 सुत्तनिपात्त

उर्दू—कुरान

पत्रिकाएँ—1 आलोचना, 2 कल्याण—मानवता अक, 3 गुरुदेव स्मृति ग्रन्थ

BIBLIOGRAPHY—ENGLISH

1 A History of English Literature—Emile and Louis Cazamian
2 A History of Europe—Henery Pirenne
3 A History of Middle Ages—Sir Sidney Painter
4 A History of Political Theory—C H Sabine
5 A History of Western Morals—Crane Brinton
6 A Preface to Morals—Walter Lipmann
7 A Seminars on Saints—(Ed) T M P Mahadevan
8 All Men are Brothers—M K Gandhi
9 Albert Schweitzer—An Introduction—Jacques Feschottee
10 Albert Schweitzer—George Seaver
11 American Philenthrophy—Robert H Breinnere
12 An Essay on Man—Ernst Cassirer
13 An Essay on Man—A Pope
14 An Interpretation of Christian Ethics—Reinhold Neibhur
15 An Idealist View of Life—S Radhakrishanan
16 Authority and the Individual—Bertrand Russell
17 Bible
18 Confucius—His Life and time—Lui Wuch
19 Contemporary British Philosphy—(Ed) J H Muirhead
20 Creative Unity—Rabindranath Tagore
21 Culture and Restraint—Part IV—H Black
22 Contemporary Renewals in Modern Thought—Religion in the Modern World—Jacques Maritain
23 Development of Moral Philosophy—Surmadas Gupta
24 Eastern Religion and Western Thought—S Radhakrishanan
25. Essays in Philosophy—(Ed) C T K Chari
26 Ethics—Spinoza—Part—IV, Appendix Section IX & XII
27 Existentialism—Jean Paul Sartre
28 Existentialism and Humanism—(Ed) Hanns E Fisher
29 From Morality to Religion—W G De Burgh
30 Force and Freedom, Reflection on History—(Ed) James Hastings Nicholas
31 Greek Political Thinkers—William Ebenstein
32 Humanism As A Philosophy—Corliss Lamont
33 Humanity and Deity—William Marshall Urban
34 Humanism and Moral Theory—R Osborm

35 Humanism and Education in East and West—UNESCO, 1953, Paris
36 Humanism The Greek Ideal and its Survival—Mosses Hadeas
37 Humansitic Ethics—Gardner Wilhamy
38 Human Society in Ethics and Politics—Bertrand Russell
39 Humanism An Idealogy—James R Flynn
40 Ideas of the Great Philosophers—S E Frost
41 Indian Philosophy—Part—I & II—S Radhakrishnan
42 Indian Thought through the Ages—B G Gokhlae
43 In Search of the Supreme—M. K Gandhi
44 In Man's own Image—Ellen Roy & R. Roy
45 Indian Culture—B L Atreya
46 Jainism and Demoracy—Dr Indra Chandra Shastri
47 Letters of Aurobindo—Fourth Series
48 Lectures in Ethics—Immannuel Kant
49 Mahatma Gandhi and Depressed Humanity—R N Tagore
50 Master pieces of *World Philosophy—(Ed) Frank N Magill*
51 My Experiments with Truth—M K Gandhi
52 Mysticism, Logic and other Essays—Bertrand Russell
53 Main Currents of Modern Thought—Rudolf Euechen
54 Man and Man The Social Philosophers—(Ed) Saxe Commins & Robert H Linscott
55 Man Against Humanity—Gabriel Marcel
56 New Humanism—M N Roy
57 New Frontiergs for Freedom—Erwin D Gaxham
58 New hopes for a Changing World—Bertrand Russell
59 Nichomachean Ethics—(Ed) H H Joachim
60 Nine Modern Moralists—Paul Ramsey
61 Naturalism and Human Spirit—(Ed) Yervent H. Krikorian
62 Philosophical Essays—Surender Nath Dasgupta
63 Philosophic Problems—(Ed) Model baum
64 Pragmatism—William James
65 Proceedings of the Conference of Science, Philosophy and *Religion in Their Relation to the Demo ractic Way of Life*—Hallowell Ethics III No 3 (1942)
66 Reason, Romanticism and Revolution—Vol I & II—M. N Roy
67 Reason in Action—(Ed) Hector Hawton
68 Recovery of faith—S Radhakrishnan
69 Reflection on Socialist Era—Ashok Mehta

70 Religion and Modern Man—John B Magee
71 Sadhna—R N Tagore
72 Self Restraint Vs Self Indulgence—M K Gandhi
73 Selected Works of Marx—Vol IX
74 Studies in European Realism—George Lucas
75 Selected Essays—T S Eliot
76 Short History of Christian Church—C P S Clark
77 Selected Works of Mahatma Gandhi—Sriman Narayan Agarwal
78 Studies in Philosophy—A C Dass
79 Some Fundamental Problems in Indian Philosophy—C Kunhan Raja
80 The Concept of Man—(Ed) S Radhakrishnan and P T Raju
81 The Complete Works of Swami Vivekanand—Vol I VI & VIII
82 The Perrennial Philosophy—Aldous Huxley
83 To Himself—Marcus Aurelius
84 The Humanity of Man—Ralph Barton Perry
85 The Wisdom of Confucius—Lin Yu Tang
86 The Socialist Idea—(Ed) Lerzek Kolakowski and Stuart Hamsphire
87 The Task of Rationalism—in Retrospect and Prospect—Jonn Russell
88 The Facts of the Moral Life—Wilhelm Wundt
89 The Moral Nature of Man—A Cambell Garnett
90 The Reconstruction of Humanity—Pitrim A Sorokin
91 The Religion of Man—R N Tagore
92 The Myth of Modernity—(Tr) Berhard Mial
93. The Nichomachean Ethics—(Ed) D P Chase
94 The Basic Writings of Bertrand Russell—(Eds) Egner and Denom
95 The Meaning of Life in Hinduism and Budhism—Floy H Ross
96 The Soul of India—Bipin Chandra Paul
97 The Bodhisattava Doctrine—Hardayal
98 The Cultural Heritage of India—Vol I
99 The Nature and Destiny of Man—Reinhold Neibour
100 The Religion of Hindus—(Ed) Kenneth W Morgan
101 The Crisis of the Human Person—J B Coates
102 The Principles of Morality and the Departments of Moral

Life—Wilhelm Wundt
103 The Pragmatic Humanism of F C S Schi[illegible]
Abel
104 The Mind of Africa—W E. Abraham
105. The Ideal of Human Unity—Sri Aurob[illegible]do
106 The Myth of the State—Ernst Cassirer
107 The Elements of Folk Psychology—Wilhelm W[illegible]
108 The World of Humanism—Myron P Gilmor[illegible]
109 Towards Universal Man—Rabindra Nath Tago[illegible]
110 True Humanism—Jacques Maritain
111 Truth in God—M K Gandhi
112 The Philosophy of Ernst Cassirer—P A Schilp[illegible]
113 Religion Culture—(Ed) Walter Leibrecht
114 People and the Novel—Ralph Fax
115 For Human Welfare—UNESCO, 1962
116 Humanism and Education in East and West—U[illegible]
1953 Paris
117 Leaves of Grass—Walt Whitman
118 October Revolution, Impact on Indian Literature-
Rais
119 Women—M K Gandhi
120 World Fellowship—C F Weller

ENCYCLOPAEDIA

1 Colliers Encyclopaedia
2 Encyclopaedia of Britanica—Vol IX
3 Encyclopaedia of Religion and Ethics—Vol, VI
4 Encyclopaedia of Social Sciences—Vol VII
5 International Encyclopaedia of Social Sciences V[illegible]
6 The Encyclopaedia of Americana—Vol XIV
7 The Encyclopaedia of Religion (Ed) Vegilius Ferr[illegible]

MAGAZINE

ournal of India [illegible]

XII (Dec 1963)

Life—Wilhelm Wundt
103 The Pragmatic Humanism of F C. S Schiller—Reveren Ahel
104 The Mind of Africa—W E Abraham
105 The Ideal of Human Unity—Sri Aurobindo
106 The Myth of the State—Ernst Cassirer
107 The Elements of Folk Psychology—Wilhelm Wundt
108 The World of Humanism—Myron P Gilmore
109 Towards Universal Man—Rabindra Nath Tagore
110 True Humanism—Jacques Maritain
111 Truth in God—M K Gandhi
112 The Philosophy of Ernst Cassirer—P A Schilp
113 Religion Culture—(Ed) Walter Leibrecht
114 People and the Novel—Ralph Fax
115 For Human Welfare—UNESCO 1962
116 Humanism and Education in East and West—UNESCO 1953 Paris
117 Leaves of Grass—Walt Whitman
118 October Revolution Impact on Indian Literature—Qamar Rais
119 Women—M K Gandhi
120 World Fellowship—C F Weller

ENCYCLOPAEDIA

1 Colliers Encyclopaedia
2 Encyclopaedia of Britanica—Vol IX
3 Encyclopaedia of Religion and Ethics—Vol VI
4 Encyclopaedia of Social Sciences—Vol VII
5 International Encyclopaedia of Social Sciences Vol X
6 The Encyclopaedia of Americana—Vol XIV
7 The Encyclopaedia of Religion (Ed) Vegilius Fern

MAGAZINE

Journal of Indian History—Vol XII (Dec 1963)